

प्रतिष्ठान पत्रिका

१९८७

प्रधान सम्पादक

डॉ. पद्मधर पाठक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

राजस्थान सरकार

प्रतिष्ठान-पत्रिका

(वार्षिकी)

वर्ष ३ : १९८७ अंक ३ :

प्रधान सम्पादक
डॉ. पद्मधर पाठक
निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर



प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
राजेन्द्र मार्ग, जोधपुर.

कमल प्रिण्टर्स, जोधपुर मूल्य : रु० २१.००

अनुक्रम

—०—

मंगलाचरण

मंगल मंगल
अमंगल ध्वंस
रहे न उसका अंश ।

आचरण मंगल, व्यवहार शोभन
रचते मंगलधाम ।

थोथा प्रदर्शन
घोर अमंगल ।

निर्भय करता पूत मन
हटाता कदाचर ।

अपावन मन
क्षण क्षण भीरु ।

देवीवाक् ! कर वचन अमोघ
पार पड़े उठाया काम
सब निर्विघ्न ।

मन, वाक्, कर्म
हों शुद्ध, निष्पाप ।

यही दो अशीर्वाद
ओ मेरे
देवाधिदेव ।

डॉ. नागरमल सहल

तुलसी की भक्ति-चेतना

तुलसी भक्त पहले थे बाद में कवि। उनके भक्त होने का प्रमाण यह है कि वे स्वय को छोटा ही नहीं, दास भी मानते हैं। उनका साईं उनसे ही नहीं सब जीवों से बड़ा है। ऐसे साईं की आखिर किस साधन से भक्ति की जाय, यह एक विवादग्रस्त विषय है। उन्होंने विवादों पर ध्यान न देते हुए अपनी बात को, दृष्टि को, स्पष्ट करते हुए कह दिया कि मेरी भक्ति 'श्रुतिसंमत' है जिसमें 'बिरति-बिवेक' का होना जरूरी होता है।[1] 'नानापुराण निगमागम-सम्मतं' यद् रामायणे निगदितं कचिदन्यतोपि' (रामचरित मानस, बालकाण्ड, श्लोक ७) जैसे कथन इसके प्रमाण हैं। ऐसी स्थिति में भक्ति के अर्थ-विस्तार और प्रकार को भलीभांति समझे बिना तुलसी की भक्ति-चेतना को समझना कठिन होगा।

'भक्ति' शब्द का सीधा अर्थ है भगवद्-विषयक राग (प्रेम) के साथ साईं का भजन करना। प्रेम के इसी प्रकार को शाण्डिल्य ने 'परम अनुरक्ति' (भक्तिसूत्र, १/१/२) तथा नारद ने 'परम प्रेमरूपाऽमृतस्वरूपा च' (नारद भक्तिसूत्र, २/३) कहा है। विषय प्रधान प्रेम वैसे ही छोड़ने योग्य है जैसे कुसंग। भागवतकार (श्रीमद्भागवत, १०/१९/१३-१५) ने निष्काम प्रेम भाव को ईश्वरोन्मुख क्रिया को भक्ति माना है। अधिकतम भक्ति-आचार्यों का ऐसा कथन है कि भक्ति बिना श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के हो ही नहीं सकती। ईश्वर के प्रति श्रद्धावान् होना, प्रेम करना और विश्वास रखना किसी भी भक्त के लिए जरूरी होता है। श्रद्धा बड़ों के प्रति पैदा होती है, इसलिए भक्त सदैव आलम्बन से स्वयं को छोटा मानता है। बिना विश्वास के प्रेम नहीं पनपता और प्रेम के अभाव में भक्ति नहीं होती। बिना भक्ति के राम पसीजते नहीं और बिना अचल अनुराग के वह दृढ़वत नहीं होती। (वही, उत्तरकाण्ड, ८९/८)। बिना अनुराग के रघुपति भी नहीं मिलते। आखिर कौन-सा ऐसा उपाय है जिससे रघुपति सहजरूप में मिल सकते हैं? जीव यानी भक्त के लिए यह जरूरी है कि वह पहले सत्संग करे, वह भी सज्जनों का, दुर्जनों का नहीं, क्योंकि सत्संग से ही हरिकथा में प्रीतिकर रुचि उत्पन्न होती है। प्रीति ही वह भाव है जिससे विश्वास दृढ़ होता है। रघुपति-प्रीति के होने पर भक्त के मन में जितने विषय-विकार होते हैं, नष्ट हो जाते हैं (वही, उत्तरकाण्ड, श्लोक ६१; ६२/१, ९६/१)। इस प्रकार जो भी भाव, विचार और कार्य रघुपति की प्रीति के लिए किये जाते हैं, 'भक्ति' कहलाते हैं (उत्तरकाण्ड, ८५ ख)। 'विनय पत्रिका' में तुलसी ने 'कामरिपु' से 'रामचरणरति' की याचना की है, वह वास्तविक रूप में 'भक्ति' ही है (विनय पत्रिका, पद संख्या ९)।

तुलसी की भक्ति-चेतना को समझने के पहले यह भी जानना जरूरी है कि उनकी भक्ति किस कोटि की थी ? नारद[२] ने बहुत पहले दो प्रकार की भक्तियों का उल्लेख किया है : प्रेमरूपा और गौणी भक्ति । क्रम से एक साध्य है, दूसरा साधन । गौणी भक्ति की भी दो कोटियां निर्धारित की गई हैं : वैधी और रागानुगा । गुण-आर्तादि को ध्यान में रखकर गौणी भक्ति के तीन भेद स्वीकार किए गए हैं : सात्त्विकी, राजसी और तामसी । आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी जीव क्रम से इन भक्तियों को कर सकने में सक्षम होते हैं । 'रामचरित-मानस' में उमा आर्त भक्त, गरुड़ जिज्ञासु और कलि के सुजन अर्थार्थी भक्त के रूप में उल्लिखित हैं । इस उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी की भक्ति साधनप्रधान होते हुए भी प्रधानतः वैधी कोटि की है ।

रूपगोस्वामी[३] ने विकास को ध्यान में रखकर भक्ति की तीन कोटियों का जिक्र किया है : साधनरूपा, भावरूपा और प्रेमरूपा भक्ति । साधनरूपा भक्ति में पूर्वराग के बिना भक्त ईश्वर को विविध कर्मों के द्वारा प्राप्त करने का उपाय करता है । साधनरूपा भक्ति दो रूपों में गतिशील होती है : वैधी और रागानुगा । राग का अनुगमन करने वाली भक्ति को रागानुगा कहा गया है । वैधी भक्ति में प्राचीन शास्त्रों द्वारा बताए हुए मार्गों को अपनाया जाता है । प्रेम-रूपा भक्ति में प्रेम ही सब कुछ होता है । इन सन्दर्भों में तुलसी की भक्ति-चेतना पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भक्ति मूलतः वैधी कोटि की थी । 'श्रीमद्भागवत'[४] में वैधी भक्ति को नवधा कहा गया है : श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन । तुलसी की नवधा भक्ति इससे सर्वथा अलग है : सत्संग, प्रभु प्रेम, गुरु-पद-सेवा, हरिकीर्तन, विश्वास, विरति, लोक-सेवा, संतोष और निश्चलता । स्पष्ट है कि तुलसी की यह नवधा भक्ति उनके मौलिक चिन्तन का परिणाम है :

'नवधा भगति कहउं तेहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ।।

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ।
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।

सातवं सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ।
आठवं जथालाभ संतोषा । सपनेहुं नहि देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियैं हरष न दीना ।।'[५]

'सत्संग' शब्द का सीधा अर्थ है सज्जनों का साथ। सज्जनों के दर्शन, स्पर्श, प्रवचन और सान्निध्य से व्यक्ति के सभी विकार नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वे 'रामसिन्धु' के मूल तत्त्व से बने 'घन' और 'हरिचन्दन-तरु' से सुवासित 'मलय पवन' हैं। इनके सम्पर्क में आने पर ही जीव का चित्त पवित्र और शान्त हो जाता है। सत्संग से ही विवेक तथा समझ आती है। किन्तु, यह सत्संग बिना राम-कृपा के नहीं मिल सकता। सत्संगति पारस पत्थर है जिसके छूने से कुधातु-सठ (लोहा) भी सोना-सा बन जाता है :

'बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।'
(बालकाण्ड, ३/७, ६)

स्पष्ट है कि सत्संग से बढ़कर न कोई लाभ है और न सुख। वह 'भव-भंग-कारन' और 'मोक्षदायक' है। सामान्य जन को चाहिए कि वह संतों का सत्संग करे, क्योंकि वह 'वारि-विकार' को त्याग कर 'गुन गहहि पय' करता है (बालकाण्ड, दोहा सं० ६)। खल भी संतों की सत्संगति के कारण भले बन जाते हैं इसलिए वे भी बाद में अच्छे कर्म करने लगते हैं। असाधुओं की कुसंगति धुए की तरह है जो साथियों के मन को 'कारिख' कर देता है। कुसंगियों के साथ से विकार उपजते हैं जो भक्ति के लिए बाधक होते हैं। इससे ईश्वर के प्रति अनुराग भी नहीं हो पाता (बालकाण्ड ७/१-११) किन्तु इसके विपरीत बिना सत्संग के हरि-कथा में रुचि नहीं हो पाती। रुचि होने पर ही मोह, ममता, क्रोध, लोभ, गर्व-ईर्ष्या का नाश होता है जिससे आगे चलकर 'रामपद' में 'दृढ़ अनुराग' होता है। (उत्तरकाण्ड, दोहा ६१)। स्पष्ट है कि सत्संग के द्वारा ही राम के प्रति प्रेम उपजता है।

तुलसी के राम किसी वस्तु के इच्छुक नहीं हैं, वे तो प्रेम के भूखे हैं। प्रेम के वश में होकर राम ने निषाद को पैर धोने की अनुमति दी, भीलनी के हाथ के झूठे बेर खाए, जटायु का दाह-संस्कार किया और भरत को गले लगाया। यह प्रेम न हाट में बिकता है और न इसे पाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जाना पड़ता है। यह तो सहज ही उपास्य के कथा-प्रसंगों के सुनने से उपजता है। रामचरित को सुनने वालों में पार्वती, भारद्वाज और गरुड़ हैं। इनका भगवद्प्रेम कथाओं को सुनने से ही होता है। इसलिए भक्तों-संतों के लिए यह कथा प्रीतिकर होती है और असंतों के लिए अरुचिकर। क्योंकि 'रामकथा कलि कलुष विभजनि' है (बालकाण्ड, ३१/५)। भक्त को राम-कथा सुनने से बुद्धि, विवेक और बल की प्राप्ति होती है। इससे उसके मन में जो संदेह, भ्रम और मोह होते हैं. वे भी नष्ट हो जाते हैं। रामकथा इस अर्थ

में मंदाकिनी है कि वह संत-समाज की भाव-चेतना को स्वच्छ साफ रखने का काम करती है (वही दोहा ३१) ।

तुलसी की भक्ति में विवेक का होना जरूरी है नहीं तो भक्त सांसारिक माया-मोह के सिवार में उलझकर जीवन को असार्थक कर देता है। यह विवेक सत्संगति से उपजती है पर सत्संगति गुरु-कृपा के अभाव में असम्भव है। गुरु का उपदेश वह प्रकाश-पुञ्ज है जिससे भक्त की अज्ञानता (अंधकार) नष्ट हो जाती है। 'गुरु-पद-रज' हो वह मंजुल अंजन है जिससे नेत्रों के सभी दोष समाप्त हो पाते हैं। नेत्रों के विमल होने से विवेक उपजता है जो गुरु के द्वारा निर्देशित कामों को पूरा करने में लग जाता है (वही २/१-२)। गुरु का दूसरा काम है राम के प्रति अनुराग बढ़ाना। इसी अनुराग और विवेक के माध्यम से भक्त, राम को जानने का उपक्रम करता है।

उपास्य के गुणगान और नाम-स्मरण की मिली-जुली क्रिया को कीर्तन कहते हैं। नामजप एक ऐसा साधन है जिसको अनुरागपूर्वक करने से अष्ट सिद्धियों को सहज रूप में प्राप्त किया जा सकता है। कलि की कुचालों से बचने का यह एक अच्छा उपाय है। पर नाम जपने के लिए उपासक में श्रद्धा और प्रीति का होना आवश्यक है। नाम-जप से ही अनाथ को सहारा, भाग्य-हीन को भाग्य, कुलहीन को कुलीनता, दरिद्र को धनाढ्यता मिल जाती है (विनय पत्रिका, पद ६५, ७०)। नाम के उलटे जपने का भी अपना महत्त्व है। आदिकवि वाल्मीकि उलटा नाम जपकर ही प्रतापी बने। उपास्य के गुणों का स्मरण-भजन का भी वही महत्त्व है जो नाम-जप का। जीव के जितने भी क्लेश संसार में सम्भव हैं वे सभी इन साधनों से मिट जाते हैं (रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, ७९/१)। निर्गुण और सगुण दोनों के लिए यह 'नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक' और 'चतुर दुभाषी' है। फिर रामनाम इनसे भी महत्त्वपूर्ण है :

'रामनाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरेहुं, जो चाहसि उजियार।'[६]

विश्वास भक्ति का मूल है। प्रेम में यदि विश्वास की चेतना का अभाव है तो इससे यह सिद्ध होता है कि भक्त के हृदय में अभी कलुषता शेष है। उपास्य के प्रति श्रद्धा-विश्वास का होना इसलिए भी जरूरी है कि इसके अभाव में भक्त के हृदय में अनुराग नहीं उपजता। 'रामचरित मानस' के प्रारम्भ में शिव-पार्वती को स्तुति में श्रद्धा-विश्वास के इसी महत्त्व को दर्शाया गया है। श्रद्धा रहित धर्म का कोई मूल्य नहीं होता और विश्वास के बिना भक्ति की सिद्धि नहीं होती। विश्वास से उपास्य के प्रति जो प्रेम उत्पन्न

होता है उससे भक्त में एकनिष्ठता आती है और वह ईश्वर का ही केवल भरोसा करने लगता है। यह प्रेम का वह प्रस्थान विन्दु है जहां भक्त की दृष्टि केवल एकाकी उपास्य में रमने लगती है। प्रश्न है कि आखिर यह विश्वास उपजता कैसे है? राम की शरणागति, सत्संगति और गुणगान का वह उपाय है जिसके अपनाने से विश्वास उत्पन्न होता है (रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, ५५/७-८)। इससे सकल लोकभ्रम का नाश होता ही है, सारे हृदय-कलुष भी काफूर हो जाते हैं। तुलसी इसीलिए विश्वास को विशेष महत्त्व देते हैं क्योंकि :

'बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह बिश्रामु।'[७]

विरति और विवेक तुलसी की भक्ति-भवन के दो मुख्य स्तम्भ हैं। विरति भाव के उपजने से सांसारिक माया-मोह नष्ट हो जाते हैं और साहिब-प्रेम में दृढ़ता आती है। विषय-विकार के होने पर मन असंस्कारी और चंचल होता है, पर इसके रहने पर वह संस्कारी बन जाता है। इसलिए तुलसी ने 'विनय पत्रिका' के अनेक पदों में भक्तों को विषय-विकारों से विरत होने और गृह-वनितादि की आसक्ति को त्यागने का उपदेश दिया है (पद २०५)। उनकी दृष्टि में वह 'बिरक्त अति धीर' है जो अपनी प्रिया तक का त्याग राम के लिए कर सके। ऐसा भक्त न तो कामी होता है न विषयासक्त। इसीलिए वह रघुवीर के समानधर्मी हो जाता है (रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ११५ क)। विरति और सत्संगति से ही विवेक जागृत होता है। विवेक से भक्त में सोच और समझ आती है और वह राम के जीवन-मूल्यों को भलीभांति ग्रहण करने लगता है। यह समझ विषय-विकारों के रहते नहीं आती, इसलिए उनका त्याग जरूरी है।

विवेक की समझ हो जाने से भक्त संसार के छोटे-बड़े, गरीब-धनी जैसे सभी प्राणियों में अपने उपास्य का दर्शन करने लगता है। सम्पूर्ण विश्व ही उसका अपना हो जाता है। यही वह प्रस्थान बिन्दु है जहां साधक की वैयक्तिक साधना का सामाजिक रूपान्तरण हो जाता है। ऐसा होने पर ही भक्त के हृदय में लोक-सेवा के भाव उदित होते हैं। पूरे संसार को 'सिया-राम-मय' मानने के पीछे तुलसी की यही भावना कारगर होती है। सच्चे भक्तों का यही लक्षण भी है (विनय पत्रिका, पद १७२)। लोक-सेवा में कामना को त्यागना होता है और संतोषवृत्ति को अपनाना पड़ता है। निष्काम होकर कर्म करना और सांसारिक लोगों की सेवा करना, यही तो भक्त-ईश्वर का मुख्य काम है। इसीलिए भक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना नहीं करता, वह तो राम के प्रति अनन्य अनुराग चाहता है :

'अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउं निरबान ।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ।।'[८]

सब कुछ होते हुए भी यदि भक्त के मन में छल-कपट है तो वह फरेबी माना जाएगा । राम इस फरेबीपन से कभी नहीं मिलते । उनकी प्राप्ति के लिए यह जरूरी है कि मन को निश्छल, निष्कपट, सरल रखा जाय । निर्मल हृदय में ही प्रभु बसता है, इसीलिए तुलसी ने इस पर जोर दिया है राम ने स्वय कहा है—'निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा' (वही, सुन्दरकाण्ड, ४४/५) । सच बात यह है कि राम उसी भक्त के वश में होते हैं जिसका स्वभाव सरल और मन में 'कुटिलाई' न हो । वही नर उनका दास भी होगा :

'सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई ।
मोर दास कहाइ नर आसा । करइ त कहहु कहा बिस्वासा ।
बहुत कहउं का कथा बढ़ाई । एहि आचरन बस्य मैं भाई ।।'[९]

स्पष्ट है कि नवधा भक्ति सगुणोपासना का ही अंग है । यह वैधी कोटि की भक्ति है, जो साधन है साध्य नहीं । वैधी भक्ति के पांच प्रस्थान बिन्दु हैं : उपासक, पूजाद्रव्य, पूजाविधि और मंत्रजप । उपासक में बाहरी-भीतरी शुद्धता होना चाहिए । बाहरी शुद्धता के लिए स्नान, तिलक, माला, आसन और पादुका का उपयोग होना जरूरी है और भीतरी शुद्धता के लिए प्राणायाम, गायत्री-जप और संध्योपासन । पूजाद्रव्य के अन्तर्गत कलश, शंख, घंटी, दीपक का उपयोग होता है । पूजा विधि के दो रूप प्रचलित हैं : पंचोपचार और षोडशोपचार । मंत्रजप का संबंध उपास्य से है जो सगुण ब्रह्म का नाम-जप करके चित्त को एकाग्रित करता है । राम के उपासकों में 'खग मृग सुर नर असुर' सभी आते हैं (बालकाण्ड, १८/३) । राम जो सगुण रूप में मानव और तुलसी के उपास्य हैं । उपास्य से उपास्य का नाम बड़ा है । वही उपास्य के बाहरी तन और भीतरी मन को शुद्ध करता है (वही, दोहा २१) । स्नान, माला, तिलक आदि के उपयोग से भी मन-शरीर शुद्ध होता है ऐसा उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है (वही ४१/७, ४३/६) । इसी तरह 'विनय पत्रिका' (पद २०३) में दोनों प्रकार की पूजा-विधियों का उल्लेख भी मिलता है ।

वैधी भक्ति का अन्तिम लक्ष्य रागात्मिका भक्ति का उद्रेक है । यह भक्ति उपास्य के प्रति होने वाले शुद्ध प्रेम से उपजता है । यह प्रेम तीन प्रकार का होता है : गौण, मुख्य और अनन्य प्रेम । सांसारिक विषयों में आसक्त रहने वाले जीवों के प्रेम को गौण, कर्मों के साथ भगवद्-चिन्तन करने वालों

के प्रेम को मुख्य तथा सांसारिक कर्मों-विषयों से अलग होकर प्रभु-चिन्तन करने वालों के प्रेम को अनन्य कोटियों में रखा जाता है। गौण प्रेम वाले जीव को 'आर्त' भक्त कहते हैं। तुलसी ऐसे ही भक्त हैं जिन्होंने विषय-विकारों से छुटकारा पाने के लिए निरन्तर राम से निवेदन किया है। जीव का मन ही वह कारण है जिससे वह बन्धनग्रस्त और मुक्त होता है। इसी से शरीर के सभी नाते-रिश्ते, गुण-कर्म उपजते हैं जो जीव को संसार में बांधते हैं। यह विषय-विकार राम-भक्ति नीर से धोने पर ही साफ होता है (विनय पत्रिका, पद १२४)। अयोध्या के नर-नारियों का प्रेम दूसरी कोटि का है और भरत-हनुमान् का प्रेम अनन्य प्रकार का। इसी प्रेम को वे सर्वाधिक महत्त्व देते हैं—'पूरन राम प्रेम पीयूषा।' अनन्य भक्ति ही प्रेमाभक्ति है। प्रेम के उपजने मात्र से भक्त के अन्तःकरण से सभी विषय-विकार भाग खड़े होते हैं, इसीलिए तुलसी श्रीराम से इस भक्ति की याचना करते हैं :

'परमानंद कृपायतन, मन परिपूरन काम।
प्रेमभगति अनपायनी, देहु हमहि श्रीराम॥'[१०]

प्रेमाभक्ति की एकादश आसक्तियों का उल्लेख महर्षि नारद ने 'नारद-भक्ति सूत्र' में किया है (सूत्र ८२)। खोजने पर तुलसी के 'मानस' में भी ये आसक्तियां मिल जाती हैं। गुणमाहात्म्यासक्ति के नारद और शिव, रूपासक्ति के मिथिला के नर-नारी, पूजासक्ति के हनुमान-लक्ष्मण, सख्यासक्ति के निषाद-विभीषण, कान्तासक्ति के जानकी, वात्सल्यासक्ति के मनु-सतरूपा और दशरथ. तन्मयतासक्ति के सुतीक्ष्ण, आत्मा-निवेदनासक्ति के स्वयं तुलसी तथा परमविरहासक्ति के दशरथ इनके उदाहरण हैं। अन्य स्थानों पर तुलसी ने चातक और मीन के प्रेम को प्रेमासक्ति का प्रतीक माना है, क्योंकि बाधाओं के आने पर इनकी प्रेम-भावना में कमी नहीं आती, बल्कि निरन्तर बढ़ती है (दोहावली, दोहा २७९)।

तुलसी प्रेमी भक्त हैं। भक्ति और प्रेम तत्वतः एक हैं। दोनों में एक निष्ठा का होना जरूरी है। दोनों में भेद इतना ही है कि प्रेमी अपने प्रिय पर एकाधिकार चाहता है, भक्त नहीं। दूसरी ओर भक्ति में प्रेम के साथ श्रद्धा का होना आवश्यक होता है, प्रेम में नहीं। प्रेम से ही श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा आदि भाव उपजते हैं जो आगे चलकर भक्ति में सहायक बन जाते हैं (अरण्य-काण्ड, दोहा ३६ के ऊपर वाला छन्द)। प्रेमाभक्ति बहुआयामी है। कहीं यह दास्य, कहीं यह वात्सल्य, कहीं यह सख्य और कहीं कान्ता रूप में दिखलाई पड़ती है। किन्तु, तुलसी की मानसिक चेतना 'दास्य प्रेमा भक्ति' को ही सर्वाधिक महत्त्व देती है। उनका यह कथन इसका प्रमाण है—'सेवक सेवा-भाव बिनु भव न तरिअ उरगारी' (उत्तरकाण्ड, दोहा ११९ क)।

रूप गोस्वामी (हरिभक्ति रसामृतसिंधु, पूर्वलहरी, ५/३०८-३०९) ने भक्ति को रस माना है और उसमें सभी साहित्य-रसों को अन्तर्मुक्त कर दिया है। इसी को ध्यान में रखकर उन्होंने भक्तिरस की दो कोटियां निर्धारित की हैं : मुख्य और गौण भक्ति रस। पहली कोटि में उन्होंने शान्त, प्रीति, प्रेम, वत्सल और मधुर रसों तथा दूसरे कोटि में हास्य, अद्भुत, वीर, करुणा, रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों को समाहित किया है। उनके अनुसार प्रीति और प्रेम क्रमशः दास्य और सख्य के ही नामान्तर हैं। तुलसी मूलतः दास्य भक्ति के कवि हैं इसलिए उनके साहित्य में इसको मुख्य स्थान मिला है :

'राम से बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
राम से खरो है कौन, मोसो कौन खोटो ।।'[११]

इस भक्ति को 'प्रपत्तिपरता' भी कहते हैं। भक्त का ईश्वर के प्रति, प्रेम की निरन्तरता से, जो भाव उपजता है वही प्रपत्ति है। प्रपत्ति शरणागति का ही पर्याय है। इसके तीन प्रस्थान बिन्दु हैं : अनन्य शेषत्व (प्रभु का दास होना), अनन्य साधनत्व (प्रभु को ही भक्तिसाधन का उपाय मानना) और अनन्य भोग्यत्व (एक ही प्रभु का भोग्य बनना)। अहिर्बुध्न्य संहिता (३७/२८-२९) में ईश्वर-कृपा के लिए प्रपत्ति के छह कार्यों को जरूरी करना होता है। ये छह कार्य हैं : प्रभु के अनुकूल पड़ने वाले कार्यों का सम्पादन, प्रतिकूल कार्यों का त्याग, प्रभुरक्षा में विश्वास, विश्वास के लिए भजन-कीर्तन करना, आत्म-समर्पण और कार्पण्य (दीनता)। विनय पत्रिका (पद १०५, १७५, ११५, ९३, और ११४) में इन कार्यों का उल्लेख है। 'रामचरित मानस' में खोजने पर इनके संकेत अवश्य मिल जाते हैं। इस शरणागति को 'शरणभक्ति' यानी आत्म-निवेदन भक्ति भी कहते हैं। इस भक्ति में भक्त को विनयी होना पड़ता है। विनय की सात भूमिकाएं हैं : दैन्य, मानमर्षत्व, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा। विनय पत्रिका और राम-चरित मानस में इसका विस्तार दिखलाई पड़ता है। प्रपत्तिपरता को अपनाने से भक्त के सभी विषय-विकार नष्ट हो जाते हैं, प्रभु-प्रेम में प्रगाढ़ता आती है। लाख अपराध करने के बावजूद भी रघुनायक शरण में आए भक्त की हर एक बात को प्रेमपूर्वक सुनते हैं :

'प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गयें सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ।।'[१२]

गीता (४/७-८) में चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख मिलता है : आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन भक्तों की अलग-अलग भक्तियां हैं : तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण। आर्त भक्त कष्ट-निवारण, जिज्ञासु मानने की इच्छा, अर्थार्थी मनोरथ और ज्ञानी कर्त्तव्य और विवेक के लिए

प्रभु को भजते हैं। ज्ञानी भक्त की भक्ति ही निष्काम होती है शेष की सकाम। इसलिए तुलसी के राम को ज्ञानी भक्त सबसे प्रिय हैं :

'राम भगत जग चारि प्रकारा। सकृती चारिउ अनघ उदारा।
चहु चतुर कहुं नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं बिसेषि पिआरा।।'[१३]

भक्ति का स्थायी भाव ईश्वर विषयक रति है। रतिभाव विस्तार के कारण बहुआयामी है जिसकी अनुभूति पांच अलग-अलग संबंधों के माध्यम से होता है : शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। इनमें क्रम से निर्वेद, दास्य, प्रेम, वत्सल और प्रणयभाव की उपस्थिति होती है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि तुलसी दास्यभाव के भक्त कवि हैं, शेष भाव उसकी निरन्तरता को बनाए रखने में सहायक हैं। शरणागति से गुजरते हुए दास्य-भावना को भक्त इसी कोटि की भक्ति में विस्तार देता है। इस भक्ति में ईश्वर और भक्त की अपनी सीमाएं भी निश्चित रहती हैं, इसीलिए उसमें किसी भटकाव की स्थिति नहीं बन पाती। उसका प्रतिमान यह होता है :

'एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ जस, चातक तुलसीदास।।'[१४]

स्पष्ट है कि तुलसी ने चातक की भूमिका द्वारा जिस दास्य-भक्ति को इस उठान तक पहुंचाया है उसके आलम्बन श्रीराम हैं। ये राम मानव और ईश्वर दोनों हैं, पर ध्यान रखना होगा कि इन दोनों स्वरूपों में, जो कार्य सम्पादित किये जाते हैं उसका आकलन समाज के परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए। मानवरूप में वे सगुण हैं और ईश्वरीय रूप में निर्गुण। सच्चाई तो यह है कि निर्गुण प्रभु ही भक्तों के हित-चिन्तन के लिए लीलावतारी सगुण-रूप धारण करता है। सगुणरूप में आने पर उन्हें दो कार्य सौंपे जाते हैं : अधर्मियों का नाश और धर्म का स्थापन तथा भक्तों को लीला द्वारा खुशी रखना (विनय पत्रिका, पद ४३)। इसे ही क्रम से लोकरक्षक और लोकरंजक कार्य कहते हैं। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए शील, और सौन्दर्य का होना जरूरी है जो सगुण राम में है। गुरुओं तथा बड़ों के प्रति उनमें आदर, श्रद्धा और विश्वास है। भक्तों पर उनकी विशेष अनुकम्पा रहती है। स्वभाव से वे निश्छल हैं। भक्तों के कामों को वे बिना स्वार्थ के करते हैं। चरित्र से वे कुलीन हैं। विनय, त्याग, दक्षता, बुद्धि, क्षमा, धीरता और उदारता आदि उनके चारित्रिक गुण हैं।

प्रश्न है कि भक्त के लिए राम का कौन-सा रूप सुलभ है। ज्ञान से प्राप्त निर्गुण अथवा भक्ति से प्राप्त सगुण। सच यह है कि भक्त ज्ञानी नहीं होता है उसके लिए देखा गया रूप ही प्रिय और ग्राह्य होता है। तुलसी ने इसीलिए निर्गुण रूप की उपासना को कठिन ही नहीं बताया, वरन् 'ज्ञानपंथ' को भी 'कृपान कै धारा' बतलाया :

'कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक।।'[१५]

प्रभु का सगुण रूप भी देखने में भले ही सुलभ है, लेकिन उसके जो विविध रूप समाज में प्रचलित हैं, उसे देखते हुए उसकी उपासना भी कठिन इसलिए हो जाती है कि वह किसे माने और किसे न माने, क्योंकि उसके चरित्र का बहुआयामी होना ही मुनियों तक के मन में भ्रम उत्पन्न कर देता है :

'निरगुन रूप सुलभ अति, सगुन जानि नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।।'[१६]

'रामचरित मानस' के 'ज्ञान-दीपक-प्रसंग' में इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट और साफ रूप में वर्णित है। ज्ञान-दीपक की तुलना में भक्ति-मणि को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि वह निर्विघ्न और चिरस्थायी है। ज्ञान-दीपक विषय-विकार की हवा से सहज ही बुझ जाता है, पर भक्ति-दीपक रात-दिन प्रकाशित रहता है, उस पर किसी प्रकार की वायु-झोंके का प्रभाव नहीं होता (उत्तरकाण्ड, १२०/२-८)। इसका दूसरा भी कारण है। ज्ञान पुरुष है, भक्ति नारी और माया स्त्री। स्त्री ज्ञान-पुरुष के लुभावने रूप को देखकर मोहित हो जाती है, पर वही स्त्री, भक्ति-नारी के रूप को देखकर नहीं लुभाती : 'मोह न नारि नारि के रूपा' (वही, ११६/२)। स्पष्ट है कि भक्ति और माया अपने विस्तार को बढ़ाने के वास्ते प्रभु की अवलम्बिनी हो जाती है। इतने पर भी माया भक्ति पर प्रभाव नहीं डाल पाती। भक्ति इसलिए सभी सांसारिक और आत्मिक सुखों को देने वाली है। भक्ति करने वाले भक्तों को छोड़कर बाकी जीवों को माया बुरी तरह फांस लेती है। प्रभु-प्रेम ही इसकी अचूक दवा है। भक्त इसीलिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चाह नहीं करता, अगर उसे किसी की चाह है तो राम-प्रेम की। तुलसी की चाह भी ऐसी ही है :

'नाथ एक बर मागउं, राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल, कबहुं घटे जनि नेह ।।'[१७]

यह नेह-प्रेम ही वह भाव है जो भक्ति को विस्तार देता है। नर-नारी ही नहीं, पूरा समाज इस तत्व को ग्रहण कर, साफ-सुथरा बन सकता है। इसीलिए भक्ति व्यक्ति और समाज दोनों के लिए लाभदायक है। उसका जुड़ाव प्रकृति के उद्भव और लय के हरेक अवयव के साथ है, क्योंकि जिस प्राणी अथवा वस्तु का संसार में आविर्भाव होता है उसका तिरोभाव भी जरूरी है। लौकिक जीवन में मिलने वाले कष्ट, जो आगे चलकर नाश होने के कारण बनते हैं, भक्ति को अपनाने से नहीं मिलते। मनुष्य के भीतर के मल को यदि साफ करना है तो उसे प्रेम-भक्ति के जल से धोना अनिवार्य है :

'प्रेम भगति जल बिनु रघुराई ।
अभिअंतर मल कबहुं न जाई ।।' (उत्तरकाण्ड, ४९/६)

मानव-जीवन का विस्तार चौतरफा हुआ करता है। उसका निजी अस्तित्व सीमित रहता है। पारिवारिक जीवन उसकी अपेक्षा विस्तृत और उससे अधिक दायरा बड़ा होता है सामाजिक जीवन का। भक्ति की इन तीनों में पहुंच है। श्रद्धा-विश्वास-प्रेम, तीनों भावनाएं युक्तिगत सीमाओं को लांघते हुए पारिवारिक और सामाजिक सीमाओं तक फैलने की क्षमता रखती हैं, इसीलिए तुलसी ने इन्हें मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में महत्व दिया है। इनके अभाव में न भक्ति-भाव उपजते हैं और न प्रभु-प्रेम। आदमी जिस संसार में बसा हुआ है, माया का बसाव उसमें पहले से है। यह माया बहुरूपिया है। काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार, कपट, पाखण्ड इसके अनेक नाम हैं (उत्तरकाण्ड, दोहा ७१ क)। ये हरेक आदमी के शत्रु हैं जो इन्हें ईश्वर तक नहीं पहुंचने देता। ये समाज के दुश्मन भी हैं, क्योंकि इससे आदमी आदमी का शत्रु बन जाता है। ये सामाजिक प्रेम में बाधा उत्पन्न करते हैं। प्रभु-प्रेम ही वह टॉनिक है जिससे व्यक्ति, परिवार और समाज अपने इन दुश्मनों से बच सकता है (विनय-पत्रिका, पद ५१-५६)।

आदमी की बाहरी इन्द्रियों और संसार का अपना अन्तर्सम्बन्ध है। यह उनका विस्तार है जिसके द्वारा उन्हें सांसारिक दुःख और सुख की अनुभूति होती है। जब आदमी की बाहरी इन्द्रियों का जुड़ाव संसार से स्थापित हो

जाता है तब उसका तेज नष्ट हो जाता है। संसार की अनुभूति उसे तृप्त नहीं कर पाती, इसीलिए उसमें भटकाव आ जाता है, क्योंकि सांसारिक विषय-विकार की यही परिणति है। किन्तु, ज्यों ही वह ईश्वर-प्रेम की ओर अन्दर से अग्रसर होता है त्यों ही उसमें संयम आ जाता है। यही वह प्रस्थान बिन्दु है जहां वह विषय-विकारों से निर्लिप्त हो लेता है और उसकी सभी प्रवृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में वह ईश्वर के निकट पहुंच जाता है। यह संयम भक्ति के द्वारा ही सम्भव है जो केवल व्यक्ति को नहीं, समाज को भी संयमित रखती है। भक्ति में प्रभु-नाम ही वह उपाय है जिससे समाज के प्रत्येक नर-नारी में बाहर और भीतर उजियारा हो जाता है जैसे द्वार की देहरी पर रखा दीपक समान रूप से बाहर-भीतर को आलोकित करता है (बालकाण्ड, दोहा २१)।

व्यक्तिगत प्रेम का जब सामाजिक रूपान्तरण हो जाता है तब उसके दायरे में पूरा विश्व समाहित हो उठता है। यही वह बिन्दु है जहां से मानव-प्रेम की पैदाइश हो जाती है। समाज या विश्व में फैली अराजकता हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, मद, मत्सर, मोह, लालच जैसे विकारों को छोड़कर छोटों के प्रति स्नेह, सहयोगियों के प्रति प्रेम, परिजनों के प्रति सहानुभूति तथा बड़ों के प्रति सम्मान रखना सब कुछ भक्ति पर निर्भर है। विवेक की लगाम से आदमी विषय-वासनाओं से दूर हो जाता है और उसमें सद्व्यवहार, शुचिता, पवित्रता जैसे भावों के जन्म लेने से वह श्रेष्ठ मनुष्य बन जाता है। भक्त-सन्त इसी कारण श्रेष्ठ मनुष्य माने जाते हैं :–

संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह के करनी।।
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता।।[१८]

स्पष्ट है कि भक्ति आदमी की चेतना को साफ-सुथरा करती है। मेधा और चेतना के सहारे जन प्रकृति के उत्तम, मध्यम और अधम पार्श्वों को छिन्न कर देता है। इसके फलस्वरूप वह अपने अस्तित्व को नाश करते हुए ईश्वर में मिल जाता है। अस्तित्व-नाश से अहंकार का शमन होता है और विवेक उपजता है। हित-चिन्तन उसके विवेक का परिणाम है। वह समाज के लिए, आदमी के दुःख-दर्द के लिए अपना भौतिक शरीर भी छोड़ने के लिए तैयार रहता है, जटायु इसके प्रमाण हैं।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को विस्तार देने में भक्ति की अहम् भूमिका रही है। भक्ति उन सामाजिक मूल्यों का भी सर्जन करती है जिससे विश्व-बंधुत्व की भावना का विकास होता है। प्रेम, क्षमा, दया, श्रद्धा, विश्वास ऐसे ही तत्व हैं जिससे मानव-प्रेम को विश्वस्तर पर फैलाया जा सकता है। तुलसी और उनके राम के लिए जाति-पांति, भेद-भाव महत्व के नहीं हैं। वे हरेक आदमी को एक समान देखने के हामी हैं। हनुमान, सुग्रीव, विभीषण सभी उनके सखा हैं। वे राज्य के लिए समाज को उपेक्षा नहीं करते, बल्कि समाज के लिए अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधा को भी छोड़ देते हैं। सीता का त्याग इसका प्रमाण है। इस प्रकार तुलसी की भक्ति व्यक्ति, परिवार और समाज के लिए हितकारिणी है।

सन्दर्भ :

१. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा १०० ख।

२. नारदभक्तिसूत्र, ५७।

३. हरिभक्तिरसामृतसिंधु, पूर्वलहरी २, श्लोक ३।

४. श्रीमद्भागवत, १०/२९/१३-१५।

५. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, ३५/७-८, दोहा ३५ तथा ३६/१-५।

६. वही, बालकाण्ड, दोहा २१।

७. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा ९० क।

८. वही, उत्तरकाण्ड, ४६/२-४।

९. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा २०३।

१०. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा ३४।

११. विनयपत्रिका, पद १२९।

१२. रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा २२।

१३. वही, बालकाण्ड, २२/६-७।

१४. दोहावली, दोहा संख्या १२७।

१५. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ११८ ख।

१६. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा ७३ ख।

१७. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा ४६।

१८. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा १२५क/६-९।

डॉ० हौसिलाप्रसाद सिंह
उपाचार्य, हिन्दी-विभाग
डॉ० हरीसिंह गौड़ विश्वविद्यालय
सागर (म० प्र०)

॥ श्रीः ॥

कविमल्ल हरिवल्लभभट्ट-कृत

श्लोकबद्ध दशकुमारचरित : एक अध्ययन

संस्कृत गद्य साहित्य के इतिहास में महाकवि दण्डी का नाम विख्यात है। इसके संबंध में एक उक्ति प्रसिद्ध है, जिसके साथ कथानक जुड़ा हुआ है कि स्वयं सरस्वती ने दण्डी को कवि के रूप में उद्घोषित किया था। इससे कालिदास अत्यन्त रुष्ट हुए थे, तभी से यह वाक्य प्रसिद्धि में आया—

"कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।"

इस महाकवि की गद्य रचना का नाम 'दशकुमारचरित' है। इससे पूर्व गद्यकाव्यों में सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' का उल्लेख मिलता है। इसका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इसमें वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु की प्रेमकथा का चित्रण है। कवि ने इसमें श्लेष अलंकार का अधिक प्रयोग किया है। कवि को इस बात का गर्व है कि उसके इस प्रबन्ध में प्रत्येक अक्षर में श्लेष की छटा और विदग्धता है। यह गौडी-रीति का गद्य काव्य है। वास्तव में गद्यकाव्य के लिए यही शैली उपयुक्त मानी गई है। इसीलये महाकवि दण्डी ने लिखा है कि ओज गुण और समास-बाहुल्य ही गद्य का प्राण है—

"ओजः समासभूयस्त्वम् एतत्गद्यस्य जीवतम्"

यद्यपि सुबन्धु की गद्यशैली को देखकर यह कहना अत्यन्त सरल है कि यह गद्य का प्रथम काव्य नहीं हो सकता। इससे पूर्व भी अनेक गद्यकाव्य लिखे गये होंगे, क्योंकि सुबन्धु का गद्यकाव्य श्रेष्ठ गद्यकाव्य का उदाहरण है और गद्यकाव्य के उत्कर्ष की चरम परिणति महाकवि बाणभट्ट के काव्यों में प्राप्त होती है। इसीलये "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" उक्ति गद्यकाव्य में प्रचलित है।

महाकवि दण्डी ने अपने काव्य दशकुमारचरित में नयी शैली का अनुकरण किया। वैसे ये वैदर्भी शैली के लेखक हैं। इनकी पदावली सरस, मधुर, कोमल और भावाभिव्यञ्जक है। इनका पदलालित्य अनुपम है। इनके गद्यकाव्य में अलंकारों का प्रयोग दर्शनीय है। इनमें भी विशेषतया अनुप्रास और यमक की छटा उल्लेखनीय है। भावों में गाम्भीर्य है। अतः गद्यकाव्यों में दशकुमारचरित का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में तीन दण्डी हुए हैं ऐसा उल्लेख मिलता है। चूंकि प्राचीनकाल मे कवि लोग अपने जीवनवृत्त का उल्लेख नहीं किया करते थे, इसीलिये उनके सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणायें समाज में स्थान बनाया करती थीं। महाकवि दण्डी के ग्रंथों में भी उनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती। परन्तु समीक्षकों ने आचार्यदण्डी गद्यलेखक दण्डी और कवि दण्डी को भिन्न-भिन्न मानने का एक प्रश्न उपस्थित किया है। इस प्रकार की स्थिति में सन्देह होना स्वाभाविक है। श्री आगाशे इसी मत के समर्थक हैं। उनका कथन है कि दशकुमारचरित और काव्यादर्श दण्डी के नाम से विख्यात हैं। "त्रयो दण्डो-प्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्" के अनुसार दण्डी के तीन ग्रन्थ होने चाहिये। सामयिक दृष्टि से यह अनुमान होता है कि उनका कोई प्रसिद्ध पद्यात्मक काव्य अवश्य रहा होगा। उपलब्ध इन दो ग्रन्थों से दण्डी को महाकवि का स्थान प्राप्त होना उनकी दृष्टि में असम्भव है। सम्भवतः कवि दण्डी के ग्रन्थ अब नहीं प्राप्त होते। दूसरी ओर काव्यादर्श के सिद्धान्तों और दशकुमारचरित में आकाश-पाताल का अन्तर है। काव्यादर्श में प्रस्तुत अनेक सिद्धान्तों की अवहेलना की है। मूलरूप में इस ग्रन्थ में ओज-गुण का बाहुल्य होना चाहिये और समासों का बाहुल्य भी, परन्तु दशकुमारचरित में इन दोनों का ही अभाव है।

श्री मोरेश्वर रामचन्द्रकाले ने इस मत का खण्डन किया है और यह लिखा है कि दोनों ग्रन्थों के लेखक एक ही दण्डी हैं। आचार्य दण्डी और कविदण्डी में भेद नहीं है। उन्होंने दशकुमारचरित की रचना को कवि के युवावस्था की रचना माना है और काव्यादर्श को परिपक्व अवस्था की रचना स्वीकारा है। सन् 1924 मे श्री एम० आर० कवि ने 'अवन्तिसुन्दरी' नामक गद्यकाव्य को ढूंढ़कर प्रकाशित किया और इसे दण्डी की रचना माना। यह काव्य अत्यन्त विकृत रूप में मिला। इसका एक पद्यात्मकसार भी मिला जिसमें दण्डी और कुछ अन्य कवियों का परिचय मिलता है। इसके अनुसार दण्डी के पूर्वज आनन्दपुर (गुजरात) में रहते थे। बाद में अचलपुर में जो आज एलिचपुर नाम से विख्यात है, आकर बस गये। इनका गोत्र कौशिक था। इनके एक वंशज नारायणस्वामी के पुत्र दामोदर थे जो बाद में भारवि के नाम से विख्यात हुए। दामोदर के पुत्र का नाम मनोरथ था और उनके पुत्र का नाम वीरदत्त। वीरदत्त की पत्नी गौरी इन्हीं कवि दण्डी की माता थीं। इस प्रकार दण्डी वीरदत्त के पुत्र थे। चूंकि इनके माता-पिता दोनों ही बाल्यावस्था में दिवंगत हो गये और कांची पर चालुक्यों का आक्रमण हुआ और दण्डी को वरार से भागना पड़ा, परन्तु बाद में ये पुनः पल्लव-राजाओं के द्वारा राज्य संगठन करने पर अपने स्थान पर लौट आये। इसके अतिरिक्त अन्य कवि दण्डी के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

'दशकुमारचरित' कथा है या आख्यायिका इस पर एक विवाद है। अग्निपुराण, आचार्य भामह और आचार्य विश्वनाथ ने कथा और आख्यायिका के जो लक्षण दिये हैं, उनमें से न तो कथा के ही लक्षण पूर्णरूप से घटते हैं और न आख्यायिका के हो। कवि के वंश-वर्णन के अभाव से नायक के साथ ही अन्यों द्वारा कथा के वर्णन करने से यह कथा है, परन्तु वस्तु की दृष्टि से और कथांशों के नाम उच्छ्वास होने से यह आख्यायिका ही हो सकती है। अतः इसे या तो केवल गद्यकाव्य कहा जा सकता है या मिश्र गद्यकाव्य। दशकुमारचरित के तीन भाग प्राप्त होते हैं—पूर्वपीठिका, दशकुमारचरित और उत्तरपीठिका। पूर्वपीठिका पांच उछ्वासों में विभक्त है और दशकुमारचरित आठ उच्छ्वासों में, उत्तरपीठिका उच्छ्वासों से रहित एक भाग है। इनमें दशकुमारचरित को ही दण्डी की कृति मानी जाती है, पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका को नहीं। इसके संबंध में यह कहा जाता है कि दशकुमारचरित राजवाहन की कथा के बीच में आरम्भ होता है और विश्रुत की कहानी के बीच में ही समाप्त हो जाता है। दशकुमारचरित का तो एक ही रूप मिलता है, परन्तु पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका के कई रूप मिलते हैं। पीठिकाओं और मूलभाग की घटनाओं में वैषम्य है। पीठिका में दशकुमारचरित की अपेक्षा गुणों में बहुत ही हीनता है। पूर्वपोठिका और दशकुमारचरित में उच्छ्वासों का वर्गीकरण पृथक्-पृथक् है। यह तो माना जा सकता है कि कवि ने ग्रन्थों को अपूर्ण छोड़ा है, परन्तु यह सम्भव नहीं कि उसने अपने ग्रन्थ को एक कथा के बीच में आरंभ किया हो। पूर्व एवं उत्तरपीठिकायें भी भिन्न-भिन्न शैली में हैं। इसी प्रकार मुख्य भाग और पीठिकाओं में घटनाओं की विषमता है। जैसे पूर्वपीठिका में अर्थपाल को तारावली का पुत्र बतलाया है, परन्तु दशकुमार के चतुर्थ उच्छ्वास में वह कान्तिमती का पुत्र है। इसी प्रकार पूर्वपीठिका में प्रभति सुमति का पुत्र है परन्तु दशकुमार चरित में वह कामपाल का पुत्र है। इसी प्रकार कुछ अन्य भी विषमतायें हैं, जिससे इसकी विभिन्नता प्रकट होती है।

कविमल्ल श्री हरिवल्लभ भट्ट ने पूर्वपीठिका, दशकुमारचरित और उत्तरपीठिका—इन तीनों से युक्त काव्य को एक ही माना है। उनकी दृष्टि में यह एक ही कवि की रचना है। इसीलिये उन्होंने इस गद्यकाव्य को जब पद्य में रूपान्तरित करने का निश्चय किया तो उन्होंने उसी क्रम से प्रथम पांच उच्छ्वासों में पूर्वपीठिका की कथावस्तु को श्लोकवद्ध प्रस्तुत किया। इसके उपरान्त मूल दशकुमारचरित के आठ उच्छ्वासों को और अन्त में नवम उच्छ्वास के नाम से उत्तरपीठिका का कथानक पद्यों में प्रस्तुत किया। कविमल्ल का उद्देश्य इस गद्यकाव्य का पद्य के माध्यम से लोक में ख्याति करना रहा है। इसीलिये उन्होंने सम्पूर्ण गद्यकाव्य को एक मानकर पद्य रूप में प्रस्तुत किया है। दशकुमारचरित की कथावस्तु को कविमल्ल के पद्यों

में यहां उद्धरण रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे कविमल्ल की काव्य-शैली का परिज्ञान समीक्षक ही कर सकेंगे।

पूर्वपीठिका प्रथम उच्छ्वास-कथानक

कविमल्ल ने दशकुमार दशा में तो दशकुमारचरित प्रत्येक गद्य खण्ड का अर्थांश में अनुवाद किया है, परन्तु यहां उन्होंने इस दशकुमारचरित काव्य में उस कथानक के सारांश को लेकर उसे पद्य में प्रस्तुत किया है। इस काव्य के प्रारम्भ में कोई मंगलाचरण भी नहीं किया, केवल महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव के समान यहाँ भी वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण माना जा सकता है क्योंकि इस काव्य का प्रारम्भ उन्होंने "श्रीमान्" शब्द से किया है—

"श्रीमान्मगधदेशेषु पुरा पुष्पपुरीपतिः ।
आसीद्वसुमतीभोक्ता राजहंसः क्षितीश्वरः ।।"[१]

मूल ग्रंथ में महाकवि दण्डी ने पुष्पपुरी और राजा राजहंस तत्पश्चात् महारानी वसुमती का आलंकारिक चित्रण किया है। विशेषतः वसुमती के चित्रण में कवि दण्डी ने अनेक उपमानों का प्रयोग किया है। उक्त पद्य में कविमल्ल ने केवल वसुमती के नाम का उल्लेख किया है। इसके पश्चात् वे सीधे मूल कथानक पर आ जाते हैं और राजहंस के मंत्रियों का उल्लेख करते हैं।

"तस्य त्रयो धर्मपालस्तथा पद्मोद्भभिधः ।
सितवर्मेति सचिवा बभूवुः सोमवंशिनः ।।"[२]

और तृतीय पद्य से वे उन मंत्रियों के पुत्रों की चर्चा करते हैं—

पूर्वस्य सुश्रुतो रत्नोद्भवश्चैवं सुतावुभौ ।
तयोर्मध्ये व्यधादन्त्यः समुद्रतरणं सुधीः ।।
सुमन्त्रोऽथ सुमित्रश्च कामपालः परस्य च ।
उल्लङ्घ्य मातृपित्राज्ञां प्रावात्सीदेषु पश्चिमः ।।
सुमति सत्यवर्मा च तृतीयस्येति दारकौ ।
कनीयंस्तीर्थयात्रार्थं क्वचिदप्यनयोर्ययौ ।।[३]

इसके पश्चात् एक पद्य में मालवाधिपति के साथ हुये संग्राम का उल्लेख है और फिर रानी वसुमती के स्वप्न का वर्णन। परिणामस्वरूप रानी गर्भ-

---

१. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पूर्वपीठिका प्रथमोच्छ्वास, श्लोक १
२. वही श्लोक २
३. वही श्लोक ३-५

वती हो जाती है और राजा उसका सीमन्तोन्नयन संस्कार कर देता है। एक दिन एक व्यक्ति यति के वेष में आता है जो वास्तव में राजहंस का गुप्तचर होता है। वह राजा को सूचना करता है कि महाकाल शिव की कृपा से मालवेन्द्र मानसर ने एक विचित्र गदा प्राप्त की है और वह आपसे अपने पूर्व पराजय का बदला लेने आ रहा है।

विसृज्य सर्वान्सामात्यः कदाचिदथ संसदि ।
यतिं दौवारिकानीतं जगादेत्थं वचो रहः ।।
तष्ट्वैकवीराराातिघ्नीं महाकालाद् गदां रिपुः ।
ईष्टे दुष्टोऽभियोक्तुं द्राग्भवन्तमिति सोऽभ्यधात् ।।[४]

उनमें युद्ध होता है और संकेतानुसार वह राजा शत्रु की गदा से मूर्च्छित हो जाता है, जिन्हें रथ में जुते हुये घोड़े विन्ध्याचल के जंगलों में ले जाते हैं—

प्रवृत्ते सङ्करे शत्रोर्गदया मूर्च्छितं नृपम् ।
हतसारथिका रथ्या दवाद्विन्ध्यं हि निन्यिरे ।।[५]

जब मंत्री लोग राजा को युद्ध भूमि में नहीं देखते तो वे उसके मृत्यु की कल्पना कर लेते हैं और रानी वसुमती को इसकी सूचना देते हैं। शोकविह्वल रानी अपने पति के अनुगमन को सन्नद्ध होती है, परन्तु ज्योतिषियों के कथन से कि तुम्हारा पुत्र चक्रवर्ती होगा वह अनुगमन का विचार स्थगित कर देती है—

ज्योतिर्विज्जल्पितः पुत्रश्चक्रवर्ती जनिष्यते ।
क्षणमस्थायि बहुशस्तैरेवमनुनीतया ।।[६]

कुछ दिनों बाद वे घोड़े अपने स्वामी राजा राजहंस को लेकर उस स्थान पर पहुँचते हैं, जहां पर रानी वसुमती शोकमग्ना है और समय व्यतीत कर रहो है। मुनि वामदेव के आश्वासन से दोनों को सान्त्वना प्राप्त होती है और कुछ समय बाद रानी के पुत्र उत्पन्न होता है। राजा उसका नाम राजवाहन रखते हैं—

कृतज्ञो नृपतिः पुत्रं पुरस्कृत्य पुरोधसम् ।
राजवाहननामानं संस्कारविधिनाकरोत् ।।[७]

---

४. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पूर्वपीठिका प्रथम उच्छ्वास, श्लोक १२-१३
५. वही श्लोक १६
६. वही श्लोक १८
७. वही श्लोय २६

इसी प्रकार उनके मंत्रियों के भी पुत्रों का उल्लेख किया गया है—

प्रमतिर्मित्रगुप्तोऽथ मन्त्रगुप्तश्च विश्रुतः ।
तस्मिन्हि कालेऽजायन्त मन्त्रिणां सूनवः क्रमात् ।।[८]

इन तीन मंत्रिपुत्रों के साथ चतुर्थ राजकुमार राजवाहन बालक्रीडायें करता है। पंचम कुमार के आगमन-वृत्तान्त को कविमल्ल ने ११ पद्यों में वर्णित किया है, जिसमें लिखा है कि किसी एक तपस्वी ने महाराज को एक राजकुमार भेंट कर निवेदन किया कि महाराज मैंने एक स्त्री को जंगल में रोती हुई देखा था और मेरे पूछने पर उसने आत्म-वृत्तान्त कहा था कि जब वह पुष्पपुरी को जा रही थी, तो मालव नरेश ने आक्रमण कर दिया था और वहीं मेरे दो पुत्र हुये थे, उनमें से एक पुत्र व्याघ्र के डर से मेरे हाथ से गिर गया और उसे कुछ शिकारी ले गये। वे उसे लेकर किसी देवी के मन्दिर में गये और वहां उसकी बलि करने लगे। वहां से उसे वह लेकर आया है इसीलिये उसका नाम राजा ने उपहार वर्मा रखा था। दूसरे अर्थात् छठे मंत्रिपुत्र के कथानक का उल्लेख करते हुये यह अंकित किया गया है कि एक शबरी के पास सुन्दर पुत्र को देखकर राजा राजहंस ने उससे प्रश्न किया और उसे 'उपहार वर्मा' के नाम से सम्बोधित किया है—

तीर्थस्नानाय पुण्येह्नि गच्छन्नथ वने नृपः ।
कयापि ललितं बालं कञ्चिद्वीक्ष्य जगाद ताम् ।।
क एष सुन्दरि ! शिशुर्भवत्याश्च न भासते ।
त्वदधीनः कथं जातस्तत्सर्वं कथयस्व मे ।।
भिल्लसैन्ये हरत्यत्र सर्वस्वं कस्यचित्पुरा ।
भर्त्रा मह्यं प्रदत्तोयं खेलन्नास्ते विवर्द्धितः ।।
इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा निर्णीय तं परम् ।
अथानुनीय तामेनं गृहीत्वा च गृहेऽनयत् ।।[९]

दूसरे दिन सोमदेव एक शिशु को लेकर आता है और उसका वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। इसका नाम 'पुष्पोद्भव' है, इस वृत्तान्त को लगभग १२ पद्यों में कवि ने प्रस्तुत किया है।

एक दिन रानी वसुमती किसी शिशु को लेकर आती है और राजा के पूछने पर उसका वृत्तान्त वर्णन करती है। यह अष्टम कुमार 'मणिभद्र की

---

८. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पूर्वपीठिका प्रथम उछ्वास, श्लोक २७
९. वही श्लोक ४२ से ४५

पुत्री और कामपाल की पत्नी तारावली नामक यक्षिणी से प्राप्त हुआ है, जिसका नाम 'अर्थपाल' है—

नन्दिनीं मणिभद्रस्य कामपालस्य वल्लभाम् ।
तारावलीति जानीहि देवि मां यक्षयोषिताम् ।।
एनं त्वत्पुत्रसेवायै शिवमित्रप्रबोधिता ।
मत्पुत्रमानयन्त्यास्मि दयालुस्त्वं विवर्द्धय ।।[10]

ततश्च राजहंस के अमात्य सत्यवर्मा के पुत्र सोमदत्त की प्राप्ति का उल्लेख किया है । यह सत्यवर्मा का पुत्र था । इस कथानक का प्रारम्भ कविमल्ल ने इस प्रकार किया है—

परेद्युरथ भूभर्तु रग्रे निक्षिप्यबालकम् ।
कञ्चिदेकं मुनिः कश्चिदवादीत्तत्कथामिति ।।[11]

और इस प्रकार मुनि द्वारा उपस्थित उस पुत्र का नाम 'सोमदत्त' रखा गया—

तं तत्स्थानानभिज्ञत्वान्नृपतिः खिन्नमानसः ।
सोमदत्तेति विख्याप्य नाम्ना सुमतयेऽददात् ।।[12]

और अन्त में राजहंस द्वारा सभी राजकुमारों के चौलोपनयन आदि संस्कारों का उल्लेख कर कविमल्ल महाकवि दण्डी के समान सकलकला-विशारद कुमारों को देखकर राजहंस की शत्रु दुर्जेयता का संकेत किया है—

राजपुत्रोऽथ संस्कारं चौलोपनयनादिकम् ।
कुमारैर्मिलितैरित्थं क्रीडन्नलभताखिलम् ।।
एतांस्तान्कृतिषु निरालसान्विविच्य
व्युत्पन्नान्सकलकलाविधौ कुमारान् ।
जातोऽहं रिपुजनदुर्लभोऽधुनेत्थं
सन्तोषं मनसि बभान राजहंसः ।।[13]

इस प्रकार यह पूर्वपीठिका का प्रथम उच्छ्वास ७५ पद्यों में पूर्ण होता है ।

---

१०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० प्र० उ० श्लोक ६१-६२
११. वही श्लोक ६५
१२. वही श्लोक ७३
१३. वही श्लोक ७४-७५

द्वितीय उच्छ्वास द्विजोपकृति राजवाहनवृत्तान्त

महाकवि दण्डी ने पूर्वपीठिका के द्वितीय उच्छ्वास में जिस कथानक को प्रस्तुत किया है, इसका नाम 'द्विजोपकृति' है। वामदेव गुरु की सम्मति से महाराज राजहंस ने राजकुमार राजवाहन के नेतृत्व में सभी कुमारों को दिग्विजय के लिये भेज दिया था। वे सब विन्ध्यवन में पहुंचते हैं जहां एक ब्राह्मण अपनी कथा सुनाता है कि वह पहले एक किरात था और एक ब्राह्मण की रक्षा में मारा गया था। प्रेतपुरी पहुंचने पर यम ने उसे पुनः जीवित कर दिया और वह अब शिव की उपासना करता है। शिव ने स्वप्न में उसे पाताल का राज्य प्राप्त करने की विधि बतलायी और उसमें राजवाहन से सहायता लेने को कहा है। राजवाहन अपने अन्य साथियों को बिना कहे उसकी सहायता के लिये उसके साथ चल देता है। जब वह लौटकर आता है तब तक उसके साथी अन्य मंत्रिकुमार उसकी खोज में निकल जाते हैं, जो अपना वृत्तांत अग्रिम उच्छ्वास में प्रस्तुत करता है। इसी कथानक को कविमल्ल ने २५ पद्यों में प्रस्तुत किया है।

इसका प्रथम पद्य है—

पित्रा मुनि प्रेरितेन दिग्जयाय निबोधितः।
ससुहृद्विन्ध्यगर्भेऽथ प्राविशद्राजवाहनः॥[१४]

किरात अपना यमगृह से पुनरावर्तन का वृत्तान्त प्रस्तुत करते हुये कहता है—

हतो निर्भर्त्सयद्भिस्तैर्गत्वा प्रेतपुरीं ततः।
यमाय प्रणतः सोऽथ व्याजहारेति किङ्करान्॥
विमुञ्चत प्रदर्श्येमं तांस्तान्पापविधायिनः।
नास्याद्यनैष समयो द्विजार्थं यदसौ मृतः॥[१५]

उसकी सहायता के लिये राजवाहन का अपने साथियों को सोते हुये छोड़कर तुरन्त गमन करना इस पद्य में वर्णित है—

साधनाकांक्षिणस्तस्मात्साहाय्यं मे विधीयताम्।
तथेति सुप्तान्सोऽन्यत्र तांस्त्यक्त्वा तद्युतोऽसरत्॥[१६]

---

१४. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० द्वितीय उच्छ्वास श्लोक १
१५. वही श्लोक ५-६
१६. वही श्लोक १२

वह ब्राह्मण राजवाहन की आज्ञा से पाताललोक पर शासन करता है—

राजवाहनसम्मत्या राज्यादृक्षन् रसातलम् ।
अमन्दानन्दमाविन्दत्तां मातङ्गोऽप्युदूह्य सः ।।[17]

उज्जयनी में सोमदत्त की प्राप्ति का वर्णन—

भ्रमन्नवीक्ष्य तान् पृथ्वीं विशालाक्रीडमध्यगः ।
कञ्चिदान्दोलिकारूढं तत्रैक्षिष्टादराज्जनम् ।।[18]

और अन्त में सोमदत्त द्वारा अपने वृत्तान्त का संकेत—

निशेषं सविनयमेषं सोऽप्यमुष्मै
मित्राङ्गव्यतिकरभिन्नरोमहर्षः ।
व्यातन्वन्मुकुलित पाणिपुण्डरीकं
तत्स्वीयं चरितमथाह सोमदत्तः ।।[19]

तृतीय उच्छ्वास सोमदत्तचरित

राजवाहन को खोजते हुये सोमदत्त एक जंगल में पहुंचता है वहाँ एक नदी के किनारे उसे एक अमूल्य मणि मिलती है। वह मणि को लेकर एक मन्दिर में पहुंचता है। वहीं एक राजा भी सेना का पड़ाव डाले हुये मिलता है। मन्दिर में उसे एक दुःखी ब्राह्मण मिलता है। उस ब्राह्मण से ही यह पता चलता है कि यह लाट देश का राजा मत्तकाल है। मत्तकाल ने उस प्रदेश के राजा वीरकेतु से उसकी पुत्री वामलोचना के साथ विवाह का प्रस्ताव किया है। उसके आक्रमण से भयभीत होकर वीरकेतु अपनी पुत्री को मानपाल नामक मंत्री के साथ मत्तकाल के पास भेज देता है। मानपाल मत्तकाल को मारने का षड्यंत्र रचता है। सोमदत्त उस मणि को ब्राह्मण को देकर आराम करने लगता है। इधर ब्राह्मण वहां से चला जाता है, परन्तु उसे मत्तकाल के सैनिक पकड़ लेते हैं क्योंकि उसके पास वह मणि होती है। बहुत पीटने पर ब्राह्मण उसे उस मन्दिर में लाते हैं, जहां सोमदत्त होता है। सोमदत्त के अपने आपको निर्दोष कहने पर भी वे सैनिक उसे पकड़कर कारागार में डाल देते हैं। कारागार में कुछ और लोग भी होते हैं। उनसे यह जानकारी मिलती है

---

१७. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० द्वि० उ० श्लोक १९
१८. वही श्लोक २२
१९. वही श्लोक २५

कि वे मानपाल के दास थे और मत्तकाल को मारने गये थे पर वह वहां नहीं था। अतः धन लेकर भाग गये, परन्तु पकड़े गये। उस धन में से एक कीमती रत्न खो गया था उसे निकलवाने के लिये सबको मारने की आज्ञा हुई थी। सोमदत्त भी अपना किस्सा सुनाता है। आधी रात बीतने पर वह अपने साथियों को छुड़ाकर मानपाल के पास पहुंच जाता है। मानपाल इस वृत्तान्त से खुश होता है। राजा मत्तकाल दूत भेजकर उन चारों को मानपाल से मांगता है और न मिलने पर आक्रमण करता है। भयंकर युद्ध होता है और सोमदत्त मत्तकाल का सिर काट देता है। राजा वीरकेतु सोमदत्त का सम्मान कर अपनी पुत्री वामलोचना का उससे विवाह कर देता है। अब वह युवराज है। अपने मित्र के वियोग से व्याकुल होकर एक तपस्वी की सम्मति से वह महाकाल के पूजन के लिये उज्जैन आता है और वहीं सौभाग्यवश राजवाहन से साक्षात्कार हो जाता है। सोमदत्त द्वारा यह कथा सुनाये जाने पर पुष्पोद्भव आ पहुंचता है और अग्रिम उच्छ्वास में वह अपना वृत्तान्त सुनाता है।

कविमल्ल ने इस वृत्तान्त को भी २५ पद्यों में प्रस्तुत किया है। उसका प्रथम पद्य है—

देव ! सोऽहं पिपासावान् स्वैरं वनभुवि व्रजन् ।
पिबन् स्रोतस्विनीपाथस्तत्रैकं राजगृहे मणिम् ॥[२०]

कविमल्ल ने उपर्युक्त वृत्तान्त का सारांश ही इन पद्यों में प्रस्तुत किया है। जैसे मत्तकाल के सैनिक मंत्री मानपाल को कारागार से भागे हुये चोरों को पुनः लौटाने के लिये कहते हैं—

परेद्युर्मत्तपालीयाः पुरुषाः केचनाब्रुवन् ॥
अस्मन्नृपगृहान्मन्त्रिन् ! चौरास्वकटकेऽविशन् ।
तानर्पय महानर्थो भविष्यति न चेदिति ॥[२१]

इसी प्रकार सोमदत्त को युवराजपद प्राप्ति, वामलोचना से विवाह और महाकाल का आश्रय निम्नलिखित पद्यों में चित्रित किया गया गया है—

तत्राऽऽगतः शुभदिने पुत्रीं मह्यमदान्नृपः ॥
यौवराज्याऽभिषिक्तोऽहं साकं तत्सुतयाऽनया ।
विविधं निर्विशन्सौख्यं महाकालं च शिश्रिये ॥[२२]

---

२०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पूर्वपीठिका तृतीय उच्छ्वास, श्लोक १
२१. वही श्लोक १६-१७
२२. वही श्लोक २०-२१

अन्तिम पद्य अग्रिम उच्छ्वास की कथा का संयोजक है जिसमें पुष्पोद्भव अपनी कथा प्रस्तुत करता है—

तद्वृन्दं निखिलमथो वियुक्तमेषां
स्निग्धानामिह मिलिताः किमित्थमुक्त्वा ।
शीर्षोदञ्चितचटुलाञ्जलिश्चरित्रं
स्वं पुष्पोद्भव इति वक्तुमन्वजानात् ।।[23]

चतुर्थ उच्छ्वास पुष्पोद्भवचरित

कुछ दिन घूमने के पश्चात् एक दिन पुष्पोद्भव ने एक पर्वत से गिरते हुये किसी पुरुष को देखा, वास्तव में वह इसका पिता रत्नोद्भव ही था । १६ वर्ष पूर्व जहाज के डूब जाने पर वह अपनी पत्नी से वियुक्त हो गया था । इतने समय तक उसके मिलन की आशा में जीवन बिताते हुये वह अपना धैर्य खो बैठा था । उसी समय वह किसी स्त्री की आवाज सुनता है । जो चिता में कूदकर प्राणोत्सर्ग करना चाहती है, वह उसकी माता थी । वह दोनों को लेकर उज्जैन आता है वहां बन्धुपाल नामक धनिक से परिचय होता है और उसकी पुत्री बालचन्द्रिका के प्रणय में उलझ जाता है । इधर उज्जैन के मंत्री दारुवर्मा उस बालचन्द्रिका से विवाह करना चाहता है । वह यह बात पुष्पोद्भव से कहती है और उसके द्वारा बतायी गयी योजनानुसार यह घोषणा करती है कि उस पर एक यक्ष का अधिकार है, जो उससे बालचन्द्रिका को मुक्त करा लेगा, वही उसे प्राप्त कर सकता है । पुष्पोद्भव दासी के रूप में बालचन्द्रिका के साथ रहता था । एक दिन अवसर पाकर उससे दारुवर्मा की हत्या कर दी । इसके बाद दोनों का विवाह हो जाता है । बन्धुपाल शकुन देखकर भविष्य-वाणी भी करता है उसी से राजवाहन के उज्जैन आने की बात मालूम होती है इसीलिये पुष्पोद्भव उससे मिलने वहां आया है ।

कविमल्ल ने इस कथानक को ४९ पद्यों में संग्रथित कर प्रस्तुत किया है । मंत्रिपुत्र पुष्पोद्भव अपना वृत्तान्त इस प्रकार प्रारम्भ करता है—

महीमटन्नहमपि तले प्रच्छायशीतले ।
अतिष्ठं शैलवृक्षस्य मित्रेष्वेकतमस्तपन् ।।[24]

---

२३. 'श्लोकबद्ध दशकुमार चरित' पूर्वपीठिका तृतीय उच्छ्वास श्लोक २५
२४. वही चतुर्थ उच्छ्वास श्लोक १

अपने पिता की प्राण रक्षा करने के बाद वह अपनी माता का वृत्तान्त प्रस्तुत करता है।

इत्युपामन्त्र्य पितरं तत्राऽऽनेतुं स्पृहां व्यधाम्।
तादृशीं वीक्ष्य काञ्चित् स्त्रीं सवृद्धां पितुरन्तिके॥
वृद्ध केयं च कुत्रत्था किन्निमित्तमिह स्थिता।
कान्वियं दुरवस्था वामिति पृष्टाऽऽह साऽथै माम्॥
दयितेन समं यान्ती मग्नायां नावि नरिधौ।
तटाऽऽगताऽस्त्यसौ पुत्री श्रेष्ठिनः प्रसवोन्मुखी॥[२५]

बालचन्द्रिका के साथ पुष्पोद्भव का प्रणय और दारुवर्मा का उसे हठात् प्राप्त करना, उसका पुष्पोद्भव से आत्मनिवेदन और यज्ञ-परिग्रहण की कथा को कविमल्ल ने निम्नलिखित पद्यों में प्रस्तुत किया है—

अथ दुष्कर्म कुर्वाणो दरुवर्मा निरीक्ष्य माम्।
विस्मृत्य कन्यकादोषं हठाद् दुष्टो रिरंसति॥
रहः सञ्जातविस्रंभा त्यक्त्वा लज्जाभये शनैः।
भद्र! तच्चिन्तया दैन्यवत्यस्मीति जगाद सा॥
यक्षः कश्चिदधिष्ठाय निरुन्धे बालचन्द्रिकाम्।
रतिहर्म्ये सखीयुक्तां तामाह्वयतु तत्स्पृही॥[२६]

पुष्पोद्भव के पूछने पर बन्धुपाल द्वारा शकुन-शास्त्र के माध्यम से यह कहना कि उसका मनोरथ तीस दिन में पूरा होगा, जो इस प्रकार वर्णित है—

युष्मन्मनोरथस्तस्मिन् हते प्रिय! फलिष्यति।
तथैवेत्थं विधास्येऽहं भवदुक्तं यथोदितम्॥
त्रिंशद्दिनाऽनंतरं हि भवत्संगो भविष्यति।
शकुनज्ञाद्बन्धुपालात्ततोऽहमिति बुद्धवान्॥[२७]

अन्त में बालचन्द्रिका के साथ उसका विवाह और बन्धुपाल द्वारा निर्दिष्ट तिथि को राजवाहन से संयोग निम्नलिखित पद्यों में वर्णित है—

२५. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० चतुर्थ उच्छ्वास श्लोक ९, १०, ११
२६. वही श्लोक २८-३०
२७. वही श्लोक ३८-३९

दिनेषु केषुचित् पश्चात्तामूहे बालचन्द्रिकाम् ।।
दिनेऽस्मिन् तेन निर्दिष्टे पुराद्वहिरिह स्थितः ।
भवदालोकनसुखं लब्धवान् देवयोगतः ।।[२८]

इसका अन्तिम पद्य है—

आस्तेऽयं प्रभुतनयो ममेत्यथोक्त्वा
बन्धुभ्यः पुरि च निशाम्यभूसुरेति ।
एतस्य स्वगृहजुषो यथानुकूल्यं
सर्वं स प्रतिदिनमाददे नमस्यन् ।।[२९]

पंचम उच्छ्वास अवन्तिसुन्दरी-परिणय-कथा

पूर्व पीठिका पंचम उच्छ्वास में अवन्तिसुन्दरी के परिणय कथा का उल्लेख है। अवन्तिसुन्दरी महाराज राजहंस के शत्रु मानसार की पुत्री थी, जो उज्जयिनी में ही रहती थी। राजवाहन के साथ जब इसका मिलन होता है, तो वह उससे प्यार करने लगती है। इधर मानसार ने अपना राज्य अपने पुत्र दर्पसार को सौंप दिया था और दपसार ने भी दारुवर्मा और चण्डवम को राज्य देकर वन में प्रस्थान कर दिया था। पुष्पोद्भव ने अपनी कथा में बतलाया था कि उसने दारुवर्मा को मार दिया था। अब केवल चण्डवर्मा ही राज्य कर रहा था। राजवाहन अवन्तिसुन्दरी को प्राप्त करने की चिन्ता में था कि उसे एक ऐन्द्रजालिक मिलता है। वह ही मालवराज को खेल दिखाते हुये दोनों का विवाह करा देता है। खेल की समाप्ति पर ऐन्द्रजालिक की आज्ञा से सब मायापात्र स्थान छोड़कर चले जाते हैं और पूर्व प्रबन्ध की सहायता से राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी दोनों अन्तःपुर में पहुंच जाते हैं और सुख से रहने लगते हैं।

इस कथानक को कविमल्ल २५ पद्यों में प्रस्तुत किया है। इस उच्छ्वास की कथा का शुभारम्भ करते हुये कविमल्ल ने लिखा है कि बालचन्द्रिका के साथ राजकुमार अवन्तिसुन्दरी वसन्त में विहार करने के लिये आयी, वहीं पुष्पोद्भव के साथ राजवाहन विद्यमान था और उस अवन्तिसुन्दरी को देखकर राजवाहन रोमांचित हो उठता है और राजकुमारी भी उत्कण्ठित हो जाती है—

---

२८. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० चतुर्थ उच्छ्वास श्लोक ४५-४६
२९. वही श्लोक ४९

अवन्तिसुन्दरी नाम बालचन्द्रिकयान्विता ।
सखीभिर्निष्कुटे रेमे वसन्तेऽथ नृपात्मजा ।।
पुष्पोद्भवयुतस्तत्र प्रविष्टो राजवाहनः ।
बालचन्द्रिकयाऽऽहूतस्तथा राजसुताऽवन्तिके ।।
अभूत् दृष्ट्वैनमुत्का सा सोऽप्यासीत् पुलकाकुलः ।
मिथः प्रेम तयोर्ज्ञात्वा तामूचे बालचन्द्रिका ।।[30]

बालचन्द्रिका के निर्देशानुसार अवन्तिसुन्दरी राजवाहन की अर्चना करती है। राजवाहन सोचता है कि यह मेरे पूर्व जन्म की पत्नी यज्ञवती है अन्यथा इसके प्रति मेरा यह अनुराग नहीं होता है। उसी समय एक राजहंस आता है, बालचन्द्रिका उस हंस को पकड़ने के लिये उद्यत है। उसी समय राजवाहन कहता है कि सखी पहले कभी शाम्ब नाम के किसी राजा ने अपनी पत्नी के साथ विहार करते हुये कमल को तोड़कर और वहीं निद्राधीन एक राजहंस को धीरे से पकड़कर उस कमलतन्तु के दोनों पांव बांधकर अपनी पत्नी से कहता है मैंने इस हस को बांध दिया है अब तुम इससे खेल सकती हो। उसी समय उस राजहंस ने शाम्ब को शाप दिया था कि तुम भी रमणी के विरह सन्ताप का अनुभव करो इत्यादि। इस समस्त कथानक को कविमल्ल ने इस प्रकार गुम्फित किया है—

तस्मिन्नेव क्षणे कोऽपि हंसस्तत्रागमत्ततः ।
राजपुत्र्या नियुक्तां तद्ग्रहणेऽब्रूत तत्सखीम् ।।
शाम्बः कश्चित् पुरा राजा बद्ध्वोचे हंसमंगनाम् ।
शान्तो मुनिवदास्तेऽथ स्वेच्छयाऽयं प्रयात्विति ।।
ऋषिरप्येनमशपत् स्त्रीवियुक्तो भवेति सः ।
पुनरूचे तेन राज्ञा याचितः क्षम्यतामिति ।।
आ द्विमासं निगडितः प्राप्य स्त्रीविरहं ततः ।
भाविजन्मनि राज्यं त्वं भूप ! भुङ्क्ष्व सहैतया ।।[31]

राजवाहन जब अवन्तिसुन्दरी के विरह में अत्यधिक पीड़ित हो रहा है, तभी एक विध्येश्वर नामक ऐन्द्रजालिक आता है। पुष्पोद्भव से सारी बात जानकर वह मालवेन्द्रपुत्री अवन्तिसुन्दरी का विवाह सभी पुरवासियों के

---

३०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० पं. उ० श्लोक १-२ व ३
३१. वही श्लोक ७ से १० तक

समक्ष राजवाहन से करवाने की प्रतिज्ञा कर इस वृत्तान्त की सूचना बालचन्द्रिका के द्वारा अवन्तिसुन्दरी को भिजवा देता है। कविमल्ल के शब्दों में देखिये—

औदासीन्यनिदानं किं तिष्ठत्याज्ञाङ्किते मयि।
कोऽप्यैन्द्रजालिकस्तत्र राजवाहनमित्यवक्।।
मालवेन्द्रसुताऽनेन दुर्लभा मित्र ! वाञ्छ्यते।
इति पुष्पोद्भवस्तस्मै प्रत्युत्तरमुदीर्णवान्।।
स्वपुत्र्याः सार्द्धमेतेन पारयिष्यामि मोहयन्।
विवाहाय नृप प्रातरेव गत्वेत्यथाह सः।।
ततो निवृत्य स्वावासे श्रुत्वैवं राजवाहनः।
तद्बालचन्द्रिकाद्वारा वृत्तं तस्मै न्यवेदयत्।।[32]

और अन्त में ऐन्द्रजालिक की शक्ति से राजवाहन की मनोकामना पूर्ण होती है—

शक्तिभ्यां कथमपि दैवमानुषीभ्यां
भुञ्जानः स्वगतमनोरथस्य सिद्धिम्।
हर्म्यस्थस्तत इति राजवाहनोऽस्यै
कामिन्यै निखिलमथाह लोकवृत्तम्।।[33]

दशकुमारचरित प्रथम उच्छ्वास

यहां से दशकुमारचरित का मूलभाग प्रारम्भ होता है। इसे आठ उच्छ्वासों में विभक्त किया गया है। प्रथम उच्छ्वास की कथा का सम्बन्ध पूर्वपीठिका के अन्तिम कथा से है, जिसमें राजकुमार राजवाहन का मानसार की पुत्री अवन्तिसुन्दरी के साथ ऐन्द्रजालिक द्वारा कराये गये विवाह संबंध से है। जब राजकुमार और राजकुमारी अन्तःपुर में विहार कर रहे होते हैं, तभी पूर्वजन्म के शापानुसार राजवाहन के पांव में चांदी की बेड़ी पड़ जाती है। इसे राजकुमार तो समझता था, क्योंकि पूर्व जन्म में उसने एक हंस को इसी प्रकार बांधा था जिसका संकेत पूर्व उच्छ्वास में आ चुका है। वहां कविमल्ल ने एक पद्य प्रस्तुत किया था जिसे यहां उद्धृत किया जा रहा है—

---

३२. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू० पी० पं० उ० श्लोक १९ से २२ तक
३३. वही श्लोक २५

आ द्विमासं निगडित: प्राप्य स्त्रीविरहं ततः ।
भाविजन्मनि राज्यं त्वं भूय ! भुङ्क्ष्व सहैतया ।।[३४]

राजकुमारी को इस शाप का पता नहीं था। अतः वह खिन्न होकर विलाप करने लगती है, जिसे सुनकर अन्तःपुर के रक्षक वहां पहुंचकर राजकुमार राजवाहन को बन्दी बना लेते हैं। पूरे वृत्तान्त को जानकर चण्डवर्मा उसे मृत्युदण्ड देना चाहता है, परन्तु मानसार के कथनानुसार उसे राजा दर्पसार से अनुमति हेतु दूत भेजना पड़ता है। इसी बीच चण्डवर्मा चम्पानगर के राजा सिंहवर्मा की पुत्री से विवाह करना चाहता है और उसके इन्कार करने पर वह उस पर आक्रमण कर देता है। सिंहवर्मा अकेला ही उससे युद्ध करने चला जाता है। और अपने सहायक मित्रों के आगमन की प्रतीक्षा भी नहीं करता। परिणामस्वरूप वह हार जाता है। हठात् उसे अपनी पुत्री के विवाह की अनुमति देनी होती है। इधर जब वह अपनी विवाह की तैयारी कर रहा होता है कि राजा दर्पसार से राजकुमार राजवाहन को मृत्यु दण्ड दिये जाने का संदेश प्राप्त हो जाता है। राजवाहन को पिंजरे से निकालकर हाथी से कुचलवाने के लिये लाया जाता है और उसी समय एक आश्चर्य होता है कि उसके वह पांव की बेड़ी (रजत शृंखला) सुरत मंजरी अप्सरा के रूप में प्रकट होकर राजकुमार को शाप का वृत्तान्त सुनाकर अन्तर्धान हो जाती है। बंधन से उन्मुक्त राजकुमार हाथी पर जा बैठता है, उसी समय यह सूचना मिलती है कि एक चोर चण्डवर्मा को मार चुका है और वह उन्मत्त भाव से घूम रहा है। वास्तव में वह चोर राजवाहन का मित्र अपहार वर्मा होता है। फिर दोनों मिलकर शत्रु सेना का संहार करते हैं। उसी समय उनके अन्य मित्र भी आ जाते हैं, जिनकी सिंहवर्मा को आवश्यकता थी। ये मित्र हैं—उपहार वर्मा, अर्थपाल, प्रभति, मित्रगुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत। इन सबकी सहायता से वे चण्डपाल की सेना का संहार कर देते हैं और सब मित्र मिलकर आनन्दित होते हैं। इस चरित का नाम राजवाहन चरित है। इसके बाद सर्व प्रथम अपहार वर्मा अपना कथानक सुनाता है।

कविमल्ल ने इस कथानक को ४२ पद्यों में प्रस्तुत किया है। इसका प्रारम्भ उन्होंने उत्तरपीठिका शीर्षक से किया है। वे अष्टम उच्छ्वास के बाद दी गई उत्तरपीठिका को नवम उच्छ्वास के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उत्तरपीठिका में ६ उच्छ्वास है। उत्तरपीठिका का प्रारंभ इस पद्य से किया है।

---

३४. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' पू०पी०पंचम उच्छ्वास श्लोक १०

वाग्वैदग्ध्यं प्रयुञ्जाना रतस्वारस्यदर्शिनी ।
सर्वं श्रुत्वानुरक्ता सा तमाऽशिश्लेष सर्वदा ।।[३५]

शेष पद्यों में भी उपर्युक्त कथानक को गुम्फित किया गया है । उदाहरणार्थ चण्डपोत नामक हाथी से राजकुमार राजवाहन के कुचले जाने की घटना को कविमल्ल इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

श्रुत्वेत्युषसि पापोऽयं स्थाप्यो राजगृहाङ्गणे ।
हस्ती च चण्डपोताख्यो यावत्स्यामुपयामभाक् ।।[३६]

परन्तु उसी समय राजकुमार के दोनों पांव शृंखला से उन्मुक्त हो जाते हैं । कविमल्लजी लिखते हैं—

अभूत्तच्छृंखलामुक्तं राजपुत्रपदद्वयम् ।
भूत्वा तु दिव्यनारी सा प्राञ्जलिस्तं व्यजिज्ञपत् ।।[३७]

चण्डवर्मा को किसी ने मार दिया वह समाचार मिलता है ।

चण्डवर्मा हतो लग्नवेलायामथ केनचित् ।
चौरेण हिंसता सर्वानित्यकस्माद् गिरोऽभवन् ।।[३८]

यह अपहारवर्मा धनमित्र के नाम से विख्यात था, जो शत्रुओं का संहार कर अपने को राजकुमार राजवाहन की सेवा में प्रस्तुत करता है—

हृष्टोऽपहारवर्माऽथ भक्तोऽप्यमनुगृह्यताम् ।
मन्तव्यो धनमित्रेति ख्यातेनान्तरितोऽमुना ।।[३९]

अन्त में अग्रिम उच्छ्वास की कथा का सूत्रपात करने के लिये पूर्ववत् यह पद्य प्रस्तुत किया है, जिसमें अपहार वर्मा अपनी कथा कहेगा ।

---

३५. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उत्तरपीठिका प्रथमोच्छ्वास श्लोक १
३६. वही श्लोक १६
३७. वही श्लोक १९
३८. वही श्लोक २६
३९. वही श्लोक ३५

अथ पूर्ववृत्तमभिधायनिजं
स्पृहयाऽचिरान्निशमितुं क्रमतः ।
पुनरेष सकलमित्रकथा ।
मणहारवर्मणि· दृशं निदधे ।।[४०]

उत्तरपीठिका द्वितीय उच्छ्वास अपहारवर्मा - चरित

अपहार वर्मा अपना वृत्तान्त सुनाते हुये कहता है कि वह राजकुमार को खोजते हुये मरीचि मुनि के आश्रम में पहुंचता है और सहायता की मांग करता है। मुनि उसे चम्पा नगरी में रहने का आदेश देते हैं। मुनि उसे वृत्तान्त भी सुनाते हैं।

निश्वस्य मामववक्सोऽयं तादृगत्राभवन्मुनिः ।
तमेकदाऽनमत्प्राप्य गणिका काममञ्जरी ।।
तस्मिन्नेव क्षणे तस्याः भानुक्रोशं प्रधावितः ।
अन्वपप्तन्मातृकादिराप्तवर्गोऽखिलस्तदा ।।[४१]

काममंजरी नामक वैश्य ने एक शर्त जीतने के लिये मरीचि को अपने सौन्दर्य जाल में फंसाया था, परन्तु पीछें उसका तिरस्कार कर उसे घर से निकाल दिया गया था। इस काममजरी के कथानक को कविमल्ल ने २६ पद्यों में वर्णित किया है। अपहारवर्मा चम्पानगरी की ओर चल देता है, वहां उसे रास्ते में वसुपालित नामक एक श्रेष्ठि पुत्र मिलता है। वह विरूप होने से विरूपक के नाम से विख्यात था और बाद में बौद्ध बन गया था। वह काममंजरी पर मुग्ध था, परन्तु उसने उसे धोखा देकर उनका सारा धन छीन लिया और उसे कोपीन मात्र बनाकर वहां से निकाल दिया।

कोपीनशेषः सज्जलैर्निरस्तो जैनमन्दिरे ।
अस्मिन्नधीतमोक्षाध्वाः दुःखात्तदपि मुक्तवान् ।।
प्राक् तु विप्रोऽभवं हा हा स एवाऽद्य च सौगतः ।
स्मरन् स्वदुर्दशामेतां रोदिम्यत्र चिरादिति ।।[४२]

इसीलिये वह खिन्न है। अपहारवर्मा उसे उसकी सम्पत्ति वापिस दिलाने का आश्वासन देता है और द्यूतक्रीडा तथा चौर-कर्म में प्रवृत्त होता है। किसी

---

४०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उत्तर पीठिका प्रथमोच्छ्वास श्लोक ४२
४१. वही द्वितीय उच्छ्वास श्लोक ६-७
४२. वही श्लोक ३४-३५

सेठ के यहां चोरी कर वह उसका आधा धन उस विमर्दक को दे देता है। एक दिन आधी रात को जब वह चोरी कर लौट रहा होता है, तब उसे मार्ग में कुबेरदत्त की पुत्री से भेंट होती है। वह अपना दुःख - वृत्तान्त उसे सुनाती है कि उसके पिता ने धनमित्र नामक एक व्यक्ति के साथ मेरा विवाह करने का निश्चय कर लिया और मैं उससे प्रेम भी करती हूं, परन्तु अब वह दरिद्र हो गया है। अतः अब वह मेरा विवाह अर्थपति नामक सार्थवह के साथ करना चाहता है। आज प्रातःकाल ही विवाह होगा, यह जानकर मैं घर से निकल गयी हूं। यह धनपात्र लेकर मुझे छोड़ दो, परन्तु अपहारवर्मा यहां उसकी सहायता करता है। कविमल्ल ने यहां अनुवाद में एक भूल की है "कुबेर-दत्तपुत्र्यस्मि" के स्थान पर "कुबेरदत्तपत्न्यस्मि" लिख गये हैं, शेष कथानक यथावत् है—

रात्र्यर्धे प्रतियान्तं च भूषिताथ परं पथि ।
पृष्टा का त्वं क्व यासीतितरुणी काऽप्युवाचमाम् ।।
कुबेरदत्तपत्न्यास्मि[४३] धनमित्राय सौम्य ! माम् ।
अन्वजानाच्च कस्मैचिज्जातमात्रां वधूं पिता ।।
अर्थिभ्योऽर्थान् प्रददतो नाम तस्याऽभवत् परम् ।
उदारकेति स पुनः पिता प्राङ् निर्णयं जहे ।।
अथार्थपतिनाम्ने मां परस्मै दातुमिच्छति ।
तत्प्रातरशुभं भावि मत्वेत्यद्यैमि पतिं प्रियम् ।।
भाण्डमेतत् गृहाण त्वं प्रतिमुञ्च च मां द्रुतम् ।
वदन्तीमिति निष्पापस्तामवोचमथेत्यहम् ।।[४४]

वह उसे लेकर कुछ दूर जाता है कि उसे कुछ शस्त्रपाणि लोग आते हुये दिखाई देते हैं। वह उसे उपाय बतलाता है कि तुम इन्हें ऐसा कहना कि हम रात्रि में ही इस नगरी में आये थे और मेरे पति को सांप ने काट लिया। यदि कोई आप में से उसका उपचार कर सकें तो बड़ी कृपा हो। उन लोगों ने वहां आकर देखा और कहते हैं कि यह तो मर चुका है। इसकी दृष्टि रुक गई है, अंग काले पड़ गये हैं, शरीर की गर्मी ठण्डी हो गई है, कल इसका दाह-संस्कार कर दिया जायेगा, होनहार को कौन बचा सकता है।

---

४३. महाकवि दण्डी ने लिखा है :— " आर्य पर्यस्यामर्यवयः कुबेरदत्तनामा वसति । अस्म्यहं तस्य कन्या । मां जातमात्रां धनमित्रनाम्नेऽत्रत्यायैवकस्मैचिदिभ्य कुमारायान्वजानाद्भार्या मे पिता । " दशकुमारचरित द्वि ० उ ० पृष्ठ ९७

४४. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० द्वि० उ० श्लोक ४० से ४४ तक।

"गत एवायं कालदंष्ठः। तथा हि स्तब्धश्यावमङ्गम्, रुद्धा दृष्टिः, शान्त एवोष्मा। शुचालं वासु, श्वोऽग्निसात्करिष्यामः। कोऽतिवर्तते दैवम्' इति सहेतरैः प्रयात्।"[४५]

कविमल्ल ने लिखा है—

रुद्धा दृष्टिः शान्त ऊष्मा श्यावमङ्गमलं शुचा।
करिष्यामोऽग्निसाच्छ्वोऽमुं दैवतं कोऽतिवर्तते॥[४६]

उनके चले जाने पर वे उदारक (धनमित्र) के पास पहुंच जाते हैं और अपना परिचय देते हुये अपहारवर्मा कहता है कि मैं एक चोर हूं इसे लेकर यहां आया हूं, यह इसका धन - पात्र संभालो। उदारक इसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है और उसके पांव में गिर जाता है। वह कहता है—

आर्य्य त्वयैव निश्यस्यां मह्यं दत्तेयमङ्गना।
उपकारोऽयमाजन्म विस्मर्तुं किमुकाङ्क्ष्यते॥
अद्य प्रभृति दासोऽयं भर्तव्य इति पादयोः।
अपतच्चैनमुत्थाप्य कार्यमूचेऽथ किम्विति॥[४७]

इसके बाद अपहारवर्मा उस उदारक के साथ जाकर कुबेरदत्त के धन को लूट लेता है और कुलपालिका (कुबेरदत्त की पुत्री) को वहां छोड़ जाते हैं। मार्ग में वे अर्थपति के घर पर भी चोरी करते हैं। इन आकस्मिक घटनाओं से कुलपालिका का विवाह एक मास के लिये स्थगित हो जाता है।[४८] अपहारवर्मा इस लूट के माल से उस धनमित्र नामक अपने मित्र को धनी बना देता है और यह ख्याति कर देता है कि धनमित्र के पास एक ऐसा जादू का बटवा है, जो प्रतिदिन सुवर्ण राशि उगलता है।

साधितेयं चर्मरत्नमस्त्रिका लक्षपूरणी।
मया मन्त्रेण सा चैषा निगूढं प्रतिगृह्यताम्॥[४९]

---

४५. 'दशकुमारचरित' द्वितीय उच्छ्वास पृ० १००
४६. श्लोकवद्ध दशकुमाचरित' उ० पी० द्वि उ० श्लोक ५०
४७. 'श्लोकवद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० द्वि० उ० श्लोक ५३-५४
४८. कुबेरदत्तभाश्वास्य धनैरर्थपतिस्ततः।
कन्योपयामं प्राज्ञः स मासावधिकमादिशत्॥ श्लोकबद्ध द० कु० उ० पी० ६२
४९. 'श्लोकवद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० द्वि उ० श्लोक ६८

कुबेरदत्त यह सुनकर खुश होता है और अपनी पुत्री का विवाह धनमित्र से कर देता है। इधर काममंजरी की छोटी बहिन रागमंजरी का अपहारवर्मा से प्रेम हो जाता है। अपहारवर्मा काममंजरी से रागमंजरी को मांगता है। काममंजरी उसके सामने एक शर्त रखती है कि वह धनमित्र के पास से जादुई बटवा लाकर उसे दे दे तो वह रागमंजरी का विवाह उसके साथ कर सकती है। अपहारवर्मा भी एक शर्त रखता है कि काममंजरी उन सबकी सम्पत्ति को वापिस लौटा दे, जिनसे उसने प्राप्त की है। इस प्रकार वह विमर्दक आदि की सम्पत्ति उन्हें दिलवा देता है। अपहार वर्मा धनमित्र से बटवा लाकर काम-मंजरी को दे देता है, परन्तु धनमित्र के शिकायत करने पर कि उसका जादू का बटवा चोरी चला गया है। काममंजरी डरकर वह बटवा धनमित्र को लौटा देती है। राजदंड से बचने के लिये अपहारवर्मा की सम्मति से घोषित करती है कि यह बटवा उसे अर्थपति ने लाकर दिया था। राजा उस अर्थपति को कारागार में डाल देता है—

वेश्ययैवं बोधतऽथो राजाऽस्य वधमादिशत्।
धनमित्रस्तं प्रशाम्य बन्धनेऽक्षेपयद्रिपुम्॥[५०]

एक बार अपहारवर्मा ने राजरक्षकों पर आक्रमण कर दिया, परन्तु पकड़ा गया और कारागार में डाल दिया गया। कारागार का अध्यक्ष कण्टक राजकुमारी अम्बालिका पर आसक्त था और वह चाहता था कि एक सुरंग कारागार से लेकर राजभवन तक हो ताकि उस मार्ग से जाकर राजकुमारी से मिल सके और इस रहस्य को कोई समझ भी न सके। ऐसी सलाह उसे एक ज्योतिषी ने दी थी—

मध्य आक्रीडसालस्य त्रिव्यामं बन्धनालयात्।
केनचित्पटु चौरेण सुरङ्गां ननु कारय॥
अथ प्रविष्टस्य तव सुलभं तत्र वर्त्तनम्।
रक्तश्च तस्याः स्वजनो न रहस्यं बिभेत्स्यते॥[५१]

इस कार्य को वह कण्टक अपहारवर्मा से कराना चाहता है और इस कार्य करने पर उसे छोड़ देने का वायदा भी करता है। वह सुरंग तो बना देता है, परन्तु कण्टक को मार भी देता है। वह स्वयं अंबालिका के अन्तःपुर में पहुंचता है और उससे प्रेम करने लगता है। परन्तु राजकुमारी सो रही होती है, इसोलिये एक पत्र लिखकर चला आता है—

---

५०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० द्वि० उ० श्लोक १००
५१. वही श्लोक १३१ व १३२

उपधाने वीटिके च मुद्राविनिमयं तथा ।
विधाय निःसृतो विम्यत्पुनः कारागृहेऽभ्यगाम् ।।[५२]

जब चण्डवर्मा ने सिंहवर्मा और अम्बालिका को बन्दी बना लिया था। (जिसका उल्लेख पूर्वचरित में आया है) तब ही इसने उसकी सहायता की थी और उसी सुरंग मार्ग से जाकर चण्डवर्मा को मार दिया था।

राज्ञा यः कान्तकस्थाने सिंहघोषो नियोजितः ।
सुरङ्गया स भूयो मे शुद्धान्ताभिसृतिं व्यधात् ।।[५३]

इस प्रकार मरीचि मुनि के कथनानुसार उसका राजवाहन से मिलन हुआ। अब उपहार वर्मा का स्वकथन प्रस्तुत करने का अवसर आता है। राजकुमार राजवाहन उसकी ओर देखकर प्रश्न करते हैं और वह मन्दस्मित करते हुए अपनी बात कहने लगता है—

उपहारवर्मववत्रं ददर्श नृपसूनुरित्यमुं दीव्यन् ।
कर्कश्यात्कथमसि भोः कर्णी सुतमप्यतिक्रान्तः ।।
अथ सोऽपि स्मयमानः प्रणम्य सर्वान् क्रमप्राप्तम् ।
अभिधातुं प्रारभत स्वचरित्रं संस्मरन्नखिलम् ।।[५४]

तृतीय उच्छ्वास उपहारवर्माचरित

राजवाहन की खोज करते हुये उपहारवर्मा अपने पिता के राज्य विदेह प्रान्त में पहुंचता है, जहां उसकी धातृ से भेंट होती है। वह वहां एक तापसी के मठ में ठहरता है और उस मठ में अपनी धाय को देखकर आश्चर्यचकित होता है। कविमल्ल ने इस कथानक का शुभारम्भ भी इस प्रकार किया है—

एषोऽस्मि पर्यटन्पृथ्वीं विदेहेष्वेकदागमम् ।
अप्रविश्यैव मिथिलामतिष्ठं तापसी मठे ।।
दर्शनादेव तस्यास्तु जज्ञिरेऽश्रूणि मामकात् ।
अम्बैतत् किञ्च को हेतुरिति पृष्टाभ्यभाषत ।।[५५]

---

५२. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० द्वि० उ० श्लोक १४२
५३. वही श्लोक १४९
५४. वही श्लोक १५७ व १५८
५५. वही तृतीय उच्छ्वास श्लोक १ व २

उसने यह बतालाया कि इस मिथिलानगरी का राजा प्रहारवर्मा और मगधेश्वर राजहंस जिस प्रकार दोनों प्रगाढ़ मित्र थे, उसी प्रकार उनकी रानियां प्रियम्वदा और वसुमति भी परस्पर मित्र थीं। प्रियम्वदा और प्रहारवर्मा राजहंस से मिलने मगधदेश जा रहे थे कि वहीं मार्ग में मालवेश का मगधेश्वर के साथ युद्ध होता है और यह राजहंस शत्रुओं से हार जाता है। ऐसा सुना है कि उसके चचेरे भाई उसका रास्ते में ही अपहरण कर लेते हैं। इधर जब प्रहारवर्मा लौटता है तो यह देखता है कि उसके राज्य पर उसके बड़े भाई संहारवर्मा के पुत्र विकटवर्मा ने अधिकार कर लिया है। जब वह अपने भानजे शुम्भ देश के राजा से सैन्य - सहायता के लिये जाता है तो रास्ते में लुटेरों से लूट लिया जाता है। अपने छोटे पुत्र को लेकर रानी वनचरों के डर से जंगल में छिप जाती है। वहां मार्ग में वह बालक उसके हाथ से छूट जाता है और किसी कपिलाश्व के गोद में छिप जाता है। वहां से भील के बच्चे उसे उठा ले जाते हैं। रानी की रक्षा एक गोपालक करता है। किसी दिन मिथिलेन्द्र सेवक उस मार्ग से जाता है और उसे रानी की सूचना मिलती है। वह उसके साथ अपने स्वामी के पास जाती है और वहां राजा के साथ रानी को भी कारागार में डाल दिया जाता है। उस धाय ने परेशान होकर यह प्रव्रज्या स्वीकार की है। इसको पुत्री विकटवर्मा की महादेवी कल्पसुन्दरी की सेवा में है। कविमल्ल के शब्दों में इस कथानक का अन्तिम वर्णन इस प्रकार चित्रित है—

विगृह्णन् ज्येष्ठपुत्रेण दिष्ट दोषात्स भूपतिः।
चिरं प्रयुद्धय बद्धोऽभूत्कारायां सह योषया॥
दग्धास्मिन्नपि भूयोऽहं जीवन्ती वार्धकेऽप्यहो।
प्रव्रज्यामग्रहीषं च हठाद् हातुं हि जीवितम्॥
सुताऽभजत् स्त्रीं विकटवर्मणः कल्पसुन्दरीम्।
राजपुत्राववत्स्र्येतां तौ यर्हि निरुपद्रवौ॥[५६]

वह उस विकटवर्मा को मारने का प्रण कर लेता है। वह अपनी धाय की पुत्री की सहायता से उसके अन्तःपुर का वृत्तान्त जानना चाहता है। उसे मालूम होता है कि विकटवर्मा की पत्नी का उसके साथ अच्छा सम्बन्ध नहीं है। वह अनेक उपाय कर उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं और एक दिन अपना चित्र भो उसके पास भेज देता है। वह उस चित्र को देखकर उस पर अनुरक्त हो जाती है—

---

५६. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उत्तरपीठिका तृतीय उच्छ्वास श्लोक १७ से १९

उक्ता मयेति सा तादृक्कृतकार्या जगाद माम् ।
चित्रं प्रदर्शितं तस्यं दृष्ट्वैव रक्ता सा भवत् ।।[५७]

एक दिन उनको भेंट एक उद्यान में होती है । कल्पसुन्दरी अपनी सारी कथा उसे सुनाती है । वह कहती है कि मेरे पिता की राजा प्रहारवर्मा के साथ घनिष्ठ मित्रता थी और मेरी माता मानवती रानी प्रियंवदा की प्रिय सखी थी । उन दिनों में परस्पर यह बात हुई थी कि हम दोनों में से किसी एक को पुत्र हो और दूसरे की पुत्री हो तो आपस में उसका परिवर्तन कर लेंगे । कविमल्ल ने लिखा है—

प्रहारवर्मणा राज्ञा प्रीतिरासीत्पितुर्मम ।
प्रियंवदा च मातुर्मे मानवत्याः सखी च सा ।।
अजातसंततिभ्यां हि ताभ्यामित्थं कृतोऽवधिः ।
सुतावत्या सुता देया सुतवत्याः सुताय नौ ।।[५८]

प्रियंवदा के सन्तान नष्ट हो जाने से वंश-संचालन हेतु मेरे पिता ने मेरा विवाह विकटवर्मा के साथ कर दिया और यह इतना निष्ठुर एवं पितृद्रोही निकला कि उसका मन उससे हट गया । एक बात और यह हुई कि इसकी अंतरंग सखी पुष्करिका के साथ वह प्रेम करने लगा—

कदाऽपि रोचते भर्ता मह्यमेष न मन्दधीः ।
मत्पर्य्यङ्के सौधमध्ये स्वदासीं स्वीचकार यत् ।।[५९]

उपहारवर्मा एक योजना बनाता है । उसे स्वप्न में भगवान् गणेश उसकी स्थिति का परिज्ञान कराते हैं । यह उपहारवर्मा गणेशजी का अंश है और यह जाह्नवी ही शापवश कल्पसुन्दरी बनी है—

सौम्योपहारवर्मस्त्वं मंदशः सा च जाह्नवी ।
क्रुद्धाऽशपत्कदाचिन्मां भज मर्त्यत्वमित्यसौ ।।
बहुभोग्या भवापि त्वं मर्त्येऽशप्यत सेत्यथ ।
प्रत्यर्थितश्चानयैकपूर्वां स्यां त्वद्वधूरिति ।।[६०]

---

५७. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उत्तरपीठिका तृतीय उच्छ्वास श्लोक ३८
५८. वही श्लोक ४५ व ४६
५९. वही श्लोक ४८
६०. वही श्लोक ५४ व ५५

उनकी आज्ञा से वह निःसंकोच होकर और विकटवर्मा से मुकाबला करने के लिये तैयार हो जाता है। उपहारवर्मा ने कल्पसुन्दरी की सहायता से विकटवर्मा को मारने का षड्यंत्र रचा और यह विख्यात कर दिया कि तांत्रिक विधियों से राजा का स्वरूप बदला जा सकता है। इधर कल्पसुन्दरी विकटवर्मा को इस बात को मनाने के लिये तैयार कर देती है और यज्ञ समाप्त होने पर कल्पसुन्दरी के वेष में उपहारवर्मा विकटवर्मा को मारकर अग्नि में फेंक देता है और स्वयं को ही विकटवर्मा घोषित कर देता है—

अभ्रमत्पौरदेशेषु सा वार्ताऽप्यद्भुता क्रमात् ।।
पुनः प्रदोषसमये तत्र धूमोद्गमोऽभवत् ।
क्षीराज्यासृग्वसादीनां गन्धः प्रोवास चानिलात् ।।
शान्ते च धूमे सहसा तस्मिन्गूढोऽहमाविशम् ।
साऽप्यागता प्रेयसी मे व्याहार्षीन्मां च सस्मिता ।।
ईहितं धूर्त ते सिद्धमवसन्नोस्त्ययं पशुः ।
अमुष्य लोभनायोक्तं तत्सर्वं शिक्षितं च यत् ।।[६१]

वह मंत्रियों को धोखा देने में सफल हो जाता है और इस प्रकार विकटवर्मा द्वारा किये गये क्रूर कर्मों को समाप्त कर देता है। माता-पिता को कारागार से मुक्त कर उन्हें राज्य सौंप देता है और स्वयं युवराज बन जाता है। समस्त वृत्तान्त अपने माता-पिता को सुना देता है। सिंहवर्मा पर आपत्ति आने पर वह उनकी आज्ञा से सहायता के लिये प्रस्थान करता है और यहां उज्जयिनी में अपने स्वामी राजवाहन से मिल जाता है—

तदनुज्ञातराज्यश्रीशासिता सिंहवर्मणः ।
अस्य तात वयस्यस्य लेख्याच्चम्पामिमामगाम् ।।
मित्र ! त्वदङ्घ्रिश्रयणात्ससैन्योहमहोभवम् ।
आयाननिष्फलोऽप्येष दिष्टयेदानीं फलेग्रहिः ।।[६२]

अब राजवाहन अर्थपाल को संकेत करता है और वह अपना वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ करता है—

---

६१. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० तृतीय उच्छ्वास श्लोक ७५½ से ७८
६२. वही श्लोक ८८ व ८९

पुनरथपालमधिगम्य दृशा
कथयाऽधुनात्वमिति संदिदिशे ।
अनुबद्धहस्त जलजाञ्जलिकं
स्वकृतं च वृत्तमथ सोभिदधे ।।[६३]

कविमल्ल ने इन ६१ पद्यों में उपहारवर्मा का चरित प्रस्तुत किया है ।

चतुर्थ उच्छ्वास-अर्थपाल-वृत्तान्त

इस उच्छ्वास में अर्थपाल का चरित है । कविमल्ल इस कथानक का शुभारम्भ करते हुये लिखते हैं—

सखिभिः सोऽहमप्येभिरेककर्मा भुवस्तले ।
कदाचिदथ हे देव क्रीडन् काशीमुपासरम् ।।[६४]

एक बार अर्थपाल काशी पहुंचता है । वहां उसे एक व्यक्ति से सूचना मिलती है कि उसके पिता कामपाल काशी के चण्डसिंह के मंत्री थे, परन्तु अब सिंहघोष नामक राजा राज्य करता है । इस दुष्ट ने उसके पिता कामपाल को मंत्री पद से हटाकर कैद कर दिया और उसे मारने की आज्ञा दी है । वह उन्हें छुड़ाने का उपाय सोचता है । वह एक विषैला सर्प लेकर उस समय की प्रतीक्षा करता है और ज्योंही सैनिक कामपाल को मारने के लिये ले जाने लगते हैं वह उस सर्प को कामपाल पर फेंक देता है, जिससे कामपाल बेहोश हो जाता है । कामपाल को मरा हुआ घोषित कर सैनिक चले जाते हैं और वह अर्थपाल मंत्र के प्रभाव से सर्प के विष को दूर कर जीवित कर देता है—

श्रुत्वेत्यहं कलकलं पित्रंके व्यालमक्षिपम् ।
उत्तीर्णास्तदसून् रक्षन्नस्तभ्नां विषमञ्जसा ।।

एषोऽपतच्च शववत् प्रालपञ्च यथोचितम् ।
दर्वीकरस्त्वन्त्यजं तं संदश्य क्वाऽप्यगाज्जवी ।।[६५]

ततः स्वस्थः पिता गुप्तं हन्तव्य शत्रुरित्यकक् ।
तथाऽस्तु दोषः को नाम तातस्येति मतं मतम् ।।[६६]

---

६३. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० तृतीय उच्छ्वास श्लोक ९१
६४. वही श्लोक १
६५. वही श्लोक ५२-५३
६६. वही श्लोक ५७

ये दोनों मिलकर सिंहघोष के वध की योजना बनाते हैं। अर्थपाल राज-भवन तक एक सुरंग खोदता है और कुमारी मणिकर्णिका के पास अन्त:पुर में पहुंच जाता है। राजकुमारी मणिकर्णिका और उसकी बातचीत से बहुत से संबंधों का रहस्य प्रकट होता है। जब वह सिंहघोष के भवन में पहुंचता है वह सो रहा होता है। वह उसे लेकर अपने बन्दी माता-पिता के पास ले जाता है और उन्हें मुक्त कर राज्य सौंप देता है। उसके बाद सिंहघोष को कारागार में डाल देता है—

वृद्धाकथामिति श्रुत्वा तामाश्वास्य गतोऽग्रतः ।
रात्र्यर्धे सिंहघोषं तं प्रसुप्तं तत्र कष्टवान् ।।
तद्द्वारानीय गेहे स्वे प्रदर्श्य पितरौ तथा ।
तद्रन्ध्रवार्तामुक्त्वा च शत्रुं तं बन्धनेऽक्षिपम् ।।[६७]

मणिकर्णिका से वह विवाह कर लेता है और अंगराज की रक्षा के लिये चम्पा में आता है, जहां राजवाहन से उसकी भेंट होती है। वह निवेदन करता है कि सिंहघोष अपने पापों का प्रायश्चित्त करे। राजवाहन उसके पराक्रम से खुश होता है। अब राजवाहन प्रमति को अपना वृत्तान्त सुनाने के लिये आज्ञा देता है—

विहितोऽथ पराक्रमो महा—
नुपयुक्ता च मतिः सखे त्वया ।
श्वशुरस्तव वीक्षतां स मां
स्तुतिमाख्यादिति राजवाहनः ।।
अधुना चरितं भण स्वकं
प्रियमित्रेति नियोजितोऽमुना ।
प्रमतिः प्रणमन् स चाऽप्यथ
प्रतिजज्ञे गदितुं कथामिति ।।[६८]

इस प्रकार कविमल्ल ने ७५ पद्यों में अर्थपाल कथानक को गुम्फित किया है—

पञ्चम उच्छ्वास प्रमति-वृत्तान्त

इस उच्छ्वास में २८ पद्य हैं। प्रमति कहता है कि यात्रा में उसे एक बार विन्ध्यवन में रात्रि हो गई। अपने आपको रक्षा के लिये वन-देवता को

---

६७. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० चतुर्थ उच्छ्वास श्लोक ६९-७०
६[८] वही श्लोक ७४-७५

अर्पण कर वह विश्राम करने के लिये वृक्ष के नीचे लेट गया। कविमल्ल ने लिखा है—

यास्मिन् देवी वसति सा शरणास्त्विवत्थमारणन् ।
सोऽहं देवाद्रिवृक्षाधस्तिष्ठन् रात्रौ वनेऽस्वपम् ।।[६९]

उसने स्वप्न में देखा कि कोई उसे राजभवन में ले गया है। जहां वह एक सुन्दरी के प्रेम में फंस गया है। जागने पर वह इस घटना की सत्यता पर विचार कर रहा होता है कि उसके सामने एक अप्सरा प्रकट होती है, जो अपने आपको कामपाल की पत्नी तारावली बताकर इस घटना की सत्यता प्रमाणित करती है। वह यह भी कहती है कि वह श्रावस्ती की राजकुमारी नवमल्लिका थी। अब उसे उसकी प्राप्ति के लिये प्रयास करना चाहिये। मैंने ही तुम दोनों को प्रेमबद्ध किया है। अतः तुम्हें उसे प्राप्त कर लेना चाहिये।

युवां युवानौ सुप्तौ च विविच्योत्कण्ठितौ मिथः ।
साधितार्थमसावेतग्गिहेति त्वां ततोऽनयम् ।।
परिष्वज्य प्राञ्जलिं मामित्युक्त्वा प्रस्थिता च सा ।
अहमप्यतनुत्रस्तः श्रावस्तीमभ्यवर्तिषि ।।[७०]

वह श्रावस्ती की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग पर वह मुर्गों की लड़ाई का दृश्य भी देखता है। वहाँ उसे एक ब्राह्मण मिलता है। दोनों गहरे मित्र हो जाते हैं और दोनों मिलकर राजकुमारी को प्राप्त करने की योजना बनाते हैं। प्रमति ब्राह्मण कन्या का वेष धारण कर लेता है। ब्राह्मण उसे लेकर राजा के पास जाता है और उसे उसके पास तब तक छोड़ना चाहता है जब तक कि वह उसके योग्य वर न ढूंढ लाये। अन्तःपुर में राजकुमारी के साथ रहते हुये वह उसके समस्त क्रिया-कलापों को जान लेता है। उसके द्वारा अपने बनाये गये चित्रों को भी देखता है। वह उसे अपने स्वप्न का रहस्य भी सुनाती है। अब वह एक दिन चुपके से भागकर अपने मित्र ब्राह्मण के पास आ जाता है। ब्राह्मण उसे जामातृ वेष में राजा के सम्मुख प्रस्तुत करता है और अपनी पुत्री मांगता है। उसके न मिलने पर अपनी पुत्री के साथ मेरा विवाह कर देता है। इस प्रकार उस राजपुत्री को प्राप्त कर लेता है—

---

६९. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० पंचम उच्छ्वास श्लोक १
७०. वही श्लोक ९-१०

अहं चैतस्य भूपस्य पुत्रीं तां नवमालिकाम् ।
अन्वभूवं यौवराज्यं सौभाग्याच्चाप्नुवं तथा ।।[७१]

सिंहवर्मा के द्वारा सहायता के लिये बुलाये जाने पर वह यहां आता है और उसकी राजवाहन से भेंट हो जाती है । अब वह मित्रगुप्त को अपना कथानक प्रस्तुत करने को कहता है । इसका अन्तिम पद्य है—

सख्युस्तन्वन् स्तुतिमिति नृपो मित्रगुप्तं ववन्दे ।
स्वं वृत्तान्तं भणितुमथसोऽप्याचचक्षेऽनुपूर्वम् ।।[७२]

इसके अन्त में कविमल्ल ने यह पुस्तिका प्रस्तुत की है ।

इतिकविमल्लभूनिलिम्पश्रीहरिवल्लभाख्यमेदपाटिक-
गुर्जरगौतमगोत्र सामवैदिक व्यासावटङ्कितभट्टप्रक-
ल्पते श्लोकबद्धदशकुमारचरिताभिधकाव्यप्रबन्धे
उत्तरपीठिकान्तर्गत प्रमतिचरितं नाम
पञ्चमोच्छ्वासः ५

इसमें इन्होंने अपना संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है ।

षष्ठ उच्छ्वास —मित्रगुप्तचरित

मित्रगुप्त ने कहा कि वह राजकुमार को खोजते हुये सुह्म देश की राजधानी दामलिप्त में पहुंच जाता है और देखता है कि वहां उस नगर के बाहर उद्यान में एक उत्सव हो रहा है । वहां कोई युवक वीणा वजा रहा है । मित्रगुप्त उससे उत्सव की जानकारी चाहता है ।

सुह्मेषु हिण्डमानोऽहं देवकामपि संसदम् ।
दामलिप्ताह्वनगरी बाह्योद्याने न्यरूपयम् ।।
तत्रैकत्र नरं कञ्चिद्वीणावादकमेक्षिषि ।
अप्राक्षं च किमर्थैषा त्वमनुत्कश्च किम्विति ।।[७३]

वह कहता है कि सुह्मपति तुगंधन्वा के संतान नहीं थी । विन्ध्यवासिनी देवी की कृपा से उसके एक पुत्र व एक पुत्री हुई । पुत्र का नाम भीमधन्वा और पुत्री का नाम कन्दुकावती रख गया । उसने यह भी कहा कि सात वर्ष

---

७१. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० पंचम उच्छ्वास श्लोक २६
७२. वही श्लोक २८
७३. वही षष्ठ उच्छ्वास श्लोक १-२

से लेकर विवाह पर्यन्त यह राजकुमारी एक उत्सव करेगी और इसका नाम कन्दुकोत्सव होगा और वह उसी में अपना पती भी चुनेगी। उस युवक ने यह भी बतलाया कि उस कन्दुकावती की सखी चन्द्रसेना धात्री की पुत्री उसकी प्रिया है, जिसे राजकुमार भीमधन्वा ने बलात् रोक रखा है। उसकी स्मृति में समय व्यतीत करने के लिये वीणा बजा रहा हूं।

साऽद्य श्रयिष्यते देवी तत्पुत्री कन्दुकावती।
अस्या धात्रेयिका चन्द्रसेनाऽऽख्या मेऽभवत्प्रिया।।
रुद्धैष्वहस्सु सा भीमधन्वना नृपसूनुना।
ततो विनोदयश्चित्तं स्थितो वीणाध्वनेरिह।।[७४]

उसी समय नूपुर ध्वनि होती है और कोई जाती है। वह स्त्री चन्द्रसेना ही थी। वह उस युवक के साथ कहीं जाने की योजना बनाती है और उसी समय कन्दुकावती वहां आ जाती है। यह मित्रगुप्त उसे देखता है और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। राजकुमारी गेंद खेलती है और फिर अपने परिजनों सहित अपने राजमहल को चली जाती है। मित्रगुप्त सार्थवाह कोशदास के पास जाता है। चन्द्रसेना सायंकाल आकर अपने पति वीणा-वादक से मिलती है। उसी समय कोशदास एक अंजन देता है जिसके लगाने से वह राजपुत्र उसे वानरी के समान देखेगा और विरक्त होकर उसे छोड़ देगा। वह हंसकर कहती है कि इससे हमारा काम सिद्ध हो जायेगा। आज कन्दुकोत्सव होगा और उसमें राजकुमारी जिसका भी वरण करेगी, राजा उसके साथ उसका विवाह करेगा और राजपुत्र उसका अनुचर होकर रहेगा। राजकुमारी ने उत्सव में मित्रगुप्त को ही अपना पति चुना, परन्तु भीमधन्वा उसकी आज्ञा में रहने को सन्नद्ध नहीं था। अतः उसने उसे अपने व्यक्तियों से समुद्र में फिकवा दिया।

पुनस्सा नानुरोद्धव्येत्युक्त्वैकं भृत्यमित्यवक्।
शत्रुमेतं क्षिपाब्धौ त्वं यथादिष्टं व्यधाच्च सः।।[७५]

उसी समय यवनों का एक जलयान उधर से निकला और उसे बचा लिया। वे मित्र मित्रगुप्त को दास बनाना चाहते थे। इसी समय एक दूसरे जहाज ने उस जहाज पर आक्रमण कर दिया। मित्रगुप्त ने अपना कौशल दिखाया और अपने पराक्रम से आक्रमणकारियों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

---

७४. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० षष्ठ उच्छ्वास श्लोक ७-८
७५. वही श्लोक २३

आक्रमणकारी जहाज का कप्तान भीमधन्वा था, जिसे बन्दी बना लिया था और उन्होंने मित्रगुप्त को छोड़ दिया। मित्रगुप्त एक द्वीप में पहुंच गया। वहां उसे एक ब्रह्म राक्षस मिला।

अथाऽहं च सरस्तीरे सायं विश्रमितुं स्थितः।
एकाकी केनचिद् ब्रह्मराक्षसाभर्त्सितोऽभवम् ।।[७६]

उसने कहा कि उसके चार प्रश्नों का उत्तर देना होगा, अन्यथा वह मित्रगुप्त को खा जाएगा। मित्रगुप्त का उस ब्रह्म राक्षस के साथ एक आर्या में प्रश्नोत्तर होता है जिस आर्या को कविमल्ल ने ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

"किं क्रूरं ? स्त्री हृदयं, किं गृहिणः ? प्रियहिताय दारगुणाः।
कः कामः ? संकल्पः किं दुष्करसाधनं ? प्रज्ञा ।।"[७७]

उस मित्रगुप्त ने अपने कथन को धूमिनो, गोमिनी, निम्ववती और निम्बवती के आख्यानों से अपने उपर्युक्त कथन को पुष्ट कर दिया। इस कथानक का प्रारम्भ कविमल्ल ने निम्न पद्य से किया है—

अस्ति राष्ट्रं त्रिगर्तेति तत्रासन् गृहिणस्त्रयः।
द्वादशाब्दावधि स्वाराट् तेषु जीवत्सु नाच्युतत् ।।[७८]

और धूमिनी के आख्यान की समाप्ति निम्न पद्य से होती है—

प्रसादभूः स च कुतो भद्र ! तस्माद् ब्रवीम्यहम्।
संपद्यते क्रूरमेव हृदयं योषितामिति ।।[७९]

इस कथानक से उन्होंने स्त्री-हृदय की क्रूरता सिद्ध की है। इसके पश्चात् गोमिनी का वृत्तान्त ९ पद्यों में प्रस्तुत किया है। जिसका उद्देश्य गृहस्थी को सबसे अधिक आनन्ददायक पत्नी के गुण होते हैं। इस कथानक की संपूर्णता निम्न पद्य द्वारा होती है—

---

७६. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० षष्ठ उच्छ्वास श्लोक २९
७७ वही श्लोक ३१
७८. वही श्लोक ३२
७९. वही श्लोक ४४

तन्निध्न स्वकुटुम्बं च सर्वं कृत्वा श्रयत्सुखम् ।
स्त्रीगुणा एव गृहिणां हिताय तदिति ब्रुवे ।।[८०]

तत्पश्चात् निम्बवती का वृत्तान्त २० पद्यों में वर्णित किया है, जिसमें संकल्प की पुष्टि होती है और अन्तिम पद्य इस प्रकार है—

सा तु चातुर्यतस्तस्य वल्लभैवमभूत्सती ।
कामो हि भद्रसंकल्प इति तस्माद् ब्रवीम्यहम् ।।[८१]

इसके बाद नितम्बवती वृत्तान्त प्रारम्भ होता है जो २० पद्यों में विवेचित किया गया है इसका उद्देश्य प्रज्ञा की पुष्टि करना है। इस कथानक का समापन निम्न पद्य से होता है—

तस्मादभिदधे भद्र पाश्चात्योत्तरमेतकत् ।
दुष्करस्य निमित्तं तु केवलं धीरिति श्रुतम् ।।[८२]

ब्रह्म राक्षस इन आख्यानों से बहुत खुश होता है। इसी समय एक अन्य राक्षस एक स्त्री को लेकर हठात् आकाश मार्ग से जा रहा था। मित्रगुप्त उस राक्षस पर झपटता है और उस ब्रह्मराक्षस की सहायता से उस स्त्री को छुड़ा लेता है। वह स्त्री उसकी भावी पत्नी कन्दुकावती ही थी।

निरूपयन्निमां स्वस्थामवुध्ये कन्दुकावतीम् ।।
आश्वासिता सा तु मया प्रत्यभिज्ञावती न्यवक् ।
तिर्यङ् मामभिनिर्वीक्ष्य रुदन्तीं सदयं प्रिया ।।[८३]

मित्रगुप्त कण्टुकावती के साथ दामलिप्त नगर में आता है। वहां उसका स्वागत होता है। चूंकि सिंहवर्मा इस राजा का मित्र था, अतः इसकी सहायता के लिये मित्रगुप्त को जाना पड़ता है। और दैववश उसकी राजकुमार राजवाहन से भेंट हो जाती है—

ततश्च साहाय्यकृते सुहृदः सिंहवर्म्मणः ।
अत्रागतः प्रभोर्हन्तः दर्शनं सहसा व्यधाम् ।।[८४]

---

८०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० षष्ठ उच्छ्वास श्लोक ५४
८१. वही श्लोक ७४
८२. वही श्लोक १०४
८३. वही श्लोक १०८-१०९
८४. वही श्लोक ११९

राजकुमार राजवाहन दैव की विचित्र गति को स्वीकारते हुये मंत्रगुप्त को संकेत करता है और वह अपना कथानक प्रारम्भ करता है—

इयं हि दैवस्य गतिर्विचित्रा
ज्यायांश्च कालेषु पराक्रमोऽपि ।
उक्त्वेति वाणीमथ मन्त्रगुप्तये
चिक्षेप दृष्टिं क्रमतः क्षितीशः ॥
श्रेष्ठात्मकान्ता हठभोगयोग
प्रदत्तदन्तव्रणविक्लवोष्ठः ।
स चापि दोष्णा मुहुरावृतास्यो
निरोष्ठ्यवर्णं निजवृत्तमूचे ॥[८५]

सप्तम उच्छ्वास—मंत्रगुप्त-वृत्तान्त

राजवाहन को खोजते हुये मंत्रगुप्त कलिंग देश में जाता है और वहां एक वृक्ष के नीचे सो जाता है। रात को वह दो किंकर-किंकरियों की बातचीत सुनाता है कि यह सिद्ध इस रात्रि में कोई सिद्धि प्राप्त करना चाहता है। वह उनके पास जाता है तो कुतूहलवश मंत्रगुप्त भी उसके पीछे-पीछे वहां पहुंच जाता है। वह देखता है कि भूत किंकर कलिंग देश की राजकुमारी को सिद्ध के आदेश से वह वहां उठा लाता है—

स तं गच्छ कलिङ्गेशकन्यां नय गृहादिह ।
इत्यादिशत् स च तथा चक्रे शीर्षश्रिताञ्जलिः ॥
क्रन्दन्तीं तत एनां च कर्षन्नैहिष्टखड्गतः ।
आच्छिद्य हस्तात्तञ्चैनं द्रागहं यतिमाहनम् ॥[८६]

वह उसकी रक्षा करता है। राजकुमारी उसे अपने अन्तःपुर में ले जाती है और वह उसके साथ रहता है—

तदर्थितः स चाहं द्राक् तद्गृहेऽनेन शायितः ।
छन्नं सखीगणैरन्तश्चिरं तेनेऽनया रतिम् ॥[८७]

---

८५. 'श्लोकवद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० षष्ठ उच्छ्वास श्लोक १२०-१२१
८६. वही श्लोक ५-६
८७. वही श्लोक १३

एक बार जब कलिंग कर्दन अपने परिवार के साथ समुद्र के किनारे रह रहा होता है, तभी आन्ध्र के राजा जयसिंह उस पर आक्रमण कर देता है और उसे बन्दी बना लेता है। मंत्रगुप्त उस राजा को छुड़ाना चाहता है, परन्तु उसे अवसर नहीं मिलता। इधर उसे यह मालूम होता है कि राजा जयसिंह राजकुमारी कनकलेखा से विवाह करना चाहता है, साथ ही उसे यह भी मालूम है कि राजकुमारी एक यक्ष के अधीन है। वह एक तपस्वी का वेश बनाकर राजा जयसिंह के पास पहुँचता है और राजा उससे यक्ष से राजकुमारी को मुक्ति दिलाने के कार्य में सहायता मांगता है। तपस्वीरूपी मत्रगुप्त कहता है कि वह एक विशेष सरोवर में स्नान करे, तपस्वी मंत्र बोलेगा, इससे राजा का शरीर बदल जायगा और उस बदले हुए शरीर से युद्ध करने पर वह यक्ष से विजयी होगा।

सरस्यत्र रजन्यर्धे संतीर्यान्तर्गृहेऽस्य च।
शयनान्तरं राजन् निर्याहि सहसा ततः ।।
निर्गत्य तत्र गन्तासि यक्षः सदृश्य नंक्ष्यति।
अस्तीत्थं चिन्तितं ध्यानाच्छ्रद्धा चेत् क्रियतां तदा ।।[८८]

ज्यों ही जयसिंह उसके कथनानुसार सरोवर में स्नानार्थ जाता है कि मंत्रगुप्त उसे मरवा देता है और स्वयं परिवर्तित शरीर वाला राजा बनकर तालाब से निकल आता है। वह महाराज कर्दन और राजकुमारी को मुक्त करने में समर्थ हो जाता है अब राजा कर्दन कलिंग और आंध्र दोनों देशों का राजा हो जाता है और मंत्रगुप्त का विवाह कनकलेखा से हो जाता है। सिंहवर्मा की प्रार्थना पर कर्दन मंत्रगुप्त को उसकी सहायता के लिये भेजता है और वहीं उसे राजकुमार राजवाहन के दर्शन हो जाते हैं—

इत्थं कलिङ्गान्ध्रदेशशासी तद्दयिताहतः।
कालान्तरेऽङ्गराजस्य सहाय्यायेह संश्रितः ।।
इदानीञ्च ससैन्येन सखि संसदि सीदतः।
दिष्टया ते दर्शनानन्दः साक्षाच्चक्रे यदृच्छया ।।[८९]

अन्त में विश्रुत शेष रहता है और राजकुमार राजवाहन के संकेत पर अपना कथन प्रारम्भ करता है। इस प्रकार ३४ पद्यों में इस उच्छ्वास का कथानक प्रस्तुत किया गया है।

---

८८. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० सप्तम् उच्छ्वास श्लोक २५-२६
८९. वही श्लोक ३२-३३

अष्टमोच्छ्वास--विश्रुतचरित

कविमल्ल ने विश्रुतचरित को ११९ पद्यों में प्रस्तुत किया है। महाकवि दण्डी ने इसका प्रारम्भ करते हुये लिखा है—

"देव, मयापि परिभ्रमता विन्ध्याटव्यां कोऽपिकुमारः क्षुधा तृषा च विलश्यन्नक्लेशार्हः क्वचित्कूपाभ्याशेऽष्टवर्षदेशीयो दृष्टः ।।

इसका अनुवाद इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

मयाऽपि भ्रमता विलश्यन् क्षुत्तृषा विन्ध्यभूधरे ।
भूप ! कूपोपकण्ठस्थः कुमारः कश्चिदीक्षितः ।।[९०]

विश्रुत- चरित का कथानक विख्यात है; जिसमें विश्रुत ने उस राकुमार की सहायता की थी, जिसका रक्षक वृद्ध उसकी प्यास बुझाने के लिये कूप से जल निकालते हुये उसी में गिर पड़ा था और वृद्ध ने उस राजकुमार का परिचय देते हुये कहा था कि यह विदर्भ के राजा पुण्यवर्मा के पुत्र अनंतवर्मा का पुत्र है। इसे वसुरक्षित नामक वृद्ध मंत्री ने उपदेशात्मक वचनों से शास्त्रध्ययन की सलाह दी थी, परन्तु विहारभद्र आदि कुछ चाटुकारों ने उसके उपदेशों पर ध्यान न देने की सलाह दी थी। उसने राजनीतिवेत्ताओं की नीति के अनुसार कार्य करने की खिल्ली उड़ाई थी। उन चाटुकारितापूर्ण बातों का यह परिणाम रहा था कि अनन्तवर्मा की लापरवाही से उसका राज्य अश्मकेन्द्र वसन्तभानु के हाथों में चला गया था और उसकी सारी प्रजा दुःखी हो गयी थी। अश्मकेन्द्र के अमात्य इन्द्रपालित का पुत्र चन्द्रपालित उसके राज्य में पहुंचता है कुन्तलेश्वर की सहायता से अनन्तवर्मा की गणिकाओं आदि का शीलहरण करता है। चन्द्रपालित मृगया, द्यूत, स्त्रीविषय आदि सभी दुर्व्यसनों की प्रशंसा कर उनके गुणों का आख्यान करता है। उसके राज्य में भयंकर अशान्ति का साम्राज्य हो जाता है और समस्त प्रजा दुःखी हो जाती है। शत्रु की भेदनीति से उसकी सेना भी छिन्न-भिन्न हो जाती है। अब वसन्तभानु वानवास्य भानुवर्मा को प्रोत्साहित कर उस पर आक्रमण करा देता है। इधर अश्मकेन्द्र कुन्तलपति को एकान्त में राजा अनंतवर्मा की निन्दा कर उसे स्त्रीलम्पट सिद्ध कर मुरलेश, वीरसेन, ऋचीकेश, एकवीर, कोंकणपति, कुमारगुप्त और सासिक्यनाथ, नागपाल को अपनी ओर मिलाकर इसके राज्य पर अधिकार करने की दृष्टि से आक्रमण करने की सहायता मांगता है और फिर इन सभी अपने

---

९०. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उत्तरपीठिका अष्टमोच्छ्वास श्लोक १

सहायक मित्रों को मरवाकर केवल वानवास्य को कुछ देकर अनन्तवर्मा के सभी राज्य को अपने अधीन कर लेता है—

अनन्तवर्मणो राज्यमात्मसाद् विदधेऽखिलम् ।
स्वयमेवाग्रसत्तत्स्वं वानवास्यं प्रतोषयन् ।।[९१]

वृद्ध मंत्री वसुरक्षित इस राजकुमार भास्करवर्मा को इसकी बड़ी बहिन मंजुवादिनी को और उनकी माता महादेवी वसुन्धरा को लेकर उस राज्य से निकल जाता है, परंतु दाहज्वर से मार्ग में ही शांत हो जाता है। नालीजंघ कहता है कि हम लोगों ने मिलकर महारानी आदि को इनके स्वामी अनन्तवर्मा के वैमात्रेय भाई मित्रवर्मा के पास माहिष्मती ले जाते हैं। वह इस बालक को मरवाना चाहता है और उसके षड्यंत्र को जानकर महारानी इसकी रक्षा के लिये मुझे नियुक्त कर यहाँ जंगल में भेज देती है। भूख और प्यास से व्याकुल इसकी रक्षा के लिये मैं पानी पिलाने के प्रयास में मैं कुएं में गिर जाता हूँ और अब आपके द्वारा रक्षित हूँ।

विश्रुत महारानी का परिचय पूछता है और नालीजंघ कहता है कि पाटलिपुत्र के वणिक् वैश्रवण की पुत्री सागरदत्ता में कोसलेन्द्र कुसुमधन्वा से इसकी माता की उत्पत्ति हुई है—

माताऽस्य कस्य पुत्रीति मया पृष्टोऽभ्यधादयम् ।
तस्य पाटलिपुत्रस्य पुत्र्यां वैश्रवणस्य च ।।
जन्म सागरदत्तायां लेभे कुसुमधन्वनः ।
कोसलेन्द्रादस्य माता वणिक्कुलमणेरिति ।।[९२]

इस परिचय से यह सिद्ध होता है कि विश्रुत के पिता का और राजकुमार भास्करवर्मा की माता का एक ही नाना है और वह उसकी सहायता के लिये सन्नद्ध हो जाता है। वह भी अपना परिचय प्रस्तुत करता है और सिंधुदत्त के पुत्रों में सुश्रुत को अपना पिता बतलाता है। अपने कौशल से वह एक शिकारी से बाण लेकर दो मृगों का वध कर उनमें से एक मृग को पकाकर और सबकी भूख मिटाता है। इसके बाद योजना बनाता है। वह उस शिकारी से ही माहिष्मती का वृत्तान्त पूछता है, जिससे उसे यह जानकारी मिलती है कि चण्डवर्मा का छोटा भाई प्रचण्डवर्मा मित्रवर्मा की पुत्री मंजुवादिनी से विवाह

---

९१. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० अष्टमोच्छ्वास श्लोक ३४
९२. वही श्लोक ४४-४५

करने आ रहा है। इसीलिये वहाँ उत्सव है। विश्रुत उसकी चाल को समझ जाता है और नालीजंघ के द्वारा रानी वसुमती को यह कहलाता है कि यह राजा मित्रवर्मा तुम्हें धोखा देकर बालक भास्करवर्मा को अपने राज्य में बुलाकर मार देना चाहता है। अत: उसकी रक्षा के लिये मेरी योजना से काम करो। योजना के अनुसार वह रानी चिल्लाकर यह कहने लगी कि मेरा पुत्र मेरे दुर्भाग्य से परलोक चला गया, अब जो भी वह (मित्रवर्मा) कहेगा वह उसी के अनुसार कार्य करेगी। फिर इस वत्सनाभ नामक महाविष से संपृक्त माला को पानी में डुबोकर उसके सीने व मुँह पर मारना जिससे वह मर जायगा और उसी माला को धोकर अपनी पुत्री को दे देना इत्यादि। उसके मर जाने का प्रचण्डवर्मा को सन्देश देकर वहाँ बुलाना चाहिये। हम उस समय उसी नगरी के बाहर उद्यान में रहेंगे। रानी को अपने स्वप्न का उल्लेख करना चाहिये, जिसमें विन्ध्यवासिनी द्वारा उसके पुत्र की रक्षा व रक्षक के रूप में विश्रुत का उल्लेख हो। विश्रुत की योजना के अनुसार कार्य होता है और वह विश्रुत अपने कौशल से प्रचण्डवर्मा को मार देता है। तत्पश्चात् आधी रात के बाद उसी मन्दिर से योजना पूर्वक भास्करवर्मा को प्रकट कर देता है—

निष्कास्य तं कुमारं च नमन्त्य: प्राञ्जलि: प्रजा:।
अवचं मन्मुखेनेत्थं युष्मानाज्ञापयत्युमा ।।
सूनुर्व्याघ्र्याचा गृहीत्वायं प्रदत्तोथ मयाद्य व:।
ममास्य रक्षितारं च यूथं मन्यध्वमन्वहम् ।।[९३]

वह स्वयं को मंजुवादिनी का पति घोषित करता है। आर्यकेतु आदि मंत्रियों से नालीजंघ के द्वारा पूछाने पर वे उसके राज्य कौशल की प्रशंसा करते हैं और विश्रुत अपने बुद्धिबल व सैन्यशक्ति के द्वारा अश्मकेन्द्र पर आक्रमण कर अनन्तवर्मा के राज्य को पुन: प्राप्त कर वहाँ भास्करवर्मा को अभिषिक्त कर देता है। वहाँ भी एक योजना से काम लेता है कि इस राजकुमारी पर भवानी की कृपा है और देवीशक्ति के आगे मानुषीशक्ति विफल होगी इस विचार से अश्मकेन्द्र की सेना निश्चल खड़ी रहती है और विश्रुत अश्मकेन्द्र का सिर काट लेता है—

अहं च रक्षितस्तस्मादभूवं कुशलश्चरन् ।
पुनश्च सहसा हत्वा तच्छिरो व्यक्षिपं भुवि ।।[९४]

---

९३. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० अष्टमोच्छ्वास श्लोक ८५ व ८६
९४. वही श्लोक १०८

इस प्रकार खोये हुये राज्य को प्राप्त कराकर एक दिन विश्रुत महारानी से कहता है कि वह किसी कार्य से बाहर जाना चाहता है और अपनी पत्नी मंजुवादिनी को वहीं छोड़ना चाहता है । महारानी उसे प्रचण्डवर्मा का राज्य सौंप देती है और वह राजकुमार राजवाहन की खोज में निकलना चाहता है । उसी समय अंगनाथ सिंहवर्मा की सहायता के लिये बुलाये जाने पर वह यहाँ आकर स्वतः ही राजवाहन से मिल जाता है—

तावदेवाङ्गनाथेन स्वसाहाय्यकृतेऽञ्जसा ।
आकारितः सङ्गतोऽत्र पुण्यात्प्राणंसिषं प्रभुम् ।।
विपत्सु साहाय्यपरिश्रमोऽयं
सेद्धुं हि योग्यो निजबन्धुसङ्घे ।
न निष्फलो यत्स कदापि काले
श्रुत्वेति तुष्टाव नृपः सखायम् ।।[९५]

उत्तरपीठिका

उत्तरपीठिका के नाम से विख्यात दशकुमारचरित के कथानक के कुछ भाग को कविमल्ल ने अष्टम उच्छ्वास में ही प्रस्तुत कर दिया है । उन्होंने विश्रुतचरित को एकत्र करने की दृष्टि से ऐसा किया है । शेष १४ पद्यों में उन्होंने उत्तरपीठिका के अवशिष्ट कथानक को गुम्फित किया है । यह कथानक वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध है । सभी राजकुमार उज्जयिनी में मिल जाते हैं और पाटलीपुत्र से सोमदत्त को बुलाकर आनन्द का अनुभव करते हैं कि उन्हें राजहंस का संदेश प्राप्त होता है—

आनाय्य पाटलिपुरात्किल सोमदत्त
मेकत्र तेऽथ निखिला मिलिताः कुमाराः ।
यावन्मिथो विदधते स्वकथा हि ताव
त्सन्देशपत्रमनुगा जनकस्य निन्युः ।।[९६]

संदेश में राजहंस ने अपना कथानक वर्णित किया है और उन्हें शीघ्र ही अपने राज्य को लौट आने का आदेश दिया है । संदेश का अन्तिम चरण है—

---

९५. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उत्तरपीठिका अष्टम उच्छ्वास श्लोक ११८-११९
९६ वही नवम उच्छ्वास श्लोक १

"श्रुत्वा मुनिश्वदत्—'राजन्, राजवाहनप्रमुखाः सर्वेऽपिकुमारा अनेकान्दुर्जयञ्शत्रून्विजित्य दिग्विजयं विधाय भूवलयं वशीकृत्य चम्पायामेकत्र स्थिताः। तवाज्ञापत्रमादाय तदानयनाय प्रेष्यन्तां शीघ्रमेव सेवकाः' इति मुनिवचनमाकर्ण्य भवदाकारणायाज्ञापत्रं प्रेषितमस्ति। अतः परं चेत्क्षणमपि यूयं विलम्बं विधास्यथ ततो मां वसुमतीं च मातरं कथवशेषावेव श्रोष्यथेति ज्ञात्वा पानीयमपि पथिभूत्वापेयम्' इति"[९७]

कविमल्ल ने इसका अनुवाद इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

चम्पा स्थिता हि सकलाः क्षितिपाः कुमारा
तिष्ठन्त्यतः प्रहिणु संप्रति तत्र पत्रम्।
तत्प्रेषितं परमतो ना विलम्बनीयं
मामन्यथा वसुमतीं च कथावशेषौ॥
आकर्णयिष्यथ ततः सपदि प्रधाव्यं
प्रस्थाय किन्तु पथि वार्यपि पातुमर्हम्।
कांश्चिन्नियुज्य नवराज्यसुरक्षणार्थं
स्वस्वोद्गृहीतमहिलाधनसैन्यदृप्ताः ॥[९८]

ये सभी राजकुमार अपने-अपने राज्यों की रक्षाकर आवश्यक सैनिक बल के साथ अपने पूर्वशत्रु मालवेन्द्र मानसार को पराजित कर उसके राज्य को अपने अधिकार में कर पुष्पपुर पहुँचकर महाराज और महारानी को प्रणाम करने की प्रतिज्ञा कर योजनानुसार कार्य सम्पन्न कर पुष्पपुर पहुँच जाते हैं। राजा और रानी सबसे मिलकर प्रसन्न होते हैं और फिर मुनि वामदेव की आज्ञा से वानप्रस्थ आश्रम में जाने की इच्छा प्रकट करते हैं—

प्राप्तास्ततो नृपवराः परमप्रसन्ना
एतान्निरीक्ष्य विनयेन मुनिं जगाद।
योग्यं विधातुमिदमेव यतीन्द्रवान
प्रस्थाश्रमे मम निवासविधिर्यदिष्टः॥[९९]

इधर सारे राजकुमार महाराज राजहंस की आज्ञा से अपने-अपने राज्य का शासन प्रारम्भ कर देते हैं—

---

९७. 'दशकुमारचरित' उत्तरपीठिका, दण्डी, पृष्ठ २८२
९८. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी०नवम उच्छ्वास श्लोक ७,८
९९. वही श्लोक १२

ज्ञातारस्ते निवासं विपिनभुवि पितुर्मेनिरे तन्निदेशात्
स्वं स्वं राज्यं गृहीत्वा पुनरवनिपतेः सेवने सावधानाः ।
यातायातं कुमाराः विदधुरथ तथा लब्धनव्याधिपत्ये
पूज्यत्वं पुष्पपुर्य्याः प्रतिदिनमधिकं चिक्षिपुः स्वामिपुत्रे ।।[१००]

समालोचन

कविमल्ल हरिवल्लभ भट्ट द्वारा महाकवि दण्डी के प्रसिद्ध गद्यकाव्य 'दशकुमारचरितम्' के पद्यानुवाद के सोद्धरण विवेचन से यह सिद्ध होता है कि कविमल्ल ने अनुवाद में अपनी विद्वता का प्रदर्शन किया है। आवश्यकतानुसार उन्होंने महाकवि दण्डी के मूल शब्दों को भी अपने इस अनुवाद में ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा है। वास्तविक दृष्टि तो यह है कि उनका यह अनुवाद एक सफल अनुवाद है, जिसमें कवि ने किसी भी घटनाक्रम को नहीं छोड़ते हुये सम्पूर्ण गद्यकाव्य का सफल रूपान्तर प्रस्तुत किया है। कविमल्ल ने ग्रंथ के अन्त में प्रस्तुत पाँच पद्यों में अपने इस ग्रंथ के संबंध में अपना मन्तव्य भी प्रकट किया है। उनका यह कथन है कि जिस प्रकार हवा बहुत दूर से भी फूलों की गंध ले लेती है, उसी प्रकार इन्होंने भी दशकुमारचरित की इस कथा का प्रणयन किया है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि हवा केवल फूलों की गंध को ग्रहण करती है। गंध को उत्पन्न करने वाले तो फूल ही होते हैं, वह तो केवल उस गंध का रूपान्तर कर लोक में व्याप्त करने का कार्य करती है, उसी प्रकार मूल कथा के लेखक तो कवि दण्डी है, परन्तु उनकी उस कथा के सार को लेकर उसका पद्यानुवाद कर लोक में व्याप्त करने का कार्य किया हैं। इसी सन्दर्भ में कविमल्ल का यह पद्य भी स्मरणीय है—

अस्य कृतावगन्तुं कथं न कुत्रापि दुर्गुणैः शक्यम् ।
विज्ञातं ननु दण्डी यस्मादस्ति प्रसिद्धोयम् ।।[१०१]

गद्यकाव्य में तो महाकवि दण्डी को काव्योचित गुणों का समावेश करने की दृष्टि से अलंकार आदि का विधान करना आवश्यक था। कवि दण्डी की विषय विवेचनात्मक शैली भी निराली रही है। इस प्रकार यह 'दशकुमारचरित' काव्य एक सफल गद्य काव्य रहा है। इसके लिये कविमल्ल ने "रूप्यक गणवद्विस्तारः" शब्द का प्रयोग किया है और अपनी इस कृति को उन्होंने 'हुण्डी' की संज्ञा से अभिहित किया है, जो सारमात्र होती है—

---

१००. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' उ० पी० नवम उच्छ्वास श्लोक १४
१०१. वही श्लोक सं. ३ पृष्ठ ७८

विदितो रूप्यकगणबद्धिस्तारो दशकुमारचरितस्य ।
अस्य पुनः संक्षिप्तिर्विभाति तद्धुण्डिकेव ननु ।।[१०२]

कविमल्ल के कथन का यह आशय है कि जिस प्रकार हुण्डी में सारांश का उल्लेख होता है, उसी प्रकार कविमल्ल ने भी 'दशकुमारचरित' की कथा के सारमात्र को पद्यबद्ध कर प्रस्तुत किया है और इसी बात को उन्होंने अन्तिम पद्य से स्पष्ट भी किया है—

ग्रन्थे कृतोत्र संक्षेपः कथामात्रकृते मया ।
लुण्ठयन्ति वृथा वस्तु परेषां नहि पंडिताः ।।[१०३]

अपने द्वारा प्रस्तुत सारमात्र कथा के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए कवि का कथन समीचीन है, क्योंकि पण्डित व्यर्थ में ही अन्य कवियों के विषयों को जबरदस्ती नहीं चुराते, लूटते । वे तो जितना आवश्यक होता है, उतने ही सार को ग्रहण करते हैं ।

यद्यपि यह दशकुमारचरित का कथासारमात्र है और इसीलिये कुछ लोगों की दृष्टि में महत्वपूर्ण कार्य न हो, परन्तु हमारी दृष्टि से उनका यह विचार समीचीन नहीं है । उनके वैदुष्य का परीक्षण करना हो तो उनके द्वारा रचित अन्य ग्रंथ भी कम नहीं पड़ते । उनका विद्याविलासिनीचरित्र, दशकुमारचरित की सी कथा को ही प्रस्तुत करता है, जो उपदेशात्मक भी है । संस्कृत-साहित्य के इतिहास में एक ऐसी भी परम्परा चल पड़ी थी, जिसके अनुसार लोग पूर्ववर्ती महाकाव्यों के अथवा गद्यकाव्यों के कथानक को रूपान्तरित कर प्रस्तुत करने में गौरव समझते थे। इस दृष्टि से हम जयपुराधीश सवाई मानसिंह तृतीय के राजगुरु सीताराम भट्ट पर्वणीकर का नाम प्रस्तुत करना चाहेंगे, जिन्होंने नैषध और महाभारत में वर्णित महाराज नल की कथा को अपने शब्दों में गुम्फित कर "नलविलास" नामक महाकाव्य का प्रणयन किया । इसी प्रकार उन्होंने "लघुरघुकाव्यम्" नाम से रघुवंश के १९ सर्गों का सारांश १९ सर्गों वाले इस काव्य में प्रस्तुत किया, जिसके प्रत्येक सर्ग में २० श्लोक हैं । इसी परम्परा में कविमल्ल के ज्येष्ठ वैमात्रेय भ्राता पं. श्रीकृष्णराम भट्ट का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने "सारशतकम्" नामक पुस्तक में प्रसिद्ध पांच महाकाव्यों के सार को १०० पद्यों में प्रस्तुत किया है अर्थात् प्रत्येक महाकाव्य के कथानक को २० पद्यों में गुम्फित किया है । इसी सरणि में कविमल्ल दण्डी के दशकुमारचरित का

---

१०२. 'श्लोकबद्ध दशकुमारचरित' श्लोक ४ पृष्ठ ७८
१०३. वही श्लोक ५ पृष्ठ ७८ अन्तिम पद्य

पद्यवद्ध छायानुवाद प्रस्तुत कर इतिहास में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। इनका यह काव्य संस्कृत-रत्नाकर के द्वितीय वर्ष के अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ है। अर्थात् १९०५ ई. में इसका प्रकाशन प्रारम्भ हो गया था और १९०७ में यह पूर्णतः प्रकाशित हो चुका था।

'आधुनिक संस्कृत साहित्य' के लेखक डॉ. हीरालाल शुक्ल ने अपने इस इतिहास ग्रंथ में कविमल्ल पं. हरिवल्लभ भट्ट द्वारा प्रस्तुत 'दशकुमारचरित' तथा 'दशकुमारदशा' को एक ही ग्रंथ माना है।[१०४] उनकी दृष्टि में दशकुमारचरित (प्रवन्धश्लोकमय) की सफल लेखिका "चम्बोल मठात्तिल अम्बादेवी तम्बूराटी" ने १९१९ ईस्वी में 'दशकुमारचरितम्' लिखा था। इसमें दशकुमारचरित की कथा को पद्यवद्ध किया गया है। डॉ. शुक्ल की दृष्टि में जहां विशाल महाप्रबन्धों के सार को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रही है, वहीं संस्कृत के गद्य-काव्य को पद्यवद्ध करने की भावना रही है और यह "श्लोकवद्धं दशकुमारचरितम्" उसी का दृष्टान्त है। चम्बोल मठात्तिल अम्बादेवी तम्बूराटी केरल की निवासिनी थी और अरिप्पाट क्षेत्र के २ मील उत्तर में चम्बोल नामक मठ में उत्पन्न हुई थी। 'कुञ्जि कुट्टी तम्बूराटी' इनकी माता का नाम था और 'एलङ्गलूर कृष्णन् नम्बूदरी' इनके पिता थे। इनके पति का नाम 'पटाम्बि के दिवाकरन् नम्बूदरी' था। इनकी केवल एक ही रचना 'दशकुमारचरित' है, जो श्लोकमय है। जिसके प्रारम्भ का श्लोक है—

"कामाक्षि कल्मषविनाशिनि भक्तलोक—
कामप्रदायिनि हिमाद्रिसुते नमस्ते ॥[१०५]

डॉ. शुक्ल ने इस रचना का प्रकाशन समय सन् १९१९ ई० बतलाया है और इसे 'दशकुमारचरित' की प्रथम पद्य रचना स्वीकारा है, जब कि हमारी दृष्टि में कविमल्ल पं. हरिवल्लभ भट्ट की रचना प्रथम रही है, क्योंकि इसका पूर्ण प्रकाशन १९०७ में ही हो चुका था। अतः इससे इस रचना का वैशिष्ट्य स्वतः सिद्ध है।

डॉ० दामोदर शास्त्री
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,
शाखा कार्यालय, चित्तौड़गढ़

---

१०४. 'आधुनिक संस्कृत साहित्य'—साहित्यकार परिचय पृष्ठ २५८ संख्या १९६ "३ श्लोकबद्धदशकुमारचरितम् (१९०५) या दशकुमारदशा"

१०५. 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' साहित्यकार परिचय पृष्ठ ४३४ क्रम संख्या ६५८ समय १८९० से १९२९ ई.।

अलवर राजघरानें की हिन्दी सेवा

अलवर के राजघराने वाले आमेर के महाराजा उदयकरण के बड़े पुत्र वरसिंह के वंशज थे। पहले तो इनका राज्य जयपुर के अधीन ही था। इनकी राजधानी माचैड़ी (मत्स्यपुरी) थी। वरसिंह की १५वीं पीढ़ी में महाराजा प्रतापसिंह ने वि० सं० १८३२ (सन् १७७५) में अपनी वीरता का परिचय देकर स्वतत्र अलवर रियासत की स्थापना की थी। राजधानी अलवर नगर में बनायी गयी। अलवर में सात महाराजा हुए हैं जिनमें साहित्य संरक्षक तो सभी थे, किन्तु कुछ महाराजा कवि भी हुए हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य में जो योगदान दिया है वह निम्न प्रकार है—

(१) बख्तावरसिंह—ये महाराजा प्रतापसिंह के दत्तक पुत्र थे और इनका जन्म सं० १८३५ वि० (सन् १७७८) में हुआ था। ये अलवर के दूसरे महाराजा थे जिनका शासनकाल १७९० से १८१४ ई० तक रहा था। ये साहित्य के संरक्षक एवं कवियों के आश्रयदाता के साथ-साथ स्वयं भी कवि थे। ये कृष्ण-भक्त के साथ-साथ शिव-भक्त भी थे। इनके समय में भवन निर्माण कार्य अधिक हुआ था। अलवर का सागर, बख्तेश्वर महादेव का मन्दिर आदि इन्होंने ही बनवाये थे। इनकी दो रचनाएँ—'दान लीला' (सं० १८५४ वि०) और 'अंक तथा नरद चीतणी विधि' उपलब्ध हैं। 'दान लीला' तो कृष्ण-भक्ति की रचना है जिसमें कृष्ण की दान लीला का भक्ति भाव से वर्णन किया गया है। रचना के प्रारम्भ में यह दोहा लिखा है—

कवि इंदर आज्ञा दई, कीजै कृष्ण विलास।
दूरि होई अज्ञान तम, उपजै प्रेम प्रकास ॥६॥

इससे प्रकट होता है कि कोई इन्द्र कवि इनके कवि गुरु होंगे। ब्रजभाषा की इस रचना में २५० छंद हैं। काव्य-सौष्ठव भी अच्छा है। दूसरी रचना ज्योतिष की है जिसमें अंक, नरद (गोट) एवं तिथि विचारने की विधि का वर्णन किया है। महाराजा बख्तावरसिंह के दरबार में कवि भोगीलाल, उम्मेदराज बारहठ, इन्द्रमल आदि कवि भी दरबारी ही थे।

(२) विनयसिंह—ये अलवर के तीसरे महाराजा थे जिनका शासनकाल १८१४ से ५७ ई० तक रहा था। ये महाराजा बख्तावरसिंह के दत्तक पुत्र थे। अलवर के सभी महाराजाओं में साहित्य का संरक्षण और संग्रह कराने में इनका विशेष प्रेम था। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं के साहित्य का अच्छा संग्रह किया था। कवियों से रचना करवाने के अतिरिक्त उक्त भाषाओं की बहुत-सी प्रतियां करवायीं। साहित्य का संग्रह एवं सुरक्षा के लिए ही सं० १९०५ वि० में उन्होंने "पुस्तक शाला" की स्थापना की थी। गुलिस्ताँ एवं बोस्तां रचनाओं के स्वर्णांकन के लिए लाखों रुपये खर्च किये थे जो आज भी अलवर अजायब घर में सुरक्षित हैं। इन्होंने काशी आदि स्थानों से विद्वानों को बुलाकर एक परिषद् भी स्थापित की थी। निर्माण कार्य इन्होंने भी करवाया था। विनयविलास (राजर्षि महाविद्यालय), सिलीसेढ, आमखास, मूसी महारानी की छत्री आदि इन्होंने ही बनवाये थे।

ये इतने जिज्ञासु थे कि व्याकरण पढ़ने के लिए स्वामी विरजानन्दजी को भी आग्रहपूर्वक दरबार में लाये थे। इन्होंने हिन्दी के विकास में भी सहयोग दिया है तथा एक रचना "भाषा-भूषण" को गद्य में भाषा टीका की है। इनके दरबार में रामलाल, पूरण मिश्र, हरनाथ, उमादत्त, उम्मेदराम बारहठ आदि कवि शोभायमान थे।

महाराजा के समय का संकलित बहुत-सा साहित्य "राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अलवर" में उपलब्ध है।

(३) बलवंतसिंह—ये महाराजा बख्तावरसिंह की मूसी महारानी के पुत्र थे। अलवर राज्य के ठाकुरों ने इनको मूसी पर्दायत (रखैल) के पुत्र होने के कारण राजा नहीं बनाया और इनकी बजाय विनयसिंह को महाराजा बना दिया। जब इन्होंने झगड़ा किया तो अंग्रेजों ने हस्तक्षेप कर इनको अलवर के उत्तरी क्षेत्र का राजा बनवा दिया जिसकी राजधानी तिजारा रखी गयी। इन्होंने वहां १८२६-४५ ई० तक शासन किया। ये कवियों के आश्रयदाता के साथ-साथ स्वयं भी कवि थे। इनकी एक रचना "भैर बावनी" उपलब्ध है जिसमें ५६ छन्द हैं। इसका रचनाकाल वि० सं० १८९९ है। इस रचना में बलवंतसिंह ने ज्ञान-नीति का वर्णन किया है। अधिकांशत: इसमें शांत रस की अनुभूति होती है। इस रचना से बलवंतसिंह राम-भक्त प्रतीत होते हैं। इनके दरबार में चतुरसाल आदि कवि विद्यमान थे। बलवंतसिंह की १८४५ ई० में निस्संतान मृत्यु हो जाने के कारण पूर्व शर्तों के अनुसार महाराजा विनयसिंह ने तिजारा को अलवर राज्य में मिला लिया।

(४) रूपदेवी या रूपकँवर—ये अलवर के महाराजा विनयसिंह की महारानी थीं और राम भक्त कवयित्री थीं। इन्होंने वि० सं० १९१४ में "रामरास" की रचना की थी जिसका आधार स्कन्द पुराण का कौशल खण्ड है। ब्रजभाषा की इस रचना में २२७ छंद हैं। इस रचना में भगवान राम द्वारा किये गये रास का भक्ति-भाव से वर्णन किया गया है। रचना प्राय: सरस और काव्य सौंदर्य की दृष्टि से अच्छी है। इन महारानी ने अपनी आज्ञा से पूरण कवि से "रूप रागावली" की रचना भी करवायी थी। इससे स्पष्ट है कि ये कवयित्री होतो हुयी साहित्य की संरक्षक और बुद्धिमान थीं।

(५) इन्द्र कँवर—ये भी महाराजा विनयसिंह की दूसरी महारानी थीं। इन्होंने अपने पुत्र महाराजा शिवदानसिंह के बारे में "शिवदान प्रकाश" ग्रन्थ की रचना की थी, जो आदि अंत में अपूर्ण उपलब्ध है। इसमें केवल २८ छंद ही प्राप्त हैं। इन्द्रकँवर ने अपने पुत्र शिवदानसिंह के राज्य को शांति से कायम रखने के लिए इस रचना में इन्द्र, कृष्ण आदि देवताओं से प्रार्थनाएँ की हैं और साथ ही अपने उद्धार की भी कामना की है। इस रचना में बारहखड़ी के क्रम को रखा गया है, जो कवयित्री की अपनी शैली की विशेषता है। यह भक्तिपरक रचना है।

इन्द्रकँवर की एक और रचना "शिवदान चन्द्रिका" का उल्लेख मिलता है। हो सकता है कि यह रचना "शिवदान प्रकाश" का ही दूसरा नाम हो। यह उपलब्ध न होने के कारण इसके बारे में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी

नहीं कहा जा सकता ।

(६) चन्द्रकँवर—ये भी महाराजा विनयसिंह की तीसरी महारानी थीं । इनकी दो भक्ति की रचनाएं—"शिव स्तुति" और "दुर्गा स्तुति" उपलब्ध हैं । इन रचनाओं से प्रतीत होता है कि ये शिव और शक्ति की भक्त थीं । इन्होंने शिव और शक्ति के अन्य कवियों के स्तोत्र भी संकलित करवाये थे ।

(७) जयसिंह—इनसे पूर्व महाराजा शिवदानसिंह और मंगलसिंह साहित्य के संरक्षक और कवियों के आश्रयदाता तो थे किन्तु स्वयं कवि नहीं थे ।

महाराजा जयसिंह का जन्म १८८२ ई० में हुआ था जो महाराजा मंगलसिंह के पुत्र थे । सन् १८९२ ई० में मंगलसिंह की मृत्यु के पश्चात् १० वर्ष की आयु में ही अंग्रेज एजेण्ट के संरक्षण में बालक जयसिंह को राजा बनाया गया । बाद में सन् १९०३ ई० में इनको राज्य के पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए और सन् १९३७ ई० तक इनका शासनकाल रहा था । ये एक अच्छे भक्त कवि और कवियों के आश्रयदाता थे । हिन्दी भाषा और हिन्दू धर्म के कट्टर अनुयायी थे । इन्होंने राज्य में फारसी लिपि के स्थान पर सर्व प्रथम सन् १९०८ ई० में राज्य भाषा की लिपि देवनागरी और भाषा उर्दू रखी । किन्तु इनको इतने से कार्य से संतुष्टि नहीं थी । वे तो भाषा और लिपि हिन्दी करना चाहते थे । सन् १९१५ ई० में राज्य की भाषा शुद्ध हिन्दी और लिपि देवनागरी के आदेश प्रसारित कर दिये । भारत के सभी राजाओं में यह इनका सर्व प्रथम और बड़ा योगदान था । हिन्दी एवं खड़ी बोली के प्रचार के लिए ही इन्होंने प्राथमिक शाला तक शिक्षा निःशुल्क कर दी । हिन्दी के विकास के लिए ही बाहर से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि बड़े-बड़े विद्वानों को भी अपने दरबार में सादर निमंत्रित किया । विद्वानों से हिन्दी, फारसी, अंग्रेजी में एक "त्रिवल्लभ कोष" तैयार करवाया था । यही नहीं, अपने विभाग, पद एवं मार्गों के नाम भी शुद्ध हिन्दी और अपनी संस्कृति के अनुकूल परिवर्तित करवा दिये । हिन्दी भाषा के विकास में इनका सर्वाधिक योगदान रहा है । इनकी शुद्ध हिन्दी के कुछ नमूने निम्न हैं—

भटके का राह बताते हो,
दुखियों से खुद मिल जाते हो,
रोते के आँसू पूँछत हो,
ओ प्रेम में रुलाने वाले ।
भोर पड़ी जब तेरों पर,
ओ राम पिया आया तू ही,
छुप मत अब दर्शन दिखलादे,
'जयराज' की लाज रखन वाले ।

महाराजा जयसिंह ने हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में रचनाएँ की हैं । उनकी "जयमत मंजरी" तो हिन्दी की रचना है और "अंजुमने वहशत" एवं "चमने वहशत" उर्दू की रचनाएं हैं । "जयमत मंजरी" में तो राम भक्ति के पदों का संग्रह है जिसमें उन्होंने अपना उपनाम जयराज दिया है । इस

रचना में कवि की राम-दर्शनों के लिए तीव्र विरह-उद्गारों की अभिव्यक्ति हुयी है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से भी रचना ठीक है। "अंजुमने वहशत" में २०० गजलें हैं जिसमें मसनवी शैली में खुदा की बलंदी का बखान किया गया है। तीनों ही रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु "चमने वहशत" सुलभ नहीं है।

महाराजा जयसिंह ने लन्दन से अलवर की जनता के नाम जो पत्र भेजे थे, उनमें भी अपनी कविता और शायरी का अच्छा परिचय दिया है। उन पत्रों में उनकी देश-प्रेम और अंग्रेजों को भारत से निकालने की भावना भी व्यक्त हुयी हैं। अतः महाराजा हिन्दी के अतिरिक्त फारसी और अंग्रेजी के भी ज्ञाता थे। भारतीय राजाओं में उनके द्वारा बनारस में कांग्रेस का झण्डा फहराने का भी योगदान रहा है।

(८) युवराज प्रतापसिंह—ये अलवर के वर्तमान महाराजा तेजसिंहजी के बड़े युवराज थे। इनका जन्म सन् १९३८ ई० में हुआ था और सन् १९७६ में मृत्यु हो गयी। ये राम भक्त और कवि थे। इनकी प्रकृति उदार थी। इन्होंने राम भक्ति की तीन रचनाओं का 'उत्सव विलास', 'नित्य विलास' और 'ऋतु विलास' का संकलन करवाया था और कुछ पद इन्होंने भी रचे थे। तीनों रचनाएं प्रकाशित हैं। "उत्सव विलास" दो भागों में प्रकाशित है। इसमें युवराज प्रतापसिंह ने अवध के श्री राम भक्त रसिक सम्प्रदाय के संतों के पदों का संग्रह करवाया था। हजारों संतों के पद हैं। इस रचना में षड् ऋतु विहार व लीला के पद हैं। "ऋतु विलास" में सीताराम की ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु तथा शीतकाल में नित्य अष्टयाम सेवा के एवं कीर्तन के पद हैं। "नित्य विलास" में सीताराम की नित्य अष्टयाम सेवा की कीर्तन-प्रणाली के पद हैं। युवराज प्रतापसिंह ने तीनों रचनाओं को छपवाकर भक्तों को मुफ्त में वितरित करवाया था। इससे स्पष्ट है कि ये जानकी वल्लभजी के अच्छे भक्त थे।

उपर्युक्त रचनाओं से निष्कर्ष निकलता है कि अन्य विषयों के अतिरिक्त भक्ति की रचनाएं अधिक हैं, उनमें भी राम भक्ति की अधिक हैं। अधिकतर रचनाएं ब्रज भाषा की हैं, किसी पर राजस्थानी एवं मेवाती का प्रभाव है। उक्त रचनाओं में से अधिकांशतः "राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अलवर" में उपलब्ध हैं। अलवर राजघराने का हिन्दी की सेवा में जो भी योगदान रहा है, वह महत्त्वपूर्ण और अविस्मरणीय है। उनसे हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि ही हुयी है। इनमें से केवल महाराजा जयसिंह और युवराज प्रतापसिंह की रचनाएं प्रकाशित हुयी हैं।

रामकिशन पोहिया
गवेषक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
शाखा—अलवर

माधवभट्टविरचिता

सूरसिंहवंशप्रशस्तिः

(राष्ट्रकूट-वंशावली)

इतिहास लेखन की परम्परा चाहे वह मुगल-दरबार के पर्शियन इतिहासकारों को है, राज्याश्रित चारण भाट कवियों की है, अथवा रसगुणादि अलंकृत देववाणी में मानवीय व्यक्तित्व के इतिवृत्त के विवरण का क्रमिक-अक्रमिक; युक्त-अयुक्त गुम्फन किया गया हो, वह भाषागत लालित्यमय वर्णन की मोहकता से, निजाश्रयदाता के गुणों, चाहे वे उनमें रहे हों अथवा न रहे हों, की अतिशयोक्त या मुक्तकंठ प्रशंसा से, शत्रुपक्ष के अवास्तव दौर्बल्यप्रदर्शन से या अन्यान्य अनावश्यक प्रसंगों के चित्र-विचित्र ग्रथन से मुक्त होकर सामने नहीं आ पायी है।

महाभारत और रामायण का निरूपण ऐतिहासिक कोटि का है। लेकिन विषयवस्तु को अन्यान्य प्रकार से ऐसा भ्रमित किया गया है कि उसका इतिहासपरिशीलन स्वतन्त्र शोध का विषय है। महाकवि कालिदास के रघुवंश का विषय ऐतिहासिक है, उसका प्रतिपादन काव्य की तरह हुआ। हां, हरिषेण-प्रशस्ति को प्रारम्भिक शुद्ध ऐतिहासिक काव्य माना जा सकता है। कल्हण की राजतरंगिणी से लेकर अधुनातन इन्दिराचरित-महाकाव्य तक की ऐतिहासिक काव्यों की लम्बी सूची को यहां प्रस्तुत करना उतना आवश्यक नहीं जितना उनमें प्राप्त इतिहास के संशोधन का है।

आलोच्य "सूरसिंहवंशप्रशस्ति" उपर्युक्त परम्परा में होते हुए भी प्रतिपाद्य के आधार पर उन अतिशयोक्तिपूर्ण काव्यों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता जिसने पूर्ववर्त्ती काव्यपुष्पों की एक माला का रूप ले लिया है।

हिन्दी-राजस्थानी अथवा डिंगल काव्यों अथवा चारणों की विरुदावली की तरह कवि का प्रारम्भिक उद्देश्य राठौड़ों की वंशावली को संस्कृत-श्लोकों में निरूपण करना रहा है। सूरसिंह का वर्णन काव्य के अन्तिम भाग में है। मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगा देने वाले युद्धों का वर्णन इसकी विशेषता नहीं है, रम्य-प्रकृति-चित्रण में कवि की लेखनी उतनी प्रवाहमय नहीं हो पाई है। वंशावली और सूरसिंह के कतिपय प्रसंगों का काव्यमय वर्णन ही कवि के प्रतिपाद्य को सीमा है। राजस्थान के ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में इसका स्थान व महत्त्व इस प्रदेश में लिखे गये अथवा इसके इतिहास को काव्यबद्ध करने वाले प्रयत्नों के सिंहावलोकन के बिना सुनिश्चित करना कदाचित् काव्य के साथ अन्याय होगा।

(१) पृथ्वीराजविजय—जयानक द्वारा विरचित १२वीं शताब्दी की रचना है। इसमें सपादलक्ष के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इसमें अजमेर के उत्तरोत्तर विकास का वर्णन है।

(२) हमीरमहाकाव्य—रणथम्भौर के चौहान-वंश के अध्ययन हेतु इसका महत्त्व है। हमीर की मृत्यु के लगभग १०० साल बाद इसकी रचना की गई। इसमें दिये गये तथ्य पूर्णतया प्रामाणिक हैं। अतः तत्कालीन सम-सामयिक घटनाओं के अलावा कई सामाजिक एवं धार्मिक पहलू भी इससे उजागर होते हैं।

(३) भट्टिकाव्य—यह काव्य सम्भवतः १५वीं शताब्दी में रचा गया था। जैसलमेर की सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का इसमें चित्रण है। रावल भीम की मथुरा-वृन्दावन यात्रा के अलावा महाराजा अक्षयसिंह द्वारा किया गया तुलादान एवं तत्कालीन स्थापत्य का वर्णन है।

(४) राजविनोद—बीकानेर नरेश कल्याणमल्ल (१५४२-१५८४ ई०) की आज्ञा से इस ग्रन्थ की रचना सदाशिव भट्ट ने की थी। इसमें किलों के निर्माण एवं विविध आयुधों के वर्णन प्रचुर मात्रा में हैं। इसमें तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति का अनूठा चित्रण है।

(५) कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक-काव्य—१६वीं शताब्दी की यह रचना बीकानेर-नरेश के मन्त्री कर्मचन्द्र की आज्ञा से विरचित है। इसमें तत्कालीन मन्दिर, महल, पाठशालाएँ, बाजार, बस्तियों के अलावा राजाओं के विद्यानुराग एवं वैभव की जानकारी है।

(६) अमरसार—महाराणा अमरसिंह प्रथम एवं महाराणा प्रताप के विषय में इससे काफी जानकारी मिलती है। इसमें तत्कालीन रहन-सहन, आमोद-प्रमोद आदि का सुन्दर चित्रण है।

(७) अमरकाव्य वंशावली—इस ग्रन्थ का प्रणेता रणछोड़ भट्ट था। मेवाड़ के शासकों की राजनैतिक सफलताओं का इसमें वर्णन है। जगह-जगह इसमें धर्म-यात्राओं, तुलादान, दीपावली, इत्यादि विभिन्न पक्षों को उजागर किया है। तत्कालीन सैनिकों की वेशभूषा एवं आयुधादि का भी इसमें वर्णन है।

(८) राजरत्नाकर—यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से भारी महत्त्व का है। इसमें राजसिंहकालीन दरबारी-जीवन का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया गया है। तत्कालीन युद्ध एवं सन्धियों का जगह-जगह निरूपण है। महाराणा राजसिंह के काल में भट्ट सदाशिव ने इस ग्रन्थ की रचना की थी।[1]

---

१. डॉ० मूलचंद पाठक, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, उदयपुर वि० वि० द्वारा संपादित (प्रकाशनाधीन)।

महाराणा अमरसिंह द्वितीय (१६९८-१७१०) के काल में वैकुण्ठ व्यास ने अमरसिंहअभिषेककाव्यम्[१] एवं अमरकाव्य[२] वंशावली की रचना की थी। पण्डित मंगला[३] ने "अमरनृप काव्य-रत्न" एवं भट्ट सोमेश्वर ने राज-सिंह[४] राज्याभिषेक काव्य लिखा जिसमें महाराणा राजसिंह II (१७५४-१७६१) का राज्याभिषेक चित्रित है।

अरिसिंह[५] (१७६१-१७७३) के राज्यकाल में सोमेश्वर भट्ट ने देबारी के राजराजेश्वर मन्दिर हेतु एक प्रशस्ति लिखी थी।

जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ज्योतिष शास्त्र के महान् ज्ञाता एवं विद्याप्रेमी थे। उनके पुत्र ईश्वरीसिंह के आदेश से देवर्षि कृष्णभट्ट ने ईश्वर-विलास-महाकाव्य[६] की रचना की। इसमें जयपुर नगर की स्थापना, जयसिंह के पुण्य कार्यों एवं उनके अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। चौहान वंश के बारे में प्रकाश डालने वाली सुजनचरित महाकाव्य की रचना चन्द्रशेखर नामक कवि ने १६वीं शताब्दी में की थी। इसके अलावा कोटा के महाराव उम्मेदसिंह को आधार बनाकर "उम्मेदसिंह चरितम्" नामक काव्य लिखा गया था जो अभी तक अप्रकाशित है। १७वीं शताब्दी के कवि विश्वनाथ ने "शत्रुशल्यचरितम्" नामक काव्य लिखा था जिसका प्रकाशन प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने अब अपने हाथ में लिया है।

चौहानों के प्रारम्भिक वंश के वर्णन के साथ शत्रुशल्यचरित में अकबर से शाहजहां के काल तक की घटनाओं का प्रामाणिक विवरण है। रावरतन एवं शत्रुशल्य द्वारा बुरहानपुर, गुजरात, रणथम्भोर एवं दक्षिण की विविध लड़ाइयों का जीवन्त चित्रण है।

मारवाड़ के राजा अजीतसिंह (१७०७-१७२४) के काल में दो महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक काव्यों का प्रणयन किया गया। भट्ट जगजीवन ने अजीतो-

---

१. अमरसिंहअभिषेककाव्य—सम्पादित. दशरथशर्मा, मरुभारती 'पिलानी' साल १, नं० ३।
२. सरस्वती भवन वाचनालय, उदयपुर।
३. ओझा, राजस्थान का इतिहास, भाग २, पृ० ८९०।
४. ओझा, राजस्थान का इतिहास, भाग २, पृ० ९५४।
५. ओझा—राजपूताने का इतिहास, पत्र ९७३।
६. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थांक, २९।

दय महाकाव्य[1] की रचना की थी। ये अजीतसिंह के दरबारी कवि थे। मारवाड़ की ऐतिहासिक घटनाओं एवं मुगल-मारवाड़ संबंधों का इसमें विस्तृत वर्णन है। इसके अलावा जोधपुर नगर का वर्णन, मण्डोर के बगीचे का सौन्दर्य तथा जन्म-मृत्यु, विवाहादि विषयक सामग्री का भी इसमें समावेश है। दीक्षित बालकृष्ण ने अजीत-चरित्र[2] नामक काव्य लिखा। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का काफी महत्त्व है। महाराणा अभयसिंह के सम्मान में (१७२४-१७४९) अभयोदय[3] काव्य लिखा गया। भट्ट-हरिवंश ने महाराजा भीमसिंह की प्रशंसा में (१७९३-१८०३) भीम प्रबन्ध[4] नामक काव्य की रचना की। इसके अतिरिक्त मानसिंह-प्रशस्ति[5] एवं मानभास्करोदयचम्पू[6] नामक दो अल्पज्ञात काव्य भी मिलते हैं जिनमें तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ उस युग की परम्परा, विचारधारा एवं सामाजिक संगठन के भी दर्शन होते हैं।

[२]

मारवाड़ के इन ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में सूरसिंह-वंश प्रशस्ति का महत्त्व कदाचिदपि न्यून नहीं है। इस काव्य में इतिहास एवं कविता का सुन्दर समन्वय है। चार सर्गों के इस काव्य में सूर्य-वंशीय राजाओं एवं राष्ट्रकूट नरेशों की विभिन्न गौरवमयी पराक्रम-गाथाओं का दिग्दर्शन है।

काव्य के प्रथम सर्ग में राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुये उन्हें राष्ट्रवर संबोधन से अभिहित किया गया है। राष्ट्रवर से ही कालान्तर में रट्ठवर, राठौड़ इत्यादि नामों का प्रचलन हुआ।

ब्रह्मद्रवेन सुरनिम्नगया सदार्द्रं राष्ट्रं वरं यदिति तेन तदा शशासे।
ख्यातास्ततःप्रभृति राष्ट्रवरास्तदीया अद्यापि लोकक्कत—
रट्ठवराभिधानाः ॥१-५५॥

---

१. यह काव्य उम्मेद ओरिएन्टल सीरीज जोधपुर से प्रकाशित चुका है।।
२. पुस्तक-प्रकाश-संग्रहालय, जोधपुर फोर्ट, ग्रन्थ सं० २ : रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भा० १, पृ० २१।
३. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भा० १, पृ० २२।
४. ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ७७४।
५-६ महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में संगृहीत।

जहां तक राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है, अधिकांश लोग इसे राष्ट्रवर अथवा राष्ट्रकूट शब्द से निष्पन्न मानते हैं। राठौडां री वंशावली में "श्रीमत् राष्ट्रवंशे नृपवरयशाराज्ञसिद्धार्थाभिधानः" कहकर इन्हें स्पष्टतः राष्ट्र-वंशी कहा गया है। इनके प्राकृत रूप 'रट्टउड' 'राडउड' 'रट्ट' लटिक, रटिक इत्यादि हैं। आदर सूचक के रूप में 'महा' शब्द के प्रयोग से महाराष्ट्र या महाराष्ट्रिक हो गया। अतः स्पष्ट है कि राठौड़ शब्द किसी जाति विशेष का द्योतक है, जिसे राष्ट्रवर या राष्ट्रकूट कहा जाता था।

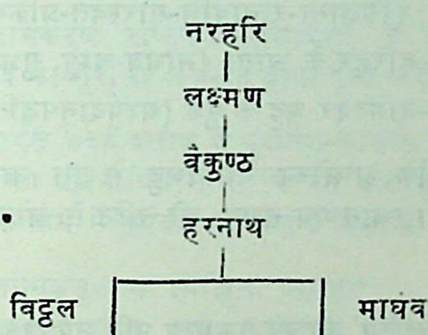
राठौड़ों की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है। भाटों के अनुसार राठौड़ हिरण्यकश्यप की सन्तान[1], दयालदास[2] के अनुसार सूर्यवंशी लेकिन भल्लराव ब्राह्मण की सन्तति, नेणसी के अनुसार कन्नौज के जयचन्द्र के वंशज[3], टॉड[4] के अनुसार कुश की सूर्यवंशीय-सन्तान, राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य[5] के अनुसार चन्द्रवंशीय, पं० ओझा[6] के अनुसार राठौड़ चन्द्रवंशी हैं। प्रभास पाटन से उपलब्ध एक शिलालेख के अनुसार राठौड़ सूर्य एवं चन्द्रवंशी[7] से अलग हैं। दक्षिण भारत के शिलालेखों[8] में इन्हें रट्ट-यदुवंशी का वंशज कहा गया है। बर्नेल[9] के अनुसार राठौड़ द्रविड हैं तथा दक्षिण के रेड्डी और राठौड़ एक ही हैं। डॉ० अल्तेकर[10] भी इन्हें दक्षिणी आर्य मानते हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में जो राठौड़ों की वंशावलियां[11] मिली हैं उनमें इनकी उत्पत्ति महाराष्ट्र कोंकण में मानी गई है और वहां से गढ़ कल्याणी, कर्णाट तथा कन्नौज जाना बतलाया गया है। राठौड़-वंश[12] की विगत के अनुसार राठौड़ों की उत्पत्ति चन्द्रकला नगरी के राजा से हुई थी।

---

१. राजस्थान रत्नाकर, भाग १, पृ० ८८।
२. दयालदास की ख्यात, भाग १, पृ० २-३।
३. नैणसी की ख्यात जि०-२ पृ० ५०-५५, ५८।
४. टॉड राजस्थान जि० १ पृ० १०५।
५. राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य; सर्ग १, श्लोक १२-२६।
६. जोधपुर-राज्य का इतिहास; पृ० ८३।
७. नागरी प्रचारिणी सभा; पत्रिका, भाग ४, पृ० ३४७।
८. एपिग्राफिका-इण्डिका जि०-५ पृ० १६२-१६३।
९. साउथ-इंडियन-पैलियोग्राफी; पृ० १०।
१०. दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स (१९३४) पृ० १-२६ तक
११. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर; ग्रंथ सं० १७८००, ३४५४७।
१२. राठौड़ वंश री विगत; प० १।

[३]

काव्य के चतुर्थ सर्ग के अन्त में कवि ने अपने आपको श्रीमालीज्ञातीय, वत्सगोत्रीय, त्रिपाठीकुलोत्पन्न अभिहित किया है। इनके पूर्वज नरहरि थे जो रत्नजड़ित-चाँदी का झूला अपने घर पर रखते थे। इनके सुपुत्र लक्ष्मण भी वैसे ही समृद्ध थे। लक्ष्मणात्मज वैकुण्ठ ने मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक हरण की गई ब्राह्मणों की स्त्रियों को प्रभूत धनसम्पदा व्यय कर संकट मुक्त करवाया था। इनके आत्मज हरनाथ थे जिनके दो पुत्र—विट्ठल एवं माधव थे। इन्हीं माधवभट्ट ने प्रस्तुत काव्य की रचना की है। इनके वंशवृक्ष को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—



(१) आसीद्वेदविदां वरोतिविशदो यो वत्सगोत्रे द्विजः।
श्रीमान्दानिगणाग्रणी नरहरिः श्रीमालिनामन्वये।
येनानेकरत्नमौक्तिकतुलारुढेण रौक्मीं तुलां,
काश्चित्स्वातपरिवारतोनुभवने दास्योपि संरोपिता ।४-४०।।

तत्पुत्रोपि तथैव लक्ष्मण इति ख्यातस्त्रिपाठी ततो,
वैकुण्ठः किल येन विप्रवनिता म्लेच्छौघबंदीकृताः।
दत्त्वा द्रव्यचयानमोक्षत ततः सूनुः सतामग्रणी
संजज्ञे हरनाथ इत्यथ ततो विद्वानभूद्विट्ठलः।।४१।।

युक्तिव्यक्तिस्तदनुजनुषा माधवेन व्यधायि
स्फूर्ज्जत्येषा भवतु भुवने सूरसिंहप्रशस्तिः।
दोषं दूरीकुरुत कवयः सद्गुणं धत्त यस्मात्
संत सत्यं किल परगुणग्राहिणस्ते प्रशस्ताः।।४२।।

कवि माधवभट्ट अहंमन्यता से दूर साक्षात् विनम्रता के स्वरूप हैं। काव्यसमाप्ति पर 'दोषं दूरी कुरुत कवयः सद्गुणं धत्त यस्मात्' कहते हुये कवि ने अपनी रचना को विविध अलंकारों एवं कवि-दक्षता से विहीन कहा

है। कवि का विश्वास है कि उत्तम पुरुषों का चित्रण होने से यह कृति कलिकालतापनाशिनी सिद्ध होगी।

आफ्रेट के बृहत्सूची पत्र भाग-१, पृ०-४४६ पर माधव भट्ट नामक ६ अलग-अलग विद्वानों एवं माधव नाम से ५० व्यक्तियों का उल्लेख है।

१. माधव भट्ट—विनायक भट्ट के पिता (कौषीतकि-ब्राह्मण)
२. माधव भट्ट—गोविन्दराज के पिता (मनु टीका)
३. " "—सोमेश्वर भट्ट के पिता (न्याय-सुधा)
४. " "—कान्ह के पुत्र। वत्सराज के पौत्र
(सिद्धान्त-रत्नावलि-सारस्वत-प्रक्रिया टीका)
५. " "—हरिहर के भ्राता (माधव चम्पू, सुभद्राहरण)
६. " "—रामेश्वर भट्ट के पुत्र (अर्घ्यदानपद्धति)

अतः स्पष्ट है कि आलोच्य माधवभट्ट से इन नामों का समीकरण नाम साम्य के अलावा स्थान एवं समय की दृष्टि से जोड़ा जाना समीचीन नहीं है।

'सूरसिंह-वंश-प्रशस्ति' की जो एकमात्र प्रति उपलब्ध है उसमें वि० सं० १७७७ (१७२० ई०) प्रति का लेखन काल दिया गया है। प्रतिलिपिक के लेखकीय नाम एवं लेखन-स्थलादि विवरण पर काली स्याही फेर देने से लेखकीय है या नहीं, इसका निर्धारण करना दुष्कर है। इस विषय में निम्नांकित बिंदु विचारणीय हैं—

१. प्रति का प्रतिलिपि काल सन् १७२० ई० है जो महाराजा अजीतसिंह का काल है। अगर रचनाकार अजीतसिंहकालीन है तो सूरसिंह (१५९५-१६१९ ई०) तक का ही विवरण क्यों दिया गया है।

२. काव्य के १-३ तीन सर्गों में सभी महाराजाओं के जीवन की थोड़ी-थोड़ी घटनाओं का वर्णन है लेकिन चतुर्थ सर्ग में जहां से प्रशस्ति प्रारम्भ होता है—सूरसिंह द्वारा लड़े गये सभी प्रमुख युद्धों के वर्णन के साथ-साथ उनके जीवन की घटनाओं का भी वर्णन है। ऐसा विस्तृत वर्णन किसी महाराजा का नहीं किया गया है;

३. सूरसिंह को चतुर्थ सर्ग में सर्वत्र साक्षात् सम्बोधित कर उसके द्वारा लड़े गये युद्धों को याद दिलाई गई है। ऐसा लगता है जैसे कवि सूरसिंह विषयक अभिनन्दनपत्र का पठन कर रहा है।

४. प्रशस्ति लेखन सामान्यतया व्यक्ति के जीवन काल में हुआ करता है;

५. कवि के पूर्वज और सभी बान्धवगण अत्यन्त धनाढ्य थे। स्वयं कवि ने उनके लिए दानी, गणाग्रणी शब्दों का प्रयोग किया है। इनके घर पर रत्न-जड़ित चाँदी का झूला था। कवि के दादा ने मुसलमानों को प्रचुर धन देकर ब्राह्मण स्त्रियों को उनके बन्धन से मुक्त कराया था। बिना राज्याश्रय के यह संभव प्रतीत नहीं होता।

६. प्रति में उपलब्ध पाठ जगह-जगह अशुद्ध है। कई स्थानों पर छन्दोभङ्ग भी मिलता है। मूल कवि से अशुद्धि की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः यह प्रति मूल की प्रतिलिपि होनी चाहिये।

७. ग्रन्थ का नामकरण राष्ट्रकूट—वंशावली के बजाय सूरसिंहवंश प्रशस्ति करना भी कवि का सूरसिंह-कालीन होना पुष्ट करता है।

८. चतुर्थ सर्गान्तर्गत ३३वें श्लोक में पुरातन-कालीन भास्करजन्मोद्भव-चिह्नित राष्ट्रकूट-वंश को जर्जराभिधान से चित्रित कर सूर्यक्षितिपालावतार से इसके नवीनीकरण के क्रम में सूर्यवंश का वर्णन किया है।

श्री सूर्यस्यचिरन्तनेनजनुषा य चिह्नितः प्रागभूत्
वंश सम्प्रति जर्जरः समभवत्कालस्य बाहुल्यतः
श्रीसूर्यक्षितिपाल तं नवयितुं नीतावतारस्त्वया
जीर्णोद्धारवदेष यद्विरचितः श्रीसूर्यवंशः पुनः ।।३७।।

'वंशः सम्प्रति जर्जरः समभवत्कालस्य बाहुल्यतः' आदि अभिधान राष्ट्रकूट वंश के जर्जर काल को ही द्योतित करते हैं। महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम (१६३८-१६७८ ई०) के जमरुद में देहावसान के पश्चात् सन् १६७८-१७०७ ई० की दीर्घावधि मारवाड़ के राष्ट्रकूट वंश की निष्कासनावधि है क्योंकि इस काल में मारवाड़ राज्य मुगलाश्रय में रहा था। राव मालदेव १५३२-१५६२ ई० के निधनोपरान्त उनके उत्तराधिकारी चन्द्रसेन से ई० सन् १५६५ में मुगलसेना ने जोधपुर का किला छीन लिया था। एक अन्तराल के बाद सन् १५८३ में राजा उदयसिंह को मारवाड़ राज्य पुनः प्रदान कर दिया गया।

मालदेव के पुत्रों की आपसी कलह के परिणाम स्वरूप ही इनका राज्य मुगलों को मिल जाना तथा एतन्निमित समस्त भाईयों का इधर-उधर भटकना भी एक दृष्टि से इस वंश का जर्जर काल कहा जा सकता है। जो भी स्थिति रही हो कवि द्वारा सूरसिंह को इस वंश के जीर्णोद्धारक के रूप में चित्रित करने व इसी निमित्त प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन इसी अनुमान को बल देते है कि प्रस्तुत रचना सूरसिंह कालीन है।

यह सर्व विदित है कि सवाई राजा सूरसिंह ने दक्षिण एवं गुजरात विजय के बाद जोधपुर में एक यज्ञ किया था। उसमें सुवर्णदान होने का भी उल्लेख है। संभव है कि उस काल में माधव भट्ट ने प्रस्तुत प्रशस्ति की रचना की हो। प्रयुक्त प्रति मूल ग्रन्थ की प्रतिलिपि हो सकती है। अन्यथा सूरसिंह की मृत्यु के १०० साल बाद (प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते) प्रशस्ति लेखन अप्रासंगिक व प्रयोजनहीन होता।[१]

[४]

प्रस्तुत प्रति का सम्पादन इस ग्रन्थ[२] की एक मात्र उपलब्ध प्रति के आधार पर किया गया है। ग्रन्थ का सामान्य परिचय निम्न प्रकार से है—

ग्रन्थ नाम—सूरसिंह वंश प्रशस्ति[३]
कर्त्ता—माधव भट्ट (श्रीमाली ब्राह्मण)
पत्र संख्या—५४
ग्रन्थ-माप—२२.५ × ११ सेन्टीमीटर
प्रति पत्र पंक्ति = ७
" " अक्षर—२०
आधार—कागज
प्रतिलिपि काल—वि० सं० १७७७
विशेष ज्ञातव्य—प्रतिपूर्ण है। मोटे अक्षर। काली स्याही का प्रयोग। प्रति सुवाच्य।

[५]

काव्य के प्रारम्भिक १० पद्यों में ईश्वर स्तुतिपरक मङ्गलगान प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् सृष्टिकाम भगवान् विष्णु द्वारा कमलनाल और उससे ब्रह्मा का प्रादुर्भाव चित्रित किया गया है। तत्पश्चात् त्रिजगत् विधान हेतु आदिष्टु ब्रह्मा द्वारा सृष्टि संरचना वर्णित है। इस क्रम में मरीचि से

---

१. भूमिका के प्रारंभिक आठ पृष्ठ मुद्रित होने के पश्चात् कवि माधवभट्ट के सम्बन्ध में उनकी वंशावली तथा उनके वंशधरों से जो शोध-सूत्र प्राप्त हुआ है उस आधार पर माधवभट्ट का सूरसिंह के ही काल में होना प्रमाणित हुआ है। इस समस्त सामग्री को परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

२. संस्कृत-प्राकृत सूची पत्र; भाग IX, पृ०, १६७।

३. प्रथम सर्ग के अन्त में सूरसिंह प्रकाश व तृतीय सर्ग के अन्त में सूर प्रकाश नाम से अभिहित किया है।

लेकर राजा बंभ तक विस्तृत वंशावली दी गई है। इस क्रम में कवि ने इन पौराणिक शासकों के जीवन एवं उनके द्वारा लड़े गये युद्धों का वर्णन करते हुए तत्कालीन प्रमुख घटनाओं का भी दिग्दर्शन कराया है। इस सर्ग में उल्लिखित राजाओं के नामों के आधार पर उनकी सामान्यत: वंशावली को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है –

श्री नारायण[1], ब्रह्मा[2], मरीचि[3], कश्यप[4], ब्रह्मा के अंगुष्ठ से कन्या[5], दक्ष[6], शत मरीचि[7], सूर्य[8], श्राद्धदेव[9], इक्ष्वाकु[10], विकुक्षि[11], वृषवर्म[12], अनेना[13], विश्वगंध[14], इन्द्र[15], युवनाश्व[16], शावस्त[17], बृहदश्व[18], कुवलयाश्व[19], नाम धुंधुमार[20], दृढाश्व[21], हरियश[22], निकुंभ[23], बर्हणाश्व[24], कृशाश्व[25], सेनजित्[26], युवनाश्व[27], मान्धाता[28], पुरुकुत्स[29], त्रिदश[30], अनरण्य[31], हर्यश्व[32], प्रणव[33], त्रिबंधन[34], सत्य व्रत[35], हरिश्चन्द्र[36], रोहिताश्व[37], हरित[38], चंप[39], सुदेव[40], विजय[41], भरुक[42], वृक[43], बाहुक[44], सगर[45], अजमंजस[46], अंशुमान[47], दिलीप[48], भगीरथ[49], श्रुत[50], नाभ[51], सिंधुद्वीप[52], अयुतायु[53], ऋतुपर्ण[54], सर्वकाम[55], सुदास[56], अश्मक[57], मूलक[58], पंक्तिरथ[59], एलविल[60], विश्वसह[61], खट्वांग[62], दीर्घबाहु[63], रघु[64], अज[65], पंक्तिरथ[66], रामचन्द्र[67], कुश[68], अतिथि[69], निषध[70], नल[71], पुंडरीक[72], क्षेमध्वनि[73], देवनीक[74], अहीन[75], पारियात्र[76], दलो[77], अर्क[78], वज्रनाभ[79], सगण[80], बृहत्[81], हिरण्यनाभ[82], पुष्य[83], ध्रुवसधि[84], भव[85], सुदर्शन[86], अग्निवर्ण[87], शीघ्र[88], मरु[89], प्रश्नयुत[90], सिंधु[91], अमर्षण[92], सहस्वान[93], प्रसेनजित[94], तक्षक[95], बृहद्दल[96], बृहद्रण[97], गुरुक्रिय[98], वत्सवृद्ध[99], प्रतिव्योम[100], भानु[101], विश्वक[102], वाहनीपति[103], सहदेव[104], वीर[105], बृहदश्व[106], भानुमान[107], प्रतीक[108], सुप्रतिकाश[109], मरुदेव[110], क्षत्र[111], पुष्कर[112], अंतरिक्ष[113], बृहद्भानु[114], बर्हि[115], कृतंजय[116], रणंजय[117], संजय[118]; श्राव[119], शुद्धोद[120], लांगल[121], प्रसेनजित[122], क्षुद्रक[123], रुणक[124], सुरथ[125], सुमित्र[126], वलि[127], ज्ञानपति[128], तुंगनाथ[129], भरत[130], पुञ्जराज[131], धर्म[132], बंभ[133]।

---

१. १/११; २. १/१२; ३. १/१४; ४. १/१४; ५. १/१५; ६. १/१५; ७. १/१६; ८. १/१७; ९. १/१८; १०. १/१८; ११. १/१८; १२. १/१९; १३. १/१९; १४. १/१९; १५. १/१९; १६. १/२०; १७. १/२०; १८. १/२१; १९: १/२१; २०. १/२१; २१. १/२२; २२. १२२; २३. १२२; २४. १/२२; २५. १/२२; २६. १/२२; २७. १/२३; २८. १/२३; २९. १/२३; ३०. १/२३; ३१. १/२३;

(शेष भाग १७२ पर)

बंभ वंशान्वययियों के क्रम में अजयचन्द्र, सुभटराज, विजयचन्द्र के वर्णन से द्वितोय सर्ग का समारम्भ किया गया है। दलपंगुनाम्ना[1] उपाधि से विभूषित कन्नौज नृप जयचन्द्र एक पराक्रमी एवं यशस्वी सम्राट् थे (५९-६०)। भूमण्डल के निखिल नृपगणों को स्वायत्त करने की महत्ती आकांक्षा से इन्होंने राजसूय-यज्ञ का समारम्भ किया था (६१) किन्तु इन्द्र-प्रस्थाधिपति पृथ्वीराज चौहान द्वारा उसे विफल कर दिया गया।

आरेभे राजसूयं स किल कलियुगे क्रूरकालेपि मत्वा
सर्व्वोर्वीशान्स्ववश्यान्निखिलवसुमतीमंडलाकृष्टलक्ष्मी:
इंद्रप्रस्थाधिपस्तं रुचिरमवसरं वीक्ष्य विख्यातवीर्य:
पृथ्वीराज समन्तात्सपाद विघटयामास देशानमुष्य ।।२-६२।।

उक्त घटना के पश्चात् जयचन्द्रनृप द्वारा संयोगिता स्वयम्वर का आयोजन एवं इन्द्रप्रस्थाधिप पृथ्वीराज द्वारा उसका बलपूर्वक अपहरण (६५), आयोजन में समागत समस्त नृपगणों की पृथ्वीराज के हाथों पराजय एवं सत्र समापन की घोषणा वर्णित है (६५)।

सम्राट् जयचन्द्र के ही तुल्य उसका पुत्र जयसेन हुआ और जयसेन के सीतराम नामक पुत्र हुआ।

तस्मादभूत्तादृश एव वीरो जेता रिपूणां जयसेन नाम ।
सुतस्तत: पूरितसर्वकाम: कामाभिराम: किल सितराम: ।।२-७०।।

(पृष्ठ ७१ का पादटिप्पणी का शेषांश)

३२. १/२४; ३३. १/२४; ३४. १/२४; ३५. १/२४; ३६. १/२४; ३७. १/२५; ३८. १/२५; ३९. १/२५; ४०. १/२५; ४१. १/२५ ४२. १/२५, ४३-४४. १/२५; ४५-४९. १/२६; ५०-५४. १/२८; ५५-५९. १/२९; ६०-६४. १/३०; ६५-६७. १/३२; ६८-७०. १/३४; ७१.७२. १३५; ७३-७८. १/३६; ७९ ८०. १/३७; ८१-८२. १/३८; ८३-८७. १/३९; ८८. १/४१; ८९ १/४२; ९०-९५. १/४२; ९६-१०२. १/४३; १०३-१०७. १/४४; १०८-११३. १/४५; ११४-१२१. १/४६; १२२-१२६. १/४७; १२७. १/४८; १२८. १/५०; १२९. १/५०; १३०. १/५१; १३१. १/५६; १३२. १/५७; १३३. १५७।

---

१. बांकीदास री ख्यात; राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला; पत्र सं० ३, मारवाड़ का इतिहास, विश्वेश्वरनाथ रेऊ, भाग १, पत्र सं०-३१।

बांकीदास[1], नैणसी की ख्यात[2] एवं राठौड़ां री वंशावली[3] में जयसेन-नामा जयचन्द्रात्मज का उल्लेख नहीं है। नैणसी एवं बांकीदास के अनुसार जयचन्द्र के पुत्र का नाम वरदायीसेन था। १६५० ई० के तत्कालीन बीकानेर नरेश रायसिंह[4] के एक लेख में विजयचन्द्र से पूर्व की पीढ़ियों का उल्लेख है। तदनुसार विजयचन्द्र, जयचन्द्र, वरदायीसेन, सीतराम और सीहाजी के नाम मिलते हैं। इतिहास के ग्रन्थों एवं स्वयं जयचन्द्र के ताम्रपत्रों में जयचन्द्र के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र वर्णित है। इतिहासकारों में हरिश्चन्द्र एवं वरदायी सेन के विषय में विवाद है। या तो वरदायी सेन[5] हरिश्चन्द्र की उपाधि थी अथवा दोनों भाई थे। जयसेन का उल्लेख प्रस्तुत प्रशस्ति के अलावा अन्यत्र नहीं मिला है।

सीतराम का पुत्र सीहा[6] (७१) सिंह के समान पराक्रमी था। राव सीहा ने कांची, द्वारका, हरिद्वार आदि पावन तीर्थ-स्थानों की यात्रा की थी। यात्रा के बाद पाटण के राजा मूलराज सोलंकी के यहां आतिथ्य स्वीकार किया और उसके अनुरोध करने पर जाडेचान्वयज लाखा[7] का वध किया। (७३) लाखा खेडकोट का राजा था। उसने काठियों को दबाकर काठियावाड़ के कुछ भाग पर कब्जा कर लिया था। लाखा-वध की घटना के बारे में इति-

---

१. बांकीदास की ख्यात—राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, २१, पत्र १०। [बांकीदास के अनुसार वंशक्रम में विजयचंद-जयचंद-वरदायीसेन सेन-सेतराम-सीहा]।

२. नैणसी की ख्यात, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला; भाग ३, पृ० १८०।

३ राठौडां री वंशावली, ६३, राज० पुरातन ग्रंथमाला, पत्र सं० ३०।

४. तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचंद्रस्ततोऽभवत्।
वरदायीसेन नामा तत्पुरुषोऽतुल विक्रमः॥

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, १६२०, भाग १६, पृ० २७६।

५. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ३२।

६. रेऊ-मारवाड़ के इतिहास में सीहा को सीतराम का भाई मानते हैं। भाग १, (पृ० ३२)।

७. कच्छा के जाडेचान्वय नरेशों में लाखा नाम के तीन व्यक्ति मिलते हैं। डफ की क्रॉनॉलॉजी ऑफ इण्डिया द्रष्टव्य। कहीं पर इसकी मृत्यु इसके जामाता के हाथ से होना और कहीं पर मूलजी बाघेला के हाथ से, कहीं पर सीहाजी के द्वारा मारा जाना लिखा है। परन्तु इसके समय के बारे में काफी विवाद है (पृ० २६०, २१५-२१६)।

हासकारों में मतैक्य नहीं है । हेमचन्द्र[1] के 'द्वयाश्रय काव्य के पञ्चम सर्ग के अनुसार सोलंकी राजा मूलराज प्रथम ने कच्छ के राजा लाखा को मार डाला । सांभर[2] से प्राप्त सोलंकियों के एक शिलालेख के अनुसार मूलराज ई० सन् ९९४ तक जीवित था । सीहाजी[3] का काल ई० सन् १२१२-७३ है; अतः सीहाजी के द्वारा लाखा का वध सम्भव प्रतीत नहीं होता है ।

जब वि० सं० १२५३ में मुसलमानों के आक्रमण से कन्नौज का राज्य जाता रहा तो सेतराम और सीहाजी (खोर) शम्साबाद की तरफ चले गये और कुछ दिन महुई[4] में रहे । यहां मुसलमानों का उपद्रव होने पर मारवाड़ की तरफ आ गये । अधिकांश इतिहासकार सीहाजी[5] का मारवाड़ आने का समय वि० सं० १२६८ (ई० सन् १२१२) के करीब मानते हैं । मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि० सं० १२१२ में मारवाड़ आना लिखा है। कन्नौजपति जयचन्द्र की मृत्यु वि० सं० १२५० में हो गई थी । अतः सीहाजी के मारवाड़ आगमन को वि० सं० १२५० के बाद ही मानना पड़ेगा । पाली में सीहा का मृत्यु-स्मारक विद्यमान है, जिससे वि० सं० १३३० में उनकी मृत्यु की पुष्टि होती है ।

राव सीहा के तीन पुत्र थे—आस्थान, सोनग और अज (७५) ।[6] इनके

---

१. यह काव्य ई० सन् ११७६ के करीब विरचित है ।
'कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट् ।।१२७।।

२. वसुनन्दनिधौ बर्षे व्यतीते विक्रमार्कतः
मूलदेवनरेशस्तु चूडामणिरभूद् भुवि ।।१।।

३. आईने अकबरी के अनुसार मोइज़ुद्दीन साम (गोरी) ने जब रायपिथौरा की लड़ाई से फुरसत पाई तब वह कन्नौज के राजा जयचन्द के मुकाबले के लिये चल पड़ा । जयचंद हारकर भागा और गंगा नदी में डूब कर मर गया । उसका भतीजा सीहा, जो शम्साबाद में रहता था, बहुत से आदमियों के साथ मारा गया (भाग २, पृ० २०७) (यह वर्णन ठीक प्रतीत नहीं होता है) ।

४. महुई गांव फर्रुखाबाद जिले में है । वहां पर काली नदी के किनारे सीहाजी के निवास स्थान के खण्डहर अब तक विद्यमान हैं । लोग उन्हें आज भी सीहा राव का खेड़ा नाम से पुकारते हैं । (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ३२)

५. एनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान—भाग २, पृ० ९४० ।
कनिंघम—आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, भाग ११, पृ० १२३ ।

६. मारवाड़ का इतिहास—रेऊ, भाग १, पृ० ३३ ।
मारवाड़ का इतिहास—रेऊ, भाग १, पृ० ४ ।

भीम नाम का एक चौथा पुत्र था। आसथान का जन्म १२१२ ई० में हुआ था। इन्होंने डाभी राजपूतों को अपनी ओर मिलाकर (७५) गुहिल क्षत्रियों से खेड का राज्य छीन लिया था।

खेडनगर में पहले-पहल अपनी राजधानी बनाने के कारण इनके वंशज खेड़ेचा (७५) कहलाने लगे। कुछ समय के बाद आसथान ने ईडर के राजा का वध कर अपने भाई सोनग को वह राज्य प्रदान (७५) किया। अज ने ओखा-मंडल (शंखोद्धार-द्वारका) के स्वामी चावड़ा भोजराज को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

आसथान[1] के ८ पुत्र थे। ई० सन् १२९१-९२ में धूहड़ का राज्याभिषेक किया गया। इन्होंने कर्णाटक प्रदेश से अपनी इष्टदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाकर नागाणा[2] नामक गांव में (७६) स्थापित की। तभी से इस देवी का नाम नागणेची[3] प्रसिद्ध हुआ। कर्नल टॉड[4] के अनुसार भी यह मूर्ति कर्णाटक में थी।

आस्थानोर्व्वीधारिणो धूहडोऽभूत्
कार्णाटेभ्यश्चक्रदेवी स्वत्रास।
नागाणं यत्पत्तने तेन नीता
नागाणेची गीयते तेन लोकैः ।।२-७६।।

कुछ ख्यातो में इस मूर्ति का कल्याणी (दक्षिणी कोंकन) से लाया जाना लिखा है।

जयचन्द ने जब चित्तौड़ विजय किया था तब वहां भी अपनी कुलदेवी[5] का (नागाणेची) मन्दिर बनवाया था। इनके (धूहड़जी) ज्येष्ठ पुत्र रायपाल

---

१. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ४५।
२. यह गाँव खेड से १० कोस की दूरी पर है।
३. जोधाजी के ताम्रपत्र की नकल से प्रकट होता है कि राव धूहड़जी के समय लुंब ऋषि नामक सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज से राठौड़ों की कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लेकर मारवाड़ आया था। इसके बाद उक्त देवी ने राव धूहड़जी को नाग के रूप में दर्शन देकर वर दिया, तब से वह नागनेचियाँ नाम से प्रसिद्ध हुई।
(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ४७)
४. एनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृ० ९४३।
५. रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग १. पृ० ४६।

थे जो अन्नसत्र में रंतिदेव के सदृश थे। इन्हें 'महीरेल्लण' (इन्द्र) नाम से भी पुकारा जाता था (७७-७९) कहते हैं कि—एक समय राज्य में अकाल पड़ने पर इन्होंने राजकीय भण्डार से अनाज वितरण किया। इन्होंने भाटी यादव चन्द[1] को बहुत-सा द्रव्य लेकर अपना चारण बनाया था।

इसके बाद वह्नि के समान तेजस्वी कन्हड़ (१३१३-१३२३ ई० सन्) और उनके बाद सत्यवक्ता जालणसाजी (१३२३-१३२८ ई०) हुये। अपने पिता की आज्ञा का पालन कर इन्होंने परमारवंशी सोढों को दण्ड दिया (८०-८३)। रवेड़ में घटी एक साधारण घटना के कारण इनका सोढों के साथ युद्ध हुआ। इन्होंने चाँदणी गाँव के एक वृक्ष के फल, पत्र, आदि तोड़ने की मनाही कर रखी थी। सोढ़ों ने इसका उल्लंघन किया अत: दण्ड के रूप में उनका सर्वस्व छीन लिया। इसके बाद अग्नि के समान तेजस्वी एवं पिता की आज्ञा का पालन करने वाला छाडा[2] (१३२८-४४ ई०) हुआ। इन्होंने भी परमार वंशी सोढ़ों को पराजित किया। (८३) इसके अलावा इन्होंने जैसलमेर के भाटियों को पराजित कर उनकी कन्या से विवाह किया था। इनके सात पुत्रों में तीड़ा (१३४४-१३५७) ज्येष्ठ थे। इन्होंने स्वर्णगिरीश्वर सामंतसिंह को युद्ध में (८४) पराजित किया था। तीड़ा के तीन पुत्र थे—(१) कान्हड़देव, (२) त्रिभुवनसी और (३) सलखा। सलखा के चार पुत्र थे (८५)—(१) मल्लदेव, (२) जैत्रमल्ल, (३) वीरमजी (४) शोभित। सिवाना के शासक (८६) वीरमदेव मल्लदेव के छोटे भाई थे। जोद्रक राजा को पराजित करने गये व वडेरणीन्द्र को मारा एवं इस युद्ध में वे स्वयं भी मारे गये (८६)। यहां वडेरणीन्द्र एवं जोद्रकराज संभवत: दोनों एक ही व्यक्ति को परिलक्षित करते हैं। इनके पाँच पुत्र थे।

---

१. यह मांगा की चारण जाति की स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ था। इसके वंशज रोहड़िया बारहठ कहलाते हैं। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ४८)

२. राव जालणसाजी को पराजित सोढ़ों ने कुछ घोड़े भेट देने का वायदा किया था, किन्तु राव जालणसाजी की मृत्यु तक वह वायदा पूरा नहीं किया। कहते हैं कि अपने स्वर्गवास के समय रावजी ने अपने राजकुमार को इस भेंट को वसूल करने की खास हिदायत दी थी। अपने पिता की अन्तिम आज्ञानुसार इन्होंने सोढ़ा दुर्जनसाल पर चढ़ाई कर उसे अपने पहले किये गये वायदे से चौगुने घोड़े देने को बाध्य किया था। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ५०)

राव चूंडा (ई० सं० १३९४-१४२४) वीरमजी[1] के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म ई० सन् १३७७ में हुआ था।

इन्होंने मंडोवर[2] के नागवंशीय राजाओं को अपनी छल-बल नीति से समाप्त कर दिया (९०)। इनकी मृत्यु वि० सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में नागोर में भाटियों के साथ युद्ध में हुई थी। इनके १४ पुत्र थे।

---

१. बादशाही सेना के बार-बार पीछा किये जाने पर ये जोहियावाटी में जोहियों के पास जा रहे थे। जोहियों के मुखिया दल ने इनकी पहले दी गयी सहायता का स्मरण कर इनके सत्कार का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया। परन्तु, कुछ ही दिनों में इनके व जोहियों के बीच झगड़ा हो गया। उस युद्ध में ई० सन् १३८३ में ये लखबेरा गांव के पास वीरगति को प्राप्त हुए। रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ५६; वीरमजी जोइयां सूं झगड़ो कर काम, आया जोईयावाटी में। बांकीदास री ख्यात, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, पृ० ६; नैणसी की ख्यात भाग २, पृ० ३०४; जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ० ११३; वीरवांण, नं० ३३ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर पृ० १८।

२. उस समय मंडोर के राज्य में २४२ गांव थे। इनमें ८४ पर ईंदा पड़िहारों का; ८४ पर बालेसों का, ८४ पर असायचों का, ५५ पर मागलियों का और ३५ पर काटेचों का अधिकार था।

२. उस समय मंडोर पर मांडू के सूबेदार का अधिकार था। एक बार सूबेदार के एक अधिकारी ने पड़िहार राजपूतों से घोड़ों के लिये घास भेजने को कहलाया। ईंदों ने घास की १०० गाड़ियों में योद्धा छिपाकर भिजवा दिये। किले पहुंचने पर इन योद्धाओं ने उपस्थित सभी यवन-सैनिकों को मार डाला। इस युद्ध में चूंडाजी के भी आदमी थे। किले पर अधिकार करने के बावजूद पड़िहारों के लिये यवन-सेना से मुकाबला करना संभव नहीं था; अतः उन्होंने अपने मुखिया उगमसी की पोती चूंडाजी को व्याही और उसके दहेज में मंडोर का किला प्रदान कर दिया।

इस आशय का सोरठा मारवाड़ में प्रसिद्ध है।

ईंदारों उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
चूंडो चंवरी चाढ़, दी मंडोवर दायजे।

रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ६१

२. कर्नल टॉड ने चूंडाजी का पड़िहार नरेश को मारकर मंडोर पर अधिकार करना लिखा है (एनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, क्रुक संपादित) भाग १, पृ० १२०, भाग २, पृ० ९४४।

राव चूंडाजी के निधन के बाद राव कान्हाजी ज्येष्ठ न होते हुये भी उत्तराधिकारी बनाये गये। इनका जन्म ई० सन् १४०८ में हुआ था। राव कान्हाजी की मृत्यु के समय रिणमल्लजी के मेवाड़ में होने के कारण मंडोर की गद्दी राव सत्ताजो को दी गई थी। प्रशस्तिकार ने इन दोनों नरेशों का वर्णन नहीं किया है।

राव रिणमल्लजी (१४२८-१४३८ ई.) मारवाड़ नरेश चूंडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म ई० सन् १३९२ में हुआ था। इन्होंने स्वर्णगिरीश के वंशजों में से सैंकड़ों राजाओं को मारकर भावी बदनामी के भय से कूप में डाल दिया (९१)। इन्होंने आक्रमण करके लौटते हुये फीरोजखान[1] को पराजित किया तथा उसके अनुज महमूद[2] को मार डाला (९२)। भाटी राजाओं[3] को पराजित करने के बाद जब उनका वध किया जाने लगा तो अनुनय-विनय एवं क्षमा मांगने के बाद राव रिणमल्लजी ने करुणार्द्र होकर उनको छोड़ दिया।

चाचा[4] और मेरा के द्वारा निष्कलंक मोकल के मारे जाने पर राव

---

१. (अ) जिस समय मोकलजी ने नागौर के शासक फीरोज खाँ पर चढ़ाई की, उस समय राव रिणमल्लजी उनके साथ थे।

(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ७४)

(ब) ख्यातों में राव रिणमल्ल का इस समय नागौर पर अधिकार करना लिखा है।

२. यह गुजरात के शासक अहमदशाह का पुत्र था।

(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ७४)

३. राव चूंडाजी को मारने में जैसलमेर के भाटियों का भी हाथ था। इसका बदला लेने रिणमल्लजी ने उनके प्रदेशों को लूटना प्रारम्भ किया। वहां के रावल लक्ष्मण घबरा गये और उन्होंने दंड के रुपये देकर सन्धि कर ली। ई० सन् १४३० में राव रिणमल्लजी ने एक बार फिर जैसलमेर पर चढ़ाई की। इस पर वहां के महारावल लक्ष्मणजी ने एक चारण के द्वारा सन्धि प्रस्ताव भेजा और अपनी कन्या ब्याह दी। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० ७५)

४. ई० सन् १४३३ में मेवाड़-नरेश मोकलजी को उनके दादा महाराणा खेताजी की पासवान के पुत्र चाचा और मेरा ने मदारिया नामक स्थान पर मार डाला और चित्तौड़ के किले को घेर लिया। इस घटना की सूचना मिलने पर राव रिणमल्लजी ५०० वीरों के साथ मेवाड़ पहुंचे। उनके आने की सूचना मिलने पर चाचा और मेरा पाई कोटड़ा की पहाड़ियों में जा छिपे। ६ मास घेरा डालने के के बाद राव रिणमल्ल ने चाचा और मेरी को उनके साथियों सहित मार डाला।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ७६)

रिणमल्ल[1] ने दोनों को मारने की प्रतिज्ञा की और पर्वतों की गुफाओं में छिप जाने पर भी उनको ढूंढकर मारा और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य किया (९५)।

राव रिणमल्ल के अखैराज, जोधा, ऊदा, डूंगरसी, लाखा, मण्डल, माण्डल, करण, रूपा, चांपा, पाता, वालो, कांधल, सायर सभी पुत्र थे (९६)।

मोकलजी के पुत्र राणा कुंभकर्ण ने रात्रि में शयन करते हुये राव रिणमल्ल का वध कर दिया।

राव रिणमल्ल[2] के पुत्र जोधा को मेवाड़ छोड़कर इसी दुःख के कारण जगह-जगह भटकना पड़ा (९७)।

---

१. ख्यातों में लिखा है कि राव रिणमल्लजी ने मोकलजी के मारे जाने का समाचार सुनकर अपने सिर से पगड़ी उतारकर साफा बांध लिया था, और प्रतिज्ञा की थी कि जब तक हत्यारों को दण्ड न दूंगा, तब तक पगड़ी नहीं बांधूंगा।

२. राव रिणमल्ल के बढ़ते प्रभाव के कारण मेवाड़ के कुछ लोग इनसे नाराज रहने लगे। उन्हीं दिनों में मोकलजी के हत्यारे चाचा का पुत्र आका और पंवार महपा मेवाड़ लौट आए और रिणमल्लजी के विरोध करने पर भी लोगों के आग्रह से, महाराणा कुम्भा ने उनके अपराध क्षमा कर दिये। इसके बाद एक दिन महपा ने, रिणमल्लजी के मेवाड़ राज्य को दबा देने का भय दिखलाकर कुम्भा को भड़काया। युक्ति व्यर्थ जाने पर पुनः एक दिन महाराणा के पैर दबाते हुये रोने लगा। पूछे जाने पर उसने कहा कि राव रिणमल्लजी के मेवाड़ राज्य पर अधिकार कर बैठने के गुप्त षड्यन्त्र पर आपका ध्यान न देखकर मातृ-भूमि के दुःख से मेरे आँसू निकल पड़े हैं। यह सुनकर महाराणा कुम्भा उसके बहकावे में आ गये। उन्होंने राव रिणमल्लजी को धोखे से मारने की आज्ञा दे दी। जब इस षड्यन्त्र की भनक रिणमल्लजी को मिली तो उन्होंने जोधा आदि को बुलाकर सारी बातें बतला दीं। ई० सं० १४३८ की रात को बेखबर सोते हुए राव रिणमल्लजी को पलंग से बांधकर इनका वध कर डाला।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ०-७८)

२. वीर विनोद में इस घटना का १४४३ ई० सन् में होना लिखा है।

२. सूर्यमल्लजी मिश्रण ने राव रिणमल्ल का मोकल के समय मारा जाना लिखा है। (वंश-भास्कर, भाग-३, पृ० १८७२) (यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती है)।

२. कर्नल टॉड ने भी मोकल के समय राव रिणमल्लजी का मारा जाना लिखा हैं। (ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान भाग-१ पृ० ३३२)

राव जोधा (१४५३-१४८९ ई० सन्) राव रिणमल्लजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म ई० सन् १४१५ में हुआ था। ये बड़े वीर एवं यशस्वी राजा थे। इन्होंने बहलोल के भाई सारंग खाँ को घोर युद्ध में मार डाला[1] :—

क्रोधाज्जूणपुरान्निवृत्य सहसा सारंगखानं निजं
भ्रातारं बहलोलसाहिरहितं तं हंतुमायोजयत् ।
योधायोधवरोयुधायुधधरैर्यु ध्यंतमेनं बलात्
विक्रम्य व्यवधीद्यथा मृगपतिर्मत्तंमहावारणं ।।१०१।।

जोधा ने इससे पूर्व पितृ-श्राद्ध के कार्यार्थ गया[2] की यात्रा की। दिल्लीश्वर से अभय प्राप्त करके गया में लगने वाला यात्रीकर माफ करवाया। घोसुंडी[3] (मेवाड़) से प्राप्त महाराणा रायमल्ल के वि० सं० १५६१ (ई० १५०४) के लेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

---

१. (अ) उस समय हिसार पर बहलोल लोदी का अधिकार था और सारंग खाँ उसकी तरफ से प्रदेश की देखभाल करता था। जोधा का भाई कांधल सारंग खाँ के हाथों मारा गया। तब जोधाजी एवं बीकाजी ने आक्रमण करके सारंग खाँ को युद्ध में मार डाला।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृष्ठ १०१)

२. (ब) जोधपुर बसायां पछे गया री जात्रा नूं चढ़िया। मारग में जहानापुर रो मालक आय मिलियो, रावजी ऊणरी मदद किवी।

बांकीदास री ख्यात-पृष्ठ ७ (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

२. ई० सन् १४६१ में राव जोधाजी ने गया की यात्रा की। उस समय मार्ग में आगरा पहुँचने पर राठौड़ कर्ण ने इन्हें बादशाह से मिलवाया। बाद में बादशाह को समय पर सहायता देने का वायदा कर यात्रियों पर लगने वाला शाही कर माफ करवा दिया।

(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृष्ठ १७)

३. "श्री योधक्षितिरुग्र खड्गधारा
निर्घातप्रहतपठाणपारशक्तिः ।।५।।"

पूर्वानतार्प्सादगयया विमुक्तया
काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ।।"

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग, ५६, अंक १, नं० २)

इसके आगे राव जोधा द्वारा जोधपुर[1] दुर्ग एवं नगर की स्थापना एवं जोधपुर की ललनाओं की मनोभिराम झांकी प्रस्तुत की गई है (१०२-१०४)।

राव जोधाजी[2] के २० पुत्र थे। प्रशस्तिकार ने जोधा के पुत्रों में—सूजा, विक्रम, वरसिंह, दूदा, रायपाल, कर्मसिंह, वणवीर, शिवराज, नींबा, बीदा, सामंतसिंह, भारमल्ल इत्यादि नामों का वर्णन करते हुये सूजा[3] का जोधपुर के सिंहासन पर राज्यासीन होना लिखा है। (१०५-१०७)।

इसी क्रम को भंग करते हुये बीकाजी द्वारा सुन्दर भवनों वाले बीकानेर नगर की स्थापना के बाद मेड़ता के राजा दूदा के पराक्रम एवं उनकी दानशीलता का वर्णन किया है (१०८)।

क्षमावान् खींवसरेश्वर रायपाल हुये जिन्होंने अपने वीरों के साथ दुष्टों को समाप्त कर दिया (१०९)। शिवराज एवं सामंतसिंह के राज्यों के वर्णन के साथ द्रोणपुरेश्वर वीदा एवं वीडालसंज्ञपुर के राजा भारमल्ल की कीर्ति गाई गई है (११०)।

जोधपुर-नृप सूजा के बाद उसका पुत्र वाघा हुआ जो सूर्य के समान तेजस्वी था।[4] बाघा के पश्चात् गांगेयवत् कीर्ति वाला गांगा (१५१५-

---

१. नैणसी री ख्यात, जि० २, पृ० १३१; जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ४६; दयालदास की ख्यात, जि० १, पृ० १०६; वीर विनोद भाग-२, पृ० ८०६; ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-१, पृ० २४१।

२. रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० १०३।

३. राव जोधा के ज्येष्ठ पुत्र नींबा की असामयिक मृत्यु से द्वितीय पुत्र जोगा गद्दी का अधिकारी बना था, लेकिन राजतिलक के समय तक वह नहाने धोने से ही निवृत्त नहीं हो सका; अतः सातल को गद्दी दे दी गई।

(रेऊ, मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० १०४)

(प्रशस्तिकार का वर्णन सही नहीं है)

४. राजकुमार बाघाजी की इच्छानुसार उनके छोटे भाई शेखा ने अपना हक छोड़ अपने भतीजे वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की अनुमति दी थी। परन्तु सरदारों ने चुपचाप गांगाजी को गद्दी पर बैठा दिया। इससे शेखा गांगाजी से नाराज हो गया।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० ११३)

१५३२) हुआ जो बड़ा पराक्रमी एवं धनुर्धारी था। मुसलमानों[1] की भारी सेना को इन्होंने पूर्व में महाबली अर्जुन के भगदत्तकुंजर के दो टुकड़े करने के समान ही कीर्तिशेष कर दिया (११५)।

इसके पश्चात् गांगाजी के ज्येष्ठ पुत्र राव मालदेव (१५३२-१५६२ ई० अपने पिता की मृत्यु के बाद ई० सन् १५३१ में सोजत में गद्दी पर बैठ।

राजा मालदेव ने अपने बल से पृथ्वी के कई सामन्त और राजाओं को अपने बस में कर लिया और अपनी राज्य-सीमाओं[2] का भारी विस्तार कर लिया। मालदेव प्रजा हेतु पिता के समान, कविजनों के लिये कल्पवृक्ष के समान, शत्रुओं के लिये (१६-१६) काल के समान थे।

राव बीका[3] का जन्म जोधपुर के स्वामी राव जोधा की सांखली रानी नौरंगदे से ई० सन् १४३८ में हुआ था। राव बीका के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा[4] कुछ मास शासन करने के बाद ई० सन् १५०५ में मर गया। राव नरा के पश्चात् ई० सन् १४७० में राव लूणकर्ण का जन्म और ई० सन् १५०५

---

१. सम्भवतः प्रशस्तिकार का संकेत सेवकी गांव वाले युद्ध की तरफ है जिसमें नागोर के शासक खांजादा दौलतखां की सहायता से शेखा ने हमला किया था। इस युद्ध में शेखा मारा गया और दौलतखां पराजित होकर भाग गया था। यह घटना ई० सन् १५२६ की है।

२. हालांकि प्रशस्तिकार ने मालदेव के जीवन की विभिन्न विजयपरक घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है फिर भी मालदेव द्वारा सीमा-विस्तार का जो चित्र कवि ने खींचा है वह सही है। वास्तव में राव मालदेव ने अपने जीवन में ५२ युद्ध करके छोटे-बड़े ५८ परगनों पर अधिकार कर लिया था। यही कारण है कि फारसी तवारीखों ने मालदेव के शौर्य एवं सीमा-विस्तार की भारी प्रशंसा की है। उनमें आईने अकबरी, अकबरनामा, तबकाते अकबरी, फरिश्ता, तुजुक जहांगिरी, मुन्तखबुल्लुबाब, म-आसिर-उल-उमरा इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

३. (क) दयालदास की ख्यात, जिल्द-२, पत्र १। (ख) मुंशी देवी प्रसाद, राव बीकाजी का जीवन-चरित्र, पृ० १। (ग) वीरविनोद भाग २, पृ० ४७८। (घ) देशदर्पण पृ० २३। (ङ) पाउलेट गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृ० १।

४. नरा का प्रशस्तिकार ने उल्लेख नहीं किया है।

को वह बीकानेर को गद्दी पर बैठा ।[१] तत्पश्चात् जैत्रसिंह[२], कल्याणमल्ल[३], रायसिंह[४] हुये । रायसिंह के तीन[५] भ्राता थे जिनके नाम क्रमशः—रामसिंह, सुरत्राण और पृथ्वीराज ने अकबर-नृपति से गागरोन[६] का किला प्राप्त किया था । खीचियों को युद्ध में पराजित किया था (१२२) ।

जोधपुर के शासक राव जोधा के अन्य भाइयों में राव दूदा (१५१५-१५४४ ई०) ने मेड़ता नगर को अपनी राजधानी बनाया था । दूदा भी बड़ा पराक्रमी था । उसने कुतुबखान को वक्ष चीर कर मार डाला तथा शिरिया-खान का भी वध कर डाला । उसके अनेकों पुत्रों में कन्दर्पवत् सुन्दर महा-धार्मिक राजा वीरमदेव (१५१५-४४ ई०) हुआ जिसने भरत के समान भ्रातृत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया (२५-२६) ।

वीरमदेव का पुत्र जयमाल (१५४४-६८ ई०) बड़ा पराक्रमी था । रण-मंडल में जयश्री हमेशा उसका वरण करने को उत्सुक रहती थी । उसका चरित्र भीष्म युधिष्ठिरादि के समान ही स्मरणीय रहेगा । इसकी वीरता को

---

१. (क) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र ७ । (ख) मुंशीदेवी प्रसाद, राव लूणकर्ण का जीवन चरित्र; पृ०-४८ । (ग) वीरविनोद, भाग-२, पृ०-४८१ ।

२. राव जैतसी का जन्म ई० सन् १४८९ में हुआ था । (क) दयालदास की ख्यात पृष्ठ ९ । (ख) मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसी का जीवन चरित्र पृ० ६१ । (ग) वीरविनोद भाग-२, पृ० ४८२ । (घ) पाउलेट, गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट पृ० १२ ।

३. राव जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र राव कल्याणमल्ल का जन्म ई० सन् १५१९ में हुआ था । राव जैतसी को मारकर बीकानेर पर राव मालदेव ने अधिकार कर लिया था । (क) दयालदास की ख्यात जिल्द २, पृ० १६ । (ख) वीरविनोद भाग-२, पृ० ४८४ । (ग) मुंशीदेवी प्रसाद, राव कल्याणमल्लजी का जीवन-चरित्र, पृ० ८२ ।

४. रायसिंह ई० सन् १५७४ में बीकानेर का स्वामी हुआ । (क) नैणसी री ख्यात, जिल्द २, पृ० १९९ । (ख) टॉड राजस्थान जिल्द २, पृ० ११३२ ।

५. राव कल्याणमल्ल के १० पुत्र हुए थे । जिनके नाम—रायसिंह, रामसिंह, पृथ्वीराज, अमरसिंह, भाण, सुरताण, सारंगदेव, भाखरसी, गोपालसिंह, राघवदास । (क) दयालदास की ख्यात जिल्द २, पत्र २२-२३ । (ख) वीरविनोद भाग-२, पृ० ४८५ । (ग) मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमल्लजी का जीवन चरित्र पृ० १०८ । (घ) पाउलेट गजेटियर ऑफ बीकानेर स्टेट, पृ० २४ ।

६. नैणसी री ख्यात, भाग-१, पृ० १८८ ।

देखकर अकवर नृपति ने आगरा नगर के राजद्वार पर उसकी मूर्ति स्थापित की थी (१२७-२८)। इसके चतुर्दश पुत्रों का वर्णन निम्न प्रकार से है— (१) सुरतांण (२) शार्दूल (३) केशवदास (४) कल्याणदास (५) माधवदास (६) गोविन्ददास (७) रामदास (८) नारायण (९) विठ्ठलदास (१०) नृसिंह (११) हरिदास (१२) मुकुन्द (१३) श्यामदास (१४) द्वारकादास (१२९-१३१)।

राव मालदेव[1] के वाद उनके गुणाभिराम पुत्र राम एवं वाद में उदयसिंह हुये। तत्पश्चात् रत्नसिंह और चन्द्रसेन हुये (वि० सं० १६१९-१६३७)। राव मालदेव ने उदयसिंह के छोटे भाई चन्द्रसेन को अपनी पत्नी के कहने में आकर मारवाड़ का राज्य प्रदान कर दिया। (३२-३५)।

दशरथ इव मालदेनृदेवो मृगनयनावशवर्त्तितामुपेत्य ।
फलविधिपुं नियोजयाञ्चकारोदयनृपमग्रजनि तनूजरत्नम् ।।३५।।

राव मालदेव के निधन के वाद उदयसिंह[2] और राम[3] दोनों ने चन्द्रसेन पर हमला किया। चन्द्रसेन ने राव राम से सन्धि कर ली और उदयसिंह से युद्ध किया। जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ वहाँ पर भारी मात्रा में खून बहाया गया। तव से वह स्थान लोहावट नाम से प्रसिद्ध हुआ। युद्ध में दोनों भाई मूर्च्छित हो गये और वड़ो मुश्किल से किसी तरह जीवित बच गये (३६-४४)। तत्पश्चात् यवनाधिनाथ[4] से संधि करके उदयसिंह ने आक्रमण करके जोधपुर अपने वश में कर लिया (४८)।

---

१. राव मालदेव के २२ पुत्र थे। प्रशस्तिकार ने सबका विवरण नहीं दिया है।

२. राव उदयसिंह के अचानक गांगाणी और वावड़ी पर अधिकार करने से यह युद्ध हुआ था। सेनाओं का आमना-सामना लोहावट में हुआ था। विजय चन्द्रसेनजी के हाथ रही थी।
(रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १४८)

३. ख्यातों में लिखा है कि ई० सन् १५६३ में राव चन्द्रसेन ने अपने भाई राम पर चढ़ाई की थी। पहले राम ने मुकावला किया फिर विजय की आशा न देखकर नागोर के हाकिम हुसेनकुली बेग के पास चला गया। दोनों ने संयुक्तरूपेण जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में रामसिंह को सोजत का परगना व हुसेनकुली को सारा खर्च देकर चन्द्रसेनजी ने संधि कर ली।

४. ई० सन् १५६४ में रामसिह ने अकवर की सहायता से मुजफ्फरखां को लेकर जोधपुर पर आक्रमण किया और कई महीनों के घेरे के वाद किले पर कब्जा कर लिया। (क) रेऊ, मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० १५०; राठौड़वंश री विगत, पृ० १३। (ख) अकवर नामा; भाग-२, पृ० १९७।

मारवाड़-नरेश राव चन्द्रसेनजी के तीन पुत्र थे—(१) रायसिंह (२) उग्रसेन (३) आसकरण। जब राव चन्द्रसेन की मृत्यु हुई तो रायसिंहजी काबुल में तथा उग्रसेनजी बूंदी में थे; अतः आसकरणजी को गद्दी प्रदान की गई। उग्रसेन के लौटने पर सरदारों ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। कहते हैं कि एक बार दोनों[1] भाई चौसर खेलते हुये आपस में लड़कर मर गये (१५६)।

इसके बाद रायसिंहजी (१५८२ ई०) गद्दी पर बैठे और अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली (१५७)। तत्पश्चात् इन्हें जगमाल की सहायता हेतु अकबर ने भेजा। ये अर्बुदाधीश्वर के हाथों रणक्षेत्र में मारे गये।[2] (१५७-१५८)।

इसके बाद बादशाह अकबर द्वारा उदयसिंह (१५८३-१५९५ ई०) को मारवाड़ राज्य की गद्दी सौंपना एवं उदयसिंह द्वारा अपने भतीजे के वध का बदला लेने हेतु अर्बुदेश्वर राव सुरतांण पर चढ़ाई का वर्णन है, जिसमें राव सुरतांण ने दण्ड के रुपये देकर उदयसिंह से सन्धि कर ली थी।[3] (१६१-१६५)।

---

१. चौसर खेलते समय दोनों भाइयों में हार-जीत के विषय में संघर्ष हो गया। क्रुद्ध होकर उग्रसेनजी ने अपनी कटार आसकरणजी के छाती में घुसेड़ दी। परन्तु राव आसकरणजी के सरदार शेरवा ने, जो वहीं बैठा था, जब अपने स्वामी की यह दशा देखी, तब वही कटार उग्रसेनजी की छाती में घुसेड़ दी। इस तरह से दोनों भाई एक ही दिन स्वर्ग सिधार गये। यह घटना ई० सन् १५८१ की है।
(रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १६७)

२. मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा प्रताप का भाई जगमाल अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुका था। शाही सेना भेजकर बादशाह ने देवड़ा सुरतांण को हटाने एवं सिरोही का अधिकार जगमाल को दिलाने हेतु कार्यवाही की। फलस्वरूप सुरतांण भाग गया और सिरोही पर जगमाल का कब्जा हो गया। किन्तु एक रात जगमाल और रायसिंहजी दताणी गांव के मुकाम पर बेखबर सोये हुये थे, तब सुरतांण ने अचानक हमला कर दिया। बिना शस्त्र के होने के कारण ये दोनों वीर रणक्षेत्र में मारे गये।
(क) (रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० १६८)
(ख) अकबरनामा, भाग-३, पृ० ४१३)

३. (क) अकबर नामा दफ्तर ३, पृ० ४३६-४३७
(ख) बांकीदास री ख्यात, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ० २२

महाराजा शूरसिंह (१५९५-१६१९ ई०) मोटा राजा उदयसिंह के छठे पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६२७ तदनुसार ई० सन् १५७० की ५ अप्रैल को हुआ था।[१] अक्षयराज, भगवतदास, नरहरिदास, जैतसिंह, शक्तिसिंह, दलपति, माधोसिंह और कृष्णसिंह इनके भाई थे।[२] सूरसिंहजी के अमात्य का नाम गोविंददास भाटी था जिसने समय-समय पर इनकी सेवा कर स्वामि-भक्ति का परिचय दिया था।[३] (१६७-१७०)

सूरसिंह ने अनेक राजाओं की कन्याओं से विवाह किया; परन्तु किसी पुत्र के न होने से पुत्रेष्टि यज्ञ[४] किया और बाद में कछवाहा राजा दुर्जनशाल की बेटी साभाग देवी के गर्भ से गजसिंह का जन्म हुआ। इस अवसर पर महाराजा ने स्वर्ण की वर्षा करके विद्वानों एवं गरीबों का दारिद्रय दूर किया था (१७०)।

इसके बाद मेड़ता[५] एवं सोजत के राजाओं को अपने अधीन किया (१७१)।

मुजफ्फर के ज्येष्ठ पुत्र साहि बहादुर ने गुजरात प्रदेश में उपद्रव शुरु किया था। अतः बादशाह अकबर ने महाराजा शूरसिंहजी को गुजरात[६]

---

१. अकबर नामा, भाग-३, पृ० ६९७।

२. महाराजा उदयसिंह के १६ पुत्र थे जिनमें से ८ का वर्णन प्रशस्तिकार ने किया है।

३. महाराजा अधिकतर युद्धों में उलझे रहने के कारण बाहर रहते थे। अतः उस समय जोधपुर का सारा प्रबन्ध भाटी गोविन्ददास एवं कुंवर गजसिंह के हाथों में रहता था। भाटी गोविन्ददास महाराजा के साथ कई अभियानों में रहे। अन्त में राजा किशनसिंह ने इनके घर पर हमला कर इनको मार डाला। हालांकि किशनसिंह को इस अभियान में प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

४. रेऊजी ने लिखा है कि गुजरात और दक्षिण के प्रांतों में महाराज को बहुत-सा द्रव्य मिला था। इससे जोधपुर पहुंच कर इन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया।
(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १८५)

५. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० १८५, १८७

६. अकबरनामा, भाग-३, पृ० ६९७; मारवाड़ के इतिहास में रेऊ ने लिखा है कि मुजफ्फर के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर ने कुछ लोगों को लेकर गुजरात में लूटमार की थी। महाराज उसे दण्ड देने हेतु अहमदाबाद से रवाना हुये। इनको दल-बल

(पृष्ठ का शेषांश ८७ पर)

भेजा। महाराजा से थोड़ी-सी मुठभेड़ के बाद साहि बहादुर भाग गया। गुजरात प्रदेश के उपद्रव शान्त करने के बाद इन्हें दक्षिण भारत[1] में खानखाना के साथ भेजा गया। वहां पर इन्होंने शाहि निजामुल-मुल्क एवं हब्शियों को पराजित किया (१७९-८२)।[2] निजामुल-मुल्क के साथ युद्ध-प्रसंग में सूर्यास्त एवं प्रातःकाल का वर्णन प्रसंगानुकूल किया गया है।

शूरसिंह द्वारा प्रातःकालीन (भगवान की) स्तुति के बाद पुनः युद्ध का का वर्णन है जिसमें कवि ने अपना काव्य चमत्कार दिखाया है। (१८८-२०७)।

इसके बाद अकबर से अवकाश प्राप्त शूरसिंह द्वारा अपनी राजधानी के प्रति प्रस्थान को चित्रित किया गया है (२१०)। महाराजा के मारवाड़ आगमन की खुशी में नगर के चतुष्पथों को सजाया गया, मंगलमय तोरण बांधे गये और मंगल गीत एवं वाद्यों से उनका स्वागत—सम्मान किया गया। (२११-२१२)।

(पृष्ठ ८६ का शेष भाग)

सहित आते देखकर बहादुर की हिम्मत टूट गई और थोड़ी-सी मुठभेड़ के बाद वह भाग गया; सूरज प्रकाश भाग १, पृ० २७५; डॉ० गौरीशंकर ओझा कृत जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-१, पृ० ३६४-३६५; पं० रामकरण आसोपा कृत मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० ३२५-३२६; गजगुणरूपक-बन्ध राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर पृ० १६।

---

१. अकबरनामा में लिखा है कि हब्शी खुदावंदखां ने पाथरी और पालम के प्रांतों में उपद्रव शुरु किया था। सूचना मिलने पर खानखाना ने राजा सूरसिंह को भेजा। इस पर खुदावंद को हराकर महाराज ने वहां शान्ति स्थापित की। (भाग-३, पृष्ठ ८०६)

२. रेऊ ने लिखा है कि जिस समय सूरसिंहजी निजामुल-मुल्क के सेनापति अम्बर चम्पू से लड़ने चले तब हब्शी फरहाद भी अपने तीन हजार सवारों के साथ युद्ध में कूद पड़ा। यह घटना ई० सन् १६०२ की है।
(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १८४); तुजुक-ए-जहांगिरी (पृ० ७४ अनुवादक-व्रजरत्नदास); वीरविनोद, भाग-२, पृ० २९६; ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-१, पृ० ३७१; गजगुणरूपकबंध, ग्रन्थाक ९९ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ३३, तथा सूरज प्रकाश, भाग-१, पृ० २८१ में सूरसिंह के दक्षिण गमन व युद्ध की पुष्टि है।

ई० सन् १६०५ में बादशाह[1] अकबर की मृत्यु पर उसका पुत्र जहांगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। उस समय बहादुर ने गुजरात में पुनः उपद्रव किया। इससे राजा शूरसिंहजी को वहां पुनः जाना पड़ा। वहां पर उपद्रव को दबाने में उन्होंने अच्छी वीरता प्रदर्शित की (२२६-२२७)। इसके अनन्तर कवि को वंश-प्रशस्ति के साथ काव्य की समाप्ति होती है।

पुराणकालीन शासकों के क्रम में राष्ट्रकूटों के राव सीहा से सवाई राजा शूरसिंह तक निरन्तर लड़े जा रहे युद्धों की नीरस पुनरावृत्ति से विकल मानवीय मन को रिझाती हुई प्रकृति की मनोहारिणी घटाओं के चित्र-विचित्र वर्णन के गुम्फन में कहीं पर परभृतों का कमनीय कलरव, षट्पदों का मधुर-गुञ्जन, कोमलाङ्गियों का हास-परिहास, हाटों व चतुष्पथों के मनोहारि-विन्यास से वीररस-परक वातावरण में रसों का समावेश करते हुये अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, अर्थान्तरन्यास और सन्देहादि विविध शब्द एवं अर्थालंकारों की योजना में सामान्यतया सरल भाषा व कहीं-कहीं पर श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से राजस्थान के मध्यकालीन व विशेषरूपेण मारवाड़ के ऐतिहास काव्यों की परम्परा में, प्रस्तुत शूरसिंह वंश-प्रशस्ति का इतिहास के साथ ही अपना अलग स्थान है, हालांकि काव्यगत विशेषताओं, शैली तथा रस के अन्य उपकरणों की चर्चा को काव्य के ऐतिहासिक पर्यायलोचन के सिलसिले में वाञ्छित स्थान नहीं मिल पाया है। वैसे भी वह अध्ययन का एक अलग ही पहलू है।

परन्तु यदि मारवाड़ के इतिहास के पुनः संकलन के प्रयत्नों में आधारभूत पर्शियन और राजस्थानी स्रोतों के साथ उपलब्ध संस्कृत काव्यों का पुनरावलोकन करना है तो उसका आरंभ हमें सूरसिंह वंश-प्रशस्ति से ही करना होगा क्योंकि जहां यह काव्य संस्कृत-कवियों की इतिहास पराङ्मुखता के खण्डन में अपने आपमें, अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करता है, वहीं पर इसका इसलिये भी महत्त्व द्विगुणित हो जाता है कि मारवाड़ में संस्कृत भाषा में इतिहास लेखन का प्रारंभ यहीं से माना जायेगा।

---

१. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १८५।

श्रीगणेशाय नमः

संचारा इव सैकतं सुविमलं विंबा यथा दर्पणं
वाता वारिनिधिं शिलोच्चयशिलां धाराभिसारा इव ।
सद्वृक्षं तरुणा घुणा इव गुणा यं चित्रयंत्युद्धता
नित्यानंदघनं मनःप्रशमनं तं कंचिदाशास्महे ।।१।।

लिम्पन्तं कज्जलाद्रिप्रतिमनिजवपुर्नीलभासादशाशा
नासाश्वासावधूतप्लवगकिलकिला कृतकौतूहलाभम् ।
दृष्ट्वोच्चैः कुंभकर्णं समितिसपुलको विस्मयस्मेरभाजः
कल्याणं कल्पयन्तां रघुतिलकमणेर्लब्धलक्षाः कटाक्षाः ।।२।।

गौरनीरधिजनिस्तनांतरे नीलिमानमनुविंबितं निजम् ।
उत्तरीयकधियापहस्तयन् भूतयेस्तु हसितो हरिस्तया ।।३।।

वंजुलावलिनिकुंजलालसं लालसं नवतमालसन्निभम् ।
वल्लवीनयनपल्लवीवशं हा दृशं श्रयतु तादृशं महः ।।४।।

स्मरचारुणाधररुचारुणायितस्मितशालिनालिवनमालिनाधुना ।
भ्रमरस्तु तेन मतिरस्तु तेन मे महसाद्भुतेन सहसावभासिता ।।५।।

अनुधेनुनाट्यचटुवेणुनादिनीं शुचिहासिनीं मरकतावभासिनीम् ।
ववचनात्मनैकरचनादुदंचिनीं सुचिरं चिरं चिनु विरंचिवंचिनीम् ।।६।।

आभीरसुंदरीणां चीराणि हरन् हरिर्जयति ।
द्रुपदसुतायै दातुं रचयन्निव संचयं चारु ।।७।।

उन्नीय नीयमानो जयति तृणावर्त्तदितिजेन ।
तोयावर्त्तविवर्त्तितकुवलयमिव कालियारातिः ।।८।।

उदयदरुणरश्मी यंति पद्माकराब्जे
सुरमुकुटसमूहे पद्मरागांशुभासः ।
मुनिनयनचकोरानंदनाश्चंद्रभासो
बलिविजयिनखानां कांतयस्ता जयंतु ।।९।।

संसारापारवारां निधिचललहरीमज्जनोन्मज्जनार्तान्
श्रांतानालोक्य लोकांश्चिरमिह सुदृढं कर्मपाशावलीढान् ।
देवः श्रीमाननंतः स सदयहृदयो नाम विश्रामहेतोः
स्वेधाम्न्याधाय विश्वं भुजगमणिफणा भोगशायी पुनातु ।।१०।।

क्रीडाकौतुकिनः प्रभो पुनरिदं सम्यक् सिसृक्षोर्महा—
मायाजालममुष्य कल्पितवतः प्राग्वासनोल्लासना ।
तंतुस्तूर्णमिवार्णनाभसदनाद् गंभीरनाभीह्नदात् ।
देवस्या[1]विरभूद्विभूतिभवनं नालं गुणालंबनम् ।।११।।

पद्मं प्रादुरभूत्ततः समभवत्तस्मादकस्मादथो
देवः कश्चन्[2] विश्रुतः स तु चतुर्वक्त्र स्वयंभूरिति ।
अंतर्नालमिहालमाकलयतः कालो विशालोऽगमत्
गूढं मूलमनाप्य तस्य स तदा रूढो विमूढोऽभवत् ।।१२।।

ध्यानेनाधिगतेन तेन स पुनर्नारायणेन स्वयं
निर्दिष्टस्त्रिजगद्विधानविषये वेधा विधां नाध्यगात् ।
चिंताचंचलचेतसोस्य समभूत्सूनुर्मुनिर्मानसः
तं दृष्ट्वा स तु संप्रहृष्टवदनः सृष्ट्यै समायोजयत् ।।१३।।

मरीचेर्वैरंचेरपि विमृशतः सर्जनविधिं
मनस्तः संजातोखिलजनजनिः कश्यपमुनिः ।
समाज्ञप्त[3] सर्गे स निजजनिकेनेह बहुशः
तदर्थं धातार परिचरितवान्नान्यशरणः ।।१४।।

पदांगुष्ठाद्वामादज नितनुजा काचन विधेः
अकस्मादन्यस्मादपि सपदि दक्षः समभवत् ।
स तस्यां पंचाशद्दश च जनयामास तनया—
श्चतस्त्रः प्रायच्छन्नव च ननु मारीचमुनये ।।१५।।

ततस्तासु प्राप्तैरति समुदयं कश्यपमुनेः ।
विचित्रैः संतानैः सकलजगदंडं वृतमभूत् ।
अमुष्येंद्रोपेंद्रप्रसवभुवि दक्षस्य दुहित-
र्यदित्यामादित्यो दशशतमरीचिः समजनि ।।१६।।

यः श्रीमानंधकाराजगरनिगलितानाकलय्येह लोकान्
कोकाश्चोद्भूतशोकान्मनसि धृतदयः पद्मनिश्छद्मबंधुः ।
अग्र जाग्रत्सुपर्णाग्रजनिरुदयता द्योतयन् दिक्प्रदेशान्
एष प्रत्यक्षदेवा जयति दिनपतिर्देवदेवाधिवंद्यः ।।१७।।

---

१. द्वेवस्य २. कश्चन

३. समाज्ञिप्त

तत्सूनुः श्राद्धदेवः समजनि तनुजोऽस्मान्मनुर्नामराज्ञा—
माद्यः प्रोद्यत्प्रतापः स किल रचितवान् राजधानीमयोध्याम् ।
इक्ष्वाकुक्षोणिपालः क्षुतजवविवृतघ्राणरंध्रादमुष्य
प्रादुर्भूतस्ततो भूत्क्षितिपतितिलको व्यूढवक्षा विकुक्षिः ॥१८॥

तत्सूनुर्वृषवर्ष्मवासवमहावाहश्चरन्नाहवे
यच्छत्रूनजयत्पुरंजय इति ख्यातः ककुत्स्थोऽभवत् ।
तस्याप्यंगजनेरनेन स इलापालादभूद्विश्वतो
विख्यातः खलु विश्वगंधिरभवत्तस्मादपींद्रः सुतः ॥१९॥

तस्माद्वभूव युवनाश्व इति प्रसिद्धः सावस्तिरित्यभवदस्य तनूजरत्नम् ।
यो वासयद्वसुसमो निजनामधेयां सावस्तिरित्यनुपमां नगरीं गरीयान् ॥२०॥

तस्यांगजोऽपि वृहदश्व इति प्रपेदे पुत्रं नृपः कुवलयाश्वमयं महौजाः
धुंधुं मृधे यदवधीदिति धुंधुमारः ख्यातः क्षितौ क्षितिपतिः क्षमिणां
वरेण्यः ॥२१॥

तस्माद्दढाश्व इति नाम महीश्वरोभूद्धर्यश्व[1] इत्यथ ततः समभून्निकुंभः ।
तस्यार्हणीयचरितोऽजनि वर्हणाश्व तस्मात् कृशाश्व इति सेनजिदास
तस्मात् ॥२२॥

तस्यासीद्युवनाश्व इत्यवनिभृद्वंद्यांघ्रिपीठस्ततो
मांधाताखिलचक्रवर्तितिलको जज्ञ धराधीश्वरः ।
तस्यासीत्पुरुकुत्सनामनृपतिस्तस्मादभूदच्युतो—
द्यत्कीर्त्तिस्त्रसदस्युरित्यथ सुतस्तस्यानरण्यो[2]ऽभवत् ॥२३॥

हर्यश्वः प्रवरणास्त्रिबंधन इतः सत्यव्रतोऽभूत्क्रमात्
पुत्रो य कथितस्त्रिशंकुरपितत्सूनुः सतामग्रणी ।
राजा राजशिरोमणिः किल हरिश्चंद्रः स यः कौशिक—
क्रोध-क्लेश-महार्णवे निपतितो धीरः पदं नाचलत् ॥२४॥

तस्यासीदनु रोहितोऽनुहरितश्चंपस्ततो यः पुरीं
चंपां प्रागकरोत्सुदेव इति तत्सूनुर्नृदेवोत्तमः ।
सौदेवो विजयस्ततोपि भरुकस्तस्माद्वृको बाहुकः
तत्पुत्रः सगरः सुतोऽभवदतो यश्चक्रवर्त्तीश्वरः ॥२५॥

---

१. र्यश्व । २. नरण्यो ।

तत्सूनोरसमंजसात्समजनि प्रोद्यत्प्रतापोंऽशुमां—
स्तस्मादप्यवनीपतेःकुललसद्दीपो दिलीपोऽभवत् ।
तस्मादास भगीरथःस कपिलक्रोधानलज्वालया
निर्दग्धाननयद्दिवं निजपितॄनानीय यो जाह्नवीम् ।।२६।।

ब्रह्मांडादपि दूरतःप्रसृमरीचित्रं पवित्रीकृत—
त्रैलोक्या मुनिदेवमानवजनैः संस्तूयमानाऽनिशम् ।
कीर्तिःमूर्त्तिमतीव शीतकिरणस्वच्छा चिरस्थायिनी
यन्नाम्नामरनिम्नगाभगवती भागीरथी गीयते ।।२७।।

तस्माज्जातः श्रुत इति सुतो विश्वतो विश्रुतोऽसौ
नाभस्तस्मादपि समभवत्पद्मनाभप्रभावः ।
सिन्धुद्वीपस्तदनु तनुजोस्यायुतायुस्ततोऽभूत्
प्राग्वर्णोषूपहितकनको राजराजतुं पर्णः ।।२८।।

सुतस्ततोभूदथ सर्वकामः सुदामनामानु ततोऽश्मकोभूत् ।
धर्मस्य मूल किल मूलकोस्मात्ततोऽभवत्पंक्तिरथः समर्थः ।।२९।।

तस्मादभूद्दैलविलोऽनु विश्वं सहेश्वरो विश्वसहस्ततोऽभूत् ।
खट्वांगनामानु च दीर्घबाहुस्ततोऽनघश्रीरघुराविरासीत् ।।३०।।

यो नासादितयौवनःसमजयज्जंभद्विषं संगरे
विप्रेभ्यो व्यतरद्युवाखिलवसुप्राग्विश्वजित्यध्वरे ।
यस्मादोंकृतकौत्सयाचितगुरुद्रव्योच्चयान्निःस्वतो
भीतः कोशमपूरयन्निशि धनाधीशोपि चामीकरैः ।।३१।।

अजस्तदीयस्तनुजस्ततोऽभूद्भूमीपतिः पंक्तिरथाभिधानः ।
ततश्चतुर्द्धावततार रक्षःकुलांतकालोऽखिललोकपालः ।।३२।।

बद्धो येन महोदधिर्युधि हतः त्रैलोक्यविद्रावणः
कैलाशोद्धरणक्रियोद्धुरकरक्रीडोवलाद्रावणः ।
रामोधर्मधुरंधरो मरकतश्यामावदातद्युति
यो लोकस्थितये ऽत्यजत्प्रियतमां वह्नौ विशुद्धामपि ।।३३।।

कुशावतीशोथरिपुद्विपांकुशः कुशेशयाक्षः कुशलोऽभवत्कुशः
ततोतिथिर्योतिथिपूजनप्रियो द्विषां निषेद्धा निषधोऽभवत्ततः ।।३४।।

ततोनलोभूदनलप्रकाशो न लोभमोहादिभिराश्रितो यः ।
कीर्त्तीन्दुपाण्डुः किल पुंडरीकः विलोचनोऽभूदथ पुंडरीकः ।।३५।।

क्षत्रेशः क्षेत्रधन्वान्वजनि निजयशः क्षिप्तनक्षत्रनाथो
देवानीकस्ततोभूत्तदनु नृपवरोऽहीन गुर्गां शशास ।
तस्यासीत्पारियात्रः परदलदलनोऽस्माद्दलोनाम तस्माद्
अर्कः[1] आसीत्क्षितिपतितिलक कर्कशार्कप्रतापः ।।३६।।

सुतस्ततो वज्रधरप्रभावो बभूव भूपः किल वज्रनाभः ।
सदग्रगण्यः सगणो गुणानां गुणैरुदारः समभूत्सुतोऽस्मात् ।।३७।

धृतिमानवनीभृतां वरेण्यो विधृतिर्नाम वसुंधराललाम
सगणादवनीपते सुतोऽभूद्विधृतोऽगजनिहिरण्यनाभः ।।३८।।

पुष्यस्ततोऽभूत्ध्रुवसंधिरस्मात्ततोऽभवस्तस्य सुदर्शनाह्वः
तदंगजोऽनंगसमांगकांतिर्जातो जगत्याः पतिरग्निवर्णः ।।३९।।

काश्चिद्देव्य इव स्वकीयवदनान्यादाय शीतद्युतीन्
काश्चिच्चाप्सरसो यथाधरपुटेस्वाधाय साध्वीं सुधाम् ।
काश्चित्कल्पलता इवास्य मनसः कामानदुः स्वः सुखं
भुञ्जन्नत्र समूर्त्तमन्मथसमः शृङ्गारसारोऽभवत् ।।४०।।

तनुजवदनपद्मालोकनानंदहीने गतवति सुरसद्माखंडसौख्यानि भोक्तुम् ।
प्रकृतिभिरिह शीघ्रं गर्भ एवाभिषिक्तः समभवदवनीशः शीघ्रनामा—
सुतोऽस्य ।।४१।।

ततो मरुप्रस्नुयुतोऽनुसंधिरमर्षणोस्मादभवत्सहस्वान् ।
ततस्तनूजोऽजनि विश्वसक्तः प्रसेनजित्तस्य च तक्षकोऽस्मात् ।।४२।।

बृहद्बलस्तस्य बृहद्रणोऽस्मात् गुरुक्रियस्तस्य च वत्सवृद्धः ।
प्रीतिप्रदः प्रीतिपदादिरस्माद् व्योह्वमायो भानुरनु क्षितीशः ।।४३।।

तद्विश्वकस्तस्य च वाहिनीपतिस्ततो नृदेवः सहदेव इत्यभूत् ।
वीरस्तु तस्माद्बृहदश्वसंज्ञकस्ततोऽनुभूपोजनि भानुमानिह ।।४४।।

ततः प्रतीकाश इति क्षमापतिस्तत्सुप्रतीको मरुदेव इत्यतः
ततः सुनक्षत्र नृपोऽथ पुष्करस्ततोंतरिक्षः सुतपा अमित्रजित् ।।४५।।

ततो बृहद्भानुं नृपोऽथ बर्हिः कृतंजयोऽस्माच्च रणंजयोऽस्मात् ।
तत्संजयः श्राय इतोऽनुतस्माच्छुद्धोद इत्यस्य च लांगलोऽभूत् ।।४६।।

---

१. अर्कः स्नूदकर्क ।

प्रसेनजिदतोऽभवत्तदनु भूपतिः क्षुद्रक—
स्ततोऽरुणक इत्यभूत्सुरथ संज्ञकस्तत्सुतः ।
सुमित्र इति भूभुजां सुचिरराजधानोपदं
पुरीपरमशोभनाधिगतवत्ययोध्याभिधा ॥४७॥

वंशेस्याविरभूद्बलिः स बलवान्विख्यातवीर्यः क्षितौ
क्षोणीशः क्षणभंगुरां श्रियमयं जानन्वदान्योऽभवत् ।
यस्योद्दंडभुजप्रतापपटिमप्रध्वंसितं प्रौढिम—
प्रह्वाः पादतले प्रथेतुरवनीपालाः परे पद्मशः ॥४८॥

जित्वा दिशः स सकलाः किल चक्रवर्त्ती
चक्रेश्वरीचरणपंकजजातभक्तिः ।
कार्णाटनीवृति चकार निजं निवासं
पृथ्वीं शशास तदनु प्रथितः पदार्थः ॥४९॥

तस्मादभूद्ज्ञानपतिः पृथिव्याः पतिस्ततश्चाजनि तुंगनाथः
प्रोत्तुंगमातंगकपोललालद्विरेफसंगीतकसेवितश्रीः ॥५०॥

जातस्तस्यानुभूपो भरतनृपतिश्चक्रवर्त्ती समस्त—
त्रस्तद्वीपावनीपा नतसुभगपदः पद्मनाभप्रभावः ।
कार्णाटेशः सकर्णादधिकवितरणेऽभ्यर्णमाकर्णनीयो
यद्भर्तुः सैन्यभारान्कथमिव बिभरामास विश्वंभरापि ॥५१॥

शेषाशेषफणाश्चलद्बलमहाभारैरयं नामयन्
प्राचीप्रत्यचलच्चलाचलचयन्व्याप्तांचलां चालयन् ।
नानादानवितानमानितमहादेवः पितृप्रीतये
धातुं श्राद्धविधिं गदाधरपदाक्रांते गयामूर्द्धनि ॥५२॥

भोक्तव्यैर्नव्यगव्यादिभिरमरपितॄन् प्रीणयन् हव्यकव्यै—
र्भव्यैः सव्यापसव्यं विधृतनवगुणैरव्ययश्राव्यकीर्त्तिः ।
दातव्यद्रव्यपुञ्जव्ययविदितमहोदेवनिर्व्याजसेवः
स्थित्वा कालं कियंतं तदनु निवत्रृते तद्गयानामधाम्नः ॥५३॥

मंदाकिनीविशदवीचिविराजमानं स्थानं निरीक्ष्य पथि पूर्वजभुक्तपूर्वम् ।
स्नेहप्रमोदितमनाः कणवज्जनाम वासाय स व्यरचयन्नगरीं ललाम ॥५४॥

ब्रह्मद्रवेन सुरनिम्नगया सदार्द्र राष्ट्रंवर यदिति तेन तदा शशंसे ।
ख्यातास्ततःप्रभृति राष्ट्रवरास्तदीया अद्यापि लोककृतरट्ठ—
वराभिधानाः ॥५५॥

कोटिशः प्रमदकुंजर पुंजप्रान्तगुंजदलिमंजुलगीतैः
कूजितां श्रियमितः परिभुंजन्पुंजराज इति भूपतिरासीत् ।।५६।।

तस्यासतु सुतवरौ जितलोभदंभौ संग्रामदारितविपक्षकरीन्द्रकुंभौ ।
धात्रा कृतौ प्रकटबाहुवलोपलंभौ स्तम्भौ धराधरणि कर्म्मणि—
धर्म्मवंभौ ।।५७।।

याभ्यामदायि सकलः किल गुर्ज्जराणां देशः परेशमपहृत्य निजानुजायै ।
येषां स्वधर्मव्रति कर्मणि शर्मधर्मा जन्मान एव किल संप्रति—
कान्यकुब्जाः ।।५८।।

इति सूरसिंहप्रकाशे माधवभट्टकृतौ प्रथमः सर्गः ।।१।।

बंभादभूदजयचन्द्र इति क्षितीशस्तस्मान्नृपः सुभटराज समाह्वयोऽभूत् ।
तस्यांगजो विजयचंद्र इतो नु चक्रवर्त्ती महानरपतिर्जयचंद्र—
आसीत् ।।५६।।

यः सर्वाः ककुभोऽजयद्दलभरैरस्यावनि पूरिता
तन्नाम्नादलपंगुरित्ययमभूद्गन्तुं भुवो भावतः ।
सन्नद्धाः समपालयंश्च परितः प्रासादमत्युत्कटा
लक्ष्याशीतिभटानयेन न भये नेत्यन्वहं श्रूयते ।।६०।।

आरेभे राजसूयं स किल कलियुगक्रूरकालेऽपि मत्वा
सर्व्वोर्व्वीशान्स्ववश्यां निखिलवसुमतीमंडलाकृष्टलक्ष्मीः
इन्द्रप्रस्थाधिपस्तं रुचिरमवसरं वीक्ष्य विख्यातवीर्यः
पृथ्वीराजः समंतात्सपदि विघटयामास देशानमुष्य ।।६१।।

दीक्षाकंकणबंधसुंदरकरः कल्याणतूर्यस्वना—
नुच्चानप्यभिभूय कर्णकटुकान् शुश्राव दीनारवान् ।
आ किं के कथमित्यनेन कथितो दिल्लीश्वरो[1] यद्रुता—
लोकालोकमहेश्वरेत्यनुचरा विज्ञापयांचक्रिरे ।।६२।।

कोऽयं किन्नोक्तपूर्वः किमिव न विजितः कथ्यतामित्थमुक्ताः
क्रुद्धं युद्धाय बद्धा युधमवनिपतिं मंत्रिणः कंपमानाः ।
प्रोचुः प्रह्वास्त्रिलोकीतिलकनरपते त्वत्पुरः कः पुरारि—
जंभारिर्वा विजेतुं किमिह कतिपयग्रामनाथे प्रकोपः ।।६३।।

---

१. डिल्लीश्वरो ।

अस्माभिर्यदुपेक्षितोग्निकणवद्वृद्ध स तूलोच्चय—
प्रायेनीवृत्ति दीक्षितस्य भवतो यात्रा तु नात्रार्हति ।
अन्यैर्जेतुमशक्य इत्यधिगतं संप्रत्ययं सत्ववां —
स्तस्मादस्मदुदीरितं कलय यद्युक्तं ततस्तत्कुरु ।।६४।।

पुत्र्यास्ते रचय स्वयंवरमहं संयोगितायास्ततः
पृथ्वीराज इतः पराक्रमनिधिः प्रायः समायास्यति ।
ज्ञात्वा निह्नु तच्चिन्हमाकृतिगुणैस्तन्निग्रहं निग्रहे
कृत्वा सत्रममुं समापय महाराजाधिराज प्रभो ।।६५।।

तैरेवं कृतसांत्वनस्तदकरोद्दिल्लीश्वरोऽपि स्वयं
श्रुत्वा को नृपतिः स्वयंवरमहं संभावितस्तिष्ठति ।
इत्यालोच्य स वंदिनोनुचरतां गत्वा निजस्य छलात्
तत्रायं वरदायिनः किल कवेश्चंद्राह्वयस्यागमत् ।।६६।।

सत्रे नृपान्निखिलकर्म्मकरान्निरीक्ष्य संयोगिता न चकमे कमपि क्षितीशं
दिल्लीपतिः स तु जहार ततः समंतासात्मंतषोडशकसंवृत—
एणनेत्राम् ।।६७।।

न शेकुस्तं रोद्धुं गरुडमिव देवा नृपसुतां
सुधां नीत्वा यातं झटिति जयचन्द्रस्तु नृपतिः ।
समंतात् सामंतात्समिति समुपेत्यास्य गरुतः
प्रचिच्छेदाकार्षीत्सुरपतिरिवेनं च निजसात् ।।६८।।

दिल्लीशमुद्दिश्य निजाधिनाथमभ्यर्थितः कातरया कुमार्या
मुमोच दत्वा बहुपारिबर्हं समापयामास ततः स्वसत्रम् ।।६९।।

तस्मादभूत्ताद्दश एव वीरो जेता रिपुणां जयसेन नाम ।
सुतस्ततः पूरितसर्वकामः कामाभिरामः किल सीतरामः ।।७०।।

स्तंभादिवाविरभवन्नरसिंहमूर्त्तिः
तस्मात्स सिंह इति सिंह इवावभासे ।
बीभत्सिनीं शवभरैः[1] परकुंभिनां यो
विश्वंभरामिह चिरं बिभरांवभूव ।।७१।।

---

१. शवभरैः ।

द्वारकामन्वगादेष[1] गत्वा हरिद्वारकांचीमुखाः सर्वशोऽन्याःपुरीः ।
द्वारकल्पामिह श्रेयसामुच्छलद्वारिकग्रस्थलीमंवुधेः कर्हिचित् ।।७२।।

ग्रागछन्निह केनचिद्रिपुभयाच्छोलंकिनाभ्यर्थितो
मार्गेऽसौ मरुपत्तनाधिपतिना दत्ताभयस्तद्रिपुम् ।
यातो योजनविंशतिं प्रजविभिर्वाजिव्रजैर्यामितो
जाडेचान्वयजं जघान निशितं लाखाभिधानं युधा ।।७३।।

प्रत्यावृत्य ततश्च पत्तनमयं तेनैव शोलंकिना
दत्तामात्मभुवं मुदा व्युदवहल्लावण्यलक्ष्मीनिधिं ।
त्रीन्पुत्रप्रवरानतः प्रसुषुवे सास्थान नामाग्रजो
मध्यः शोनिग ग्रास वासरसमस्ताभ्यामजश्चानुजः ।।७४।।

शंखोद्धारधराभुजोऽजनृपतेर्वाढ़ेल संज्ञाः सुताः
ग्रासन्नीडरपत्तनाधिपतयस्ते शोनिगस्यांगजाः ।
ग्रास्थानस्तु निहत्य गोहिलगणान्जग्राह खेडं पुरं
खेडेचा इति तन्मरुक्षितिभुजः ख्याताः क्षितौ तद्भवाः । ७५।।

ग्रास्थानोर्व्वीधारिणो धूहडोऽभूत्
कार्णाटेभ्यश्चक्रदेवी स्ववासं ।
नागाणं यत्पत्तने तेन नीता
नागाणेची गीयते तेन लोकैः ।।७६।।

तस्मादाविरभूत्तनूजनिमणिः श्रीरायपालो नृपः
ख्यात क्षोणितले स एव सुभटैर्वेल्लन्महीरेल्लणः ।
येनामंदमतिः स चंदनवचाश्चंदः स्वराज्यार्पणा—
द्भाटी यादववंशजः कविवरश्चक्रे निजश्चारणः ।।७७।।

चन्दान्ववाय जाता वश्यगिरोऽद्यापि ते कवयः ।
रोहडिया इति विदिता मरुदेशे चारणाः संति ।।७८।।

श्रीराइपालनृपतिः परमो वदान्यो यो रंतिदेव सदृशो भवदन्नसत्रे ।
ग्रद्यापि तस्य तु महेवपुरे महत्यः स्थाल्यो महामदगजैर्नतु संति
वाह्याः ।।७९।।

---

१. त्वगात् ।

तस्माज्जातः कन्हडो वह्नितेजास्तत्पुत्रो भूज्जाल्हणः सत्यसंधः ।
राज्ञामाज्ञा यस्य धार्या समौलौ मल्लीमालातुल्यमत्यादरेण ॥८०॥

कदाचिदाखेटककौतुकात्स, वनं गतो बिंबफलान्यपश्यत् ।
आज्ञापयामास न कश्चिदन्यश्चिनोतु चित्रं वनभूषणानि ॥८१॥

तन्मध्ये परमारवंशविभवः सोढ़ाग्रहीदेककं
कश्चित्कर्हिचनेह विस्मृतिवशाद्बिंबीफलं मोहितः ।
सोढानव्यवहेलनं निजगिरः सोढान्पुनः सर्वशः
सर्वस्वेन वियोजितान् व्यरचयद्दंडे महादारुणः ॥८२॥

प्रत्यक्षं प्रतिपालयन्पितृवचः पुत्रस्तदीयः पुन—
र्दंडं तत्परमारमंडलभवान्छाडाग्रहीद्वाडवान् ।
अ[1] (?) रुद्यावडवास्तदीय तनुजस्तीडा असंख्यायत—
स्तद्योधाः शलभा इव क्षितितलेऽभूवन्नतो भाषया ॥८३॥

येन स्वर्णगिरीश्वरो युधि जितः सामंतसिंहो बलात्
तत्पुत्रोऽपि त्वभिन्नबालनगराधोशः सलक्षोऽभवत् ।
येनागृह्यत सर्वतोऽपि परितः सामंतभूमीभुजां
यावद्गोगजवाजिवाहनधनं प्रत्यब्दमब्दश्रिया ॥८४॥

चत्वारस्तनुजास्ततोऽजनिष तेषां मल्लदेवोऽग्रजः
सोदर्योऽस्य च जैत्रमल्ल इतरो वीरम्मदे[2] शोभितौ ।
युद्धे सिद्धिमदात्प्रसादितमनाः श्रीमल्लदेवाय वै
देवः कश्चन[3] विश्रुतो गवि गवां स्वामीति विश्रूयते[4] ॥८५॥

निहंतुमहित त्रितं तिमिरलंगभामैकतः
समागमदितोन्यतो निखिलगुर्ज्जराधीश्वरः ।
असावसमसाहसो निशि निपत्य दिल्लीश्वरं
प्रभातसमये जवादुपगतोऽजयद् गुर्ज्जरम् ॥८६॥

श्रीजैत्रमल्लेन सिमाणभूभृतो[5] भूमीभृता सोदरनोदितेन तौ ।
विस्मारितौ नैजवासनीवृतोऽन्यमातृजौ वीरमदेव शोभितौ ॥८७॥

---

१. छन्दः दोषः ।
२. वीरस्मदे इति मूले ।
३. कश्चत इति ।
४. विश्रुयते ।
५. सिवाणा इति भाषायाम् ।

मानदानविधिभिः प्रलोभितः सिंधुनाथमगमत्स शोभितः ।
तत्र गोग्रहनिमित्ततोभितः प्रकमन्युधि हतोऽपि शोभितः ।।८८।।

वीरम्मदेवस्तु जगाम जेतुं जोद्रकराजन्यकमुग्र तेजाः ।
जघान वीरः स वडेरणींद्रं वडेरणींद्रोऽपि युधावधीत्तम् ।।८९।।

चंडप्रतापस्तनयस्तदीयश्चंडः पुनर्मंडलमागतः स्वं ।
मंडोवरान्नागवरान्बलेन बुभोज भोजप्रतिमो महौजा ।।९०।।

पुत्रस्तदीयो रणमल्लनामा धामाधिकः स्वर्णगिरीशवंश्यान् ।
कूपे निचिक्षेप निहत्य सार्द्धशतं नृपान्भाविविगंधभीत्या[1] ।।९१।।

समाक्रमन्नागवरादिनीवृतः पीरोजखानोऽपि यतः पराजितः ।
तस्यानुजं यो महमूदनामकं जघान युद्धे परधामकामुकम् ।।९२।।

विजित्य भाटीनृपसैन्यघाटीमयं पुनर्हंतुमितः प्रतस्थे ।
तदाशु तेषां समुपेत्य बंदीमंदीकृतोत्साहमुवाच वीरम् ।।९३।।

अनौचिती ते महती नृपेयं जितान्न निघ्नंति कदापि वीराः ।
समानयन्बंदिवचस्तदानीमयं निवृत्तः करुणार्द्रचित्तः ।।९४।।

चाचामेराभिधाभ्यां कपटविनिहतं चित्रकूटाचलेंद्रं ।
श्रुत्वा स्वं भागिनेयं धृतसकलकलं मोकलं निष्कलंकम् ।
तत्प्राणैः पारणां प्राक्तदनु विरचयेन्नैरिति द्राक्प्रतिज्ञाम्
चक्रे सत्यां निहत्य प्रथितमिति पईपर्वतानाश्रितौ तौ ।।८५।।

जोधो मंडनमंडलावनु ततोऽखेराजनाथूद्भवा
जाता डूंगरकोन्वतोऽनुजनुषौ लक्षांडवालौ ततः ।
कर्णोरूपकचंपकावथ ततः पातोऽनु बालोऽभवन्
नाम्ना कंधिलहायसायरनृपा विश्वैर्मितास्तत्सुताः ।।९६।।

आः पापं दुर्ज्जनोक्तिप्रकरकलुषितो[2] मोकलस्यांगजन्मा
तं राणाकुम्भकर्णो निशि निशितरुचं निद्रितं निर्जघान ।
योघः प्राप्तप्रबोधः कलितकलकलैः कल्मषं शंकमानो
निंदन्भिदन्नदानां पथि पथि परितश्चक्रमे चक्रमेकः ।।९७।।

---

१. तथ्यमिदमतिहासग्रंथेषु नोपलभ्यते ।   २. कलपितो ।

निर्द्रोहमोहलवलोहठशर्म्मणोऽसौ
लूढावसाभिद्यमदादिह पत्तनं तत् ।
अद्यापि तत्कुलभवा विलसद्विलासा
व्यासास्तदन्वयशुभं परिचिंतयंति ॥९८॥

गयाशीर्षे यस्मिन्पितृयजनकामे प्रचलिते
परिप्राप्तिः प्रह्वो जमणपुरनाथः पथिजवान् ।
अयाचे दिल्लीशादभयमयमस्मै त्वददान्[1]
महायोधोयोधः समजनि गयामोचितकरः ॥९९॥

प्रौढैर्यन विचित्रमत्र शकटारूढैर्भटै प्रोद्भटै—
राणावारणवाजिवाहनबलः प्राक्कुंभकर्णो जितः ।
ईशं जूणपुरस्य विक्रमबलाद्विप्लाव्य दिल्लीभुवो
रक्षद्यो बहलोललोलरसनग्रस्तं समभ्यर्थितः ॥१००॥

क्रोधाज्जूणपुरान्निवृत्य सहसा सारंगखानं निजं
भ्रातारं बहलोलसाहिरहितं तं हंतुमायोजयत् ।
योधो योधवरो युधायुधधरै र्युध्यंतमेनं बलात्
विक्रम्य व्यवधीद्यथा मृगपति मत्तं महावारणम् ॥१०१॥

नाम्ना योधपुरं पुरं व्यरचयत्स्वेनैव धामाधिकं
माद्यद्वारणवृंदवृंहितवृतै हेषारवेर्वाजिनाम् ।
नाना स्यन्दननेमिघोषध्वनितैरास्फोटितैः खेलतां—
नादै श्चापभवै र्दि[2] शत्यविरतं शब्दस्य यन्नित्यताम् ॥१०२॥

दारा इव केदारा घनशालीनतावृता यत्र—
कथयंत कलमधुरं कस्य न सुखयंति चेतांसि ॥१०३॥

केलीगृहांतरगतेन निशासुखस्यामानंदमुग्धमनसां सुरतांतरेषु ।
पारावतेन[3] कलकोमलकाकलीभिः संस्मार्यते रतविकूजित—
मंगनानाम् ॥१०४॥

तस्य तनूजाः सूजा विक्रमवरसिंहदूदाख्याः
अन्वजनि राइपालोऽनु कर्म्मसिंहोऽनु वणवीरः ॥१०५॥

---

१. चतददान् । २. नादैश्चापजैरिति मूले ।
३. पारापतेन ।

शिवराजनिवसंज्ञौ वीदा सामंतसिंहश्च—
भारमल्लश्चेत्यभवन्भूपतयः सर्व्वे एवैते ।।१०६।।

तस्यानेकेषु सूनुष्वयमथ विनयन्यायविख्यातकीर्त्तिः,
कल्पः कल्पद्रुमश्रीर्वितरणविषये नाम यः काममूर्त्तिः ।
सूजा भूजानिपुंजा नतसुभगपदः पद्मनाभस्य नित्यं
पूजासूज्जागरूकः स्वजनकनगरीराज्यमाप प्रतापात् ।।१०७।।

वीकानेरं स्वनामांकितनगरवरं विक्रमोऽवासयत्स्वं
प्रोद्यत्सौवर्णसौधच्छविभिरविरतं मेरुतामाप्तवत्यां ।
राजाऽसोन्मेरुतायां पुरि किल वरसिंहादनूदारकीर्त्ति—
र्दूदा भूदानशीलोऽखिलभुवि समभूदासमुद्रप्रतापः ।।१०८।।

समजायत रायपालनामा क्षितिपः खीवसरीश्वरः क्षमावान् ।
वरवीरबलैर्दलैः सलीलं कलयामास कुलं खलं खलानाम् ।।१०६।।

द्रूणाडे शिवराज एव समभूदुड्डामरे डामरे
राजा राजशिरोमणिः किल बलात्सामंतसिंहाह्वयः ।
वीदा द्रोणपुरेश्वरः समभवद्वीलाडसंज्ञे पुरे
राजा भारमलोऽभवद्बलभराक्रांताखिलक्ष्मातलः ।।११०।।

राजा स्वयं योधपुरस्य सूजा पूजासु सक्तः सुरभूसुराणां ।
तत्सूनुरासीद्रहितः सदाघाद्बाघा निदाघार्कसमानतेजाः ।।१११।।

प्रोद्यत्प्रतापस्तत आस गांगो गांगेयवद्गेयपवित्रकीर्त्तिः ।
युद्धे धराधारधुरीणधीरो धनुर्द्धराणां धुरि धारणीयः ।।११२।।

नीत्वा यावनवाहिनीमुपगतं यो गोत्रशत्रुं पुर—
स्कृत्वा कुंजरराजमाजिषु महादुर्द्धर्षवेगं मृधे ।
प्राक्पार्थो भगदत्तकुंजरमिव द्वेधा विधायेषुणा
शेषं शेषभुजंगभूषणभुजो द्राक्कीर्त्तिशेषं व्यधात् ।।११३।।

प्रोद्यत्प्रत्यर्थिपृथ्वीपरिवृढपटिम प्रौढिपाटी प्रहर्त्ता
पृथ्वीपालस्ततोभूदतिसुभगतनुर्मालियो मालदेवः ।
अस्तारेर्यत्पुरस्तादजनिषत परे पातिसाहाः समस्ताः
त्रस्ता अभ्यस्तसामार्पणविधय इतः कः परस्तात्प्रतापः ।।११४।।

आक्रांता निजविक्रमाद्वसुमतीसामंतभूमीभुजो
जित्वा येन समंततो बलभरैर्यस्या नमद्वासुकिः ।

आदायारिनदीनदादिनिवहद्रव्योदकान्यंबुद —
प्रख्य: प्राशमयद्द्विजोदितमहादारिद्र्यदावानलम् ।।११५।।

यं देवा यज्ञमूर्ति विदुरथ वनिता: पंचबाणं स्ववर्ग:
चंद्रं सर्वा: प्रजा: स्वपितरमथ परं कल्पवृक्षं कवीन्द्रा: ।
मृत्युप्रायं प्रतीपा रसमिव रसिका माधवं भूरुहोपि
गंधर्वप्रायमेणा: किमपरमखिला: प्राणिन: प्राणमूर्त्ति: ।।११६।।

शेष: श्वासावशेषश्चपलचकितदृग्नागपालो दिगीश—
स्त्रस्यंतो दिक्करींद्रा प्रबलभरलस[1]त्कुंभदुर्नम्रदुस्था: ।
राजानोन्ये वराका: करकृतबहुलोपायनास्त्यक्तशस्त्रा:[2]
पादद्वन्द्वं प्रपेदुर्विरचयति दिशां जेत्रयात्राममुष्मिन् ।।११७।।

बीकानेराधिनाथादभवदनुनृपो विक्रमाल्लूणकर्ण —
स्तत्पश्चाज्जैत्रसिंहस्तदनु समभवद्रायकल्याणमल्ल: ।
राजाभूद्रायसिंहस्तदनु तदनुजाश्च त्रयो रामसिंह
पृथ्वीराजाभिधानात्सकलगुणनिधे: प्राक्सुरत्राणनामा ।।११८।।

पृथ्वीराज: प्रपेदेऽकबरनरपते गगराटाचलेंद्रं
तेने तेन प्रधाना निखिलवसुमती तेन राजन्वतीह ।
खीचीनां रक्तवीचीनिचयमयनदीचीर्णवीरव्रतश्री—
न्नीचीकुर्वन्नुदीचीदिवसकरमपि स्वप्रतापप्रभावात् ।।११९।।

चतुर्दशशतै: खीचीमुंडश्चंडपराक्रम:
चत्वरं समरेऽकार्षीत्सत्वरं सत्वरं हठा ।।१२०।।

विहंगा स्यंदंते न च नयति सिद्धा न मुनयो
न सत्वारो वाचां न चलति मनो यत्र च पदम् ।
तमध्वानं तीर्णोऽबुंधिमिव हनूमानवनिभृत्
पृथु प्राप्तो लंकापुरमिव निजामैंद्रनगरीम् ।।१२१।।

भेजे भोजप्रभावो निजभुजविजितां मेरुताराजधानीं
मानी दानी हि मानी कररुचिरयशोराशिराशिर्निधानम् ।
दूदा सौदामिनीव स्फुरणविरचितारातिचक्षुर्निमीला
दु:शीला खड्गलीला रणभुवि लसति स्मातिभीता यदीया ।।१२२।।

---

१ ललन् । २. नास्तक्तशस्त्रा: ।

बाल: कुंतेन कालक्षण इव कुतुभूखानवक्षश्चखान
प्राप्तं योधैरनैकैरपि किल समरे शेरखानं जिगाय ।
नीतानां मोचनाय त्वरित इह गवां द्वाद्वशाग्रै: सहस्रै:—
र्गुप्तं योधै:[१] सहस्रार्जुन इव शिरियाखानमाजौ जघान ।।१२३।।

तत्पुत्रेषु बहुष्वपि प्रतिभटप्रोद्दंडदर्प्पापह: ।
कंदर्प्पादपि सुंदर: समभवद्राजा महाधार्मिक: ।
वीरो वीरमदेव एव सकलज्जैत्येन तद्भ्रातर:
सौभ्रात्रं भरतादिव व्यरचयस्तस्मिन् धराधीश्वरे ।।१२४।।

तत्सूनुर्जयमालइत्यवनिभृद्वंद्याङ्घ्रिपीठो भवत्[२]
योन्वर्थो रणमंडलेषु रचयन्माला जयानामिह ।
चित्रं यच्चरितानि कर्णपुटकै: संत पिबंतो मुदा
जाता भीष्मयुधिष्ठिरादिचरिते मंदादरा: सुंदरे ।।१२५।।

मूर्त्तिर्यस्याद्य यावज्जयति जयनिधेरागरायां नगर्या—
मार्यैर्या वंदनीयाऽवरयवनजनैर्मूर्त्तिविद्वेषिभिश्च ।
संप्राप्तानेकसिद्धि: प्रसृमरमहिमा स्थापयत्कुंजरस्थां
यां विज्ञाय प्रभावानकबरनृपतिर्द्वारि दुर्गस्य गुप्त्यै ।।१२६।।

प्रोद्धर्तुं भुवनानि ये विरचिता स्तंभा इव ब्रह्मणा
पुत्रास्तस्य चतुर्दशाजनिषत प्रख्यातदोर्विक्रमा: ।
तत्राद्य: सुरताण इत्यनु तत: शार्दूलनामा तत:
क्ष्मेश: केशवदास इत्यनु तत: कल्याणदासोऽभवत् ।।१२७।।

अन्यो माधवदास इत्यनु ततो गोविंददासस्तत:
प्रोद्दाम: किल रामदास इतरस्तस्माच्च नारायण: ।
वीरो विट्ठलदास इत्यनु ततो जातो नृसिंहस्ततो
भूपालो हरिदास इत्यनु मुदां कंदो मुकुंदोऽभवत् ।।१२८।।

तेजोधाम श्यामदास: कनीयानेषां नाम द्वारकादास आसीत् ।
यं युध्यंतं दाक्षिणात्यैर्जयश्रीर्द्राग्देवश्रीश्चैकदेव प्रपेदे ।।१२९।।

इति द्वितीयसर्ग: ।।२।।

---

१. सुहस्रार्जुन ।   २. वंद्याप्रि ।

श्रीमालदेवाच्च गुणाभिरामो रामस्ततोनूदयसिंहसंज्ञः ।
श्रीचन्द्रसेनोऽजनि रत्नसिंहः प्राग्भोजराजादनुराइपाल्ल ।।१३०।।

रामे सर्वगुणाभिरामवपुषि श्रीमालदेवो नृपः
सिंहेवोदयसिंह नामनि सति प्राक्चंद्रसेनेऽनुजे ।
भावं यन्निव बंधमानसमसौ तत्तावयोग्यौ नहि
त्रायेणेश्वरचित्तवृत्तिविभवाश्चित्रा भवंतीह यत् ।।१३१।।

मात्रानुजस्यापि निजस्य सूनोरभ्यर्थितो राजपदं स राजा
तच्चित्तवृत्यानुसरन्हि रामः प्राक् चित्रकूटाञ्चलमुज्जगाम ।।१३२।।

दशरथ इव मालदेनृदेवो मृगनयनावशर्वात्ततामुपेत्य ।
फलविधिषु नियोजयाञ्चकारोदयनृपमग्रजनि तनूजरत्नम् ।।१३३।।

तदनु जनकदत्तं चन्द्रसेनः स्वराज्यं
बहुतरबललक्ष्मीसंपदंगीचकार ।
न यदि निखिललोका लोभलोला भवेयुः
कथमिह भरतं तं श्लाघयेयुर्महांतः ।।१३४।

प्रस्थिते पितरि दैवतलोकं स्वावमाननरुषोदयसिंहः ।
द्राक् चकार निजमातुलवशे वासिनैक्यमति रामनृपेण ।।१३५।।

नीत्वानेकवलानि रामनृपतिर्व्यद्रावयन्मारवन्
देशं यात्रदुथा (?) जमामकुपितस्तं (?) वसेनाह्वयः ।
तावद्योधपुरा वधि व्यधिततद्दशानसावात्मसात्
तस्यानूदयसिंहनामनृपतिर्निघ्नन्ननेकान्भटान् ।।१३६।।

श्रुत्वा तद्युधि[1] बुद्धवानुभयतः पाशैव रज्जुस्ततः
संधिं प्रागकरोन्कथं कथमपि श्रीरामभूमीभुजा ।
प्रत्यावृत्य महाबलः पुनरसौ द्राक्चन्द्रसेनाभ्ययात्
भूपालादयसिंह सम्मुखमयं योद्धुं युधि प्रोद्धुरम् ।।१३७।।

तत्रासीत्तुमुलो रणः प्रतिभटाटोपोत्कटास्फोटित—
स्फूर्ज्जद्विद्युदुदंचदायुध्रवलज्ज्वालाकरालोज्वलः ।
रामेणेव पुरा वटा नृपघटोद्यल्लोहितैः पूरिता
षातः किल लोहियावट इतस्तद्ग्राम नामाभवत् । १३८।।

---

१. बुद्धवान् ।

त बलादुदयसिंहसंज्ञितः सैंहिकेय इव रोपदोषतः ।
सत्वरं समरसाहसी हठात्सत्समग्रबलमग्रसत्किल ॥१३९॥

कर्णार्जुनौ भीमसुयोधनौ वा यथा पुरा लक्ष्मणमेघनादौ ।
रणांगणे रेजतुरेवमेतौ तौ चन्द्रसेनोदयसिंहवीरौ ॥१४०॥

महाबलेनोदयसिंहनाम्ना ग्रस्तोपिचन्द्रः पुनश्चोदियाय[1] ।
विधेर्विधातुर्बलवत्तयावत् ग्रस्तोपि चन्द्रः पुनरभ्युदेति ॥१४१॥

तावुभौ निशितशस्त्रविक्षतौ मूर्च्छितौ निपतितौ रणांगणे ।
सैनिकैः समपसारितौ ततो जीवितौ विधिवशात्कथंचन ॥१४२॥

फलविधिमभिधानतः पुरीमुदयनराधिपतिः समुज्झति स्म ।
अधिकबलमुदीक्ष्य चन्द्रसेनं हसनकुलीयवनाधिपं जगाम ॥१४३॥

प्रौढप्रतापपटुचन्द्रनृपेणवैरं रामस्तु शोज्झतिमवाप्य समुज्झति स्म
तस्यांगजाश्च किल पूरणमल्लकर्णौ वीरः कलाख्य इति—
भूपतिकेशवाख्यौ ॥१४४॥

नारायणस्तदनुराघवदास आसीदेषांकला कमपि कालमिहासरायः ।
पश्चादभूत्कमपि केशवदासरायो माहिष्मतिपुरपतिस्तुस्तुतप्रताप ॥
युग्मम् ॥१४५॥

आदाय सैन्यं यवनाधिनाथादिहाजगामोदयसिंहवीरः ।
निजां पुरीमात्मवशादकार्षीन्न निश्चितार्थाद्विरमंति धीराः ॥१४६॥

फलविधिमवधिं विधाय सीम्न मकबरवीरमियाय सार्वभौमम् ।
मनसि सुखमपूरितप्रतिज्ञाः कथमभिमानधना मनाग्वहन्ति ॥१४७॥

जयतिजलधिवेला मेखलालंकृतोर्वी
वलयवलयमेकेनादधानः करेण ।
अकबरधरणीशो शेषराजन्यचूडा—
मुकुटमणि समुद्यत्कांतिनीराजितांघ्रिः ॥१४८॥

द्विगुणितनवसंख्यद्वीपदीव्यत्प्रतापो
निखिलभुवनचक्षुश्चक्रमानंदयन्यः
विततिमिरवंशोप्येष शश्वत्प्रकाश—
स्तरणिरिव चकत्ताचक्रवर्ती चकास्ति ॥१४९॥

---

१. पुनरोदियाय ।

अर्व्वांच्चो नैव सर्वावनिवलयभुजो विक्रमादित्यमुख्याः
प्रांचः प्रभ्रष्टराज्याः बलिनहुषहरिश्चन्द्रसंज्ञाः क्षितीशाः ।
देवा एकैकदिक्कास्त्रिदशपतिमुखा गोचरो नैव वाचां
विश्वेशः केन तस्मादकबरधरणीपाल कुर्म्मस्तुलांते ।।१५०।।

कैलाशाभंश्रिता अथ चलमकबरोर्वीश[1] युष्मत्प्रतीप—
ज्वालाभालाललाटं तपतपनतुलत्वत्प्रतापातपेन ।
भस्मावासेवसाना अपि[2] गलितगरा नेशता यांति यावन्
मौलौ त्वत्पन्नखेंदुं दधति न च दयाद्दृष्टि गंगाजटासु ।।१५१।।

षट्पदो

गोकुलकालनकलुषमाकलय्य कलिकालिमनि—
चकित चकितमध्यासवासमर्द्ध पदमध्यवनि ।
अकबर नृपवर भवति भवति भुवनभृति राजनि
जंतुजात वध-जात वृजितमनुचितमिति नाजनि
इह धर्म एष गोरूप इति निर्व्विशंकचित्तः स्फुरति
चरणैश्चतुर्भिरुन्नतिककुदश ककुप्सु नित्यं चरति ।।१५२।।

तेन मानबहुदानविधानैस्तोपितः सुखमुवास स सिंहः ।
चंद्रसेननृपतिस्तु पदे धादास कर्णमनुजं स्वे ।।१५३।।

स्वर्गं गते नरपतौ किल चन्द्रसेने जाग्रत् समग्रमतिरग्रज उग्रसेनः ।
द्रागासकर्णनृपतिश्च परस्परेण सुंदोपसुंदविधिना विधिना—
हतौ तौ ।।१५४।।

तदनु तदनुजन्मा रायसिंहाभिधानो गलितसकलरत्नस्वर्णनेपथ्यकांति ।
विनिहतबंधुवीरं स्वं कुलं शोचमानः शरणमुपजगामोर्वीशजल्लाल—
दीनम् ।।१५५।।

खूमाण[3]राणोदयसिंहसूनोः सहायहेतोर्जगमालनाम्नः ।
संप्रेषितः श्रीमदकब्बरेण रणे हतः सोर्बुदनायकेन ।।१५६ ।

---

१. प्रतीपा । २. गिलित ।
३. संप्रेषितः श्रीमद्कब्बरेण ।

अकबरयवनेश्वरेण तोषादुदयनृपे निहिताशु राजलक्ष्मीः ।
घनसमयविकीर्णमंबुवेल्लद्यदिह गभीरभुवि स्थिरत्वमेति ।।१५७।।

दिनमिवदिनकृन्निशं यथेन्दुः कनकविभूषणमाप्य चारुरत्नं ।
निजजनकपदं प्रपद्य रेजे तदुदयसिंहनृपः पदं च तेन ।।१५८।।

अथ योधपुरं प्रपद्य सद्यः कृतीनामिह नंदयन्मनांसि ।
सबलः प्रथमं किल प्रतस्थेऽर्बुदनाथोपरि रायसिंहवैरात् ।।१५९।।

सिचंतः सततं महीं मदगजाः दानद्रवैः सर्वतो
नाद्याप्यश्वगणाः[1] स्पृशंति धरणीं मत्वार्त्तवं बिभ्रतीम् ।
तत्किं व्योमरजःप्रसारिपटलप्रच्छन्नमाकल्पितं
सेनासंकुलवर्त्मयंत्रितहयस्त्वैरप्रचाराभटाः ।।१६०।।

यत्पापं व्यरचि छलाद्यदवधीत्तं चन्द्रसेनात्मजं
पश्चात्तापमविंदतोदयमहाराजे समभ्यागते ।
सद्यस्तत्फलमन्वभूत्सुनयनावृंदै सह व्याकुलो
यद्भ्राम वने वनेचरजनैः सार्द्धं शिरोहीश्वरः ।।१६१।।

माद्यत्सिंधुरधोरणीभिरभितः संमर्दिता सा पुरी
सार्द्धं राजगृहैस्तथा नहि यथाऽसीत्प्रागिति ज्ञायते ।
यन्नारायणमन्दिरं नृपतिनानेनावशेषीकृतं
(त) त्व[2]स्याजनि केवलं निजजयस्तंभः सदाभ्रंकषः ।।१६२।।

अद्य यावदुररीकृतं ततो दंडमर्प्ययति चंडतेजसो ।
त्यक्तगर्वभयमर्व्वमर्व्वतामव्वुंदं कनकमर्बुदेश्वरः ।।१६३।।

तस्यायं क्षितिपालमंडनमणे राजानुबाहुर्युवा
शालप्रांशुरतिप्रसारिहृदयः पीनोन्नतांसः सुतः ।
राजाराजशिरोमणि विजयते श्रीसूर्यसिंहाभिधः
सेवंते गुणवत्तयैनमपरे ज्येष्ठा कनिष्ठा अपि ।।१६४।।

अक्षयराजः पूर्ववदनु च भगवंतदासाख्यः ।
तदनु च नरहरिदासस्तदनु जनिर्जैर्नृसिंह इति ।।१६५।।

अनु शक्तसिंह दलपतिभूपतयो माधवाभिधः सिंहः ।
अनुकृष्णसिंह एते सर्व्वेस्मिन् भ्रातरो भक्ता ।।१६६।।

---

१. स चस्या । २. नाजानयगणाः ।

क्षमः प्रजानां परिपालनाय भवेत्पुनः दुर्जनतर्ज्जनाय ।
ज्यायान्कनीयानपि वा स राजा यथा यदुः पांडु[1]यशाश्च—
पांडुः ।।१६७।।

सेवते नेककुल्या जनपदपतयः शौर्यधैर्यकवास—
स्तन्मध्ये विद्धि भाटी यदुकुलतिलकोऽमात्यमित्रं तदस्य ।
वीर्यौदार्यादिनानागुणगणनिलयो नाम गोविंददासो
यो जानात्येक एवाखिलभुवनतले स्वामिधर्मस्य गर्म ।।१६८।।

येन्ये शोज्झति मेरुताधिपतयो दर्पादवज्ञाकृत—
स्तान्बंधूनपि शक्तसिंहकजगन्नाथादिकान्प्रोद्धतान् ।
युक्तं यद्वयुदवासयज्जनपदांस्तेषां चकारातमसात् ।
राज्यस्य स्वजनैर्विभक्तविभवस्याज्ञौ वराज्ञां फलं ।।१६९।।

यत्प्रोद्यद्दलदारितक्षितितलस्त्रस्तः समस्तक्षणं[2]
देवो देवडभूभुजामपभुजा गर्व्वः परिभ्राम्यति ।
दंडद्रव्यचयस्य संचयविधिव्यग्रः सदोग्रस्तुव—
न्निद्रां मंक्षु निशि क्षुधां न लभते दुर्द्दीनचक्षुर्दिनो ।।१७०।।

अनेक राजन्यककन्यकानां जग्राह पाणि विधिवद्विधिज्ञः ।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य कांतं रेजे यथा दक्षसुताः सुधांशुम् ।।१७१।।

यज्ञैर्विज्ञः समज्ञो ज्वलितदशदिशो नंदयित्वा स देवा—
नात्मानं पुत्रलाभात्पितृऋणनिगडान्भावतुकामः स्वनाम ।
आरेभे पुत्रयाग[3] दशरथनृपवर प्रीणयन् हव्यवाहं ।
विद्वद्दारिद्र्यदावानलशमनमनः स्वर्णधाराः प्रवर्षन् ।।१७२।।

वरममरसरः पतेरिव श्रीः समजनि दुर्जनशल्यनामधेयान् ।
द्रुपदनरपतेः पुरेव कृष्णा गुणनिधिरंगजनुर्ललाम कृष्णा ।।१७३।।

विलसितबहुलावरोधभर्तु गुणनिचयेन मनोविनोदभूमिः ।
समभवदनीपतेः परं सा गिरधरमूर्त्तिधरस्य राधिकेव ।
युग्मम् ।।१७४।।

---

१. पांड ।   २. समसूक्षण ।
३. पुत्रीयेष्टि () ।

सा श्रीविष्णोर्यज्ञमूर्त्तेः प्रसादात्पुत्रं लेभे सूरसिंहक्षितीशात्
यद्वत्पंक्तिस्यंदनाच्चन्द्रकान्तं कौशल्या श्रीरामचन्द्रं नरेन्द्रात् ॥१७५॥

अहितगजघटाविघट्टनेषु प्रभवति विक्रमभूम्नि सिंहवद्यत्
अकबरनृपतिश्चकार नाम्ना तनुजमरिंग गर्जसिंहमित्यभिज्ञः ॥१७६॥

इति श्रीसूरप्रकाशे माधवभट्टकृतौ तृतीय सर्गः ।

भूमीरंजनगुर्ज्जरं जनपदं ज्ञात्वा चकत्तेश्वरो
ग्रस्तं साहिवहादुरान्धतमसा त्वां युक्तमायोजयत् ।
लोकं यत्परितः प्रकाशयितुमुद्धर्तुं च वेदक्रियाम्
चक्रे नंदयितुं तमस्तिरयितुं सूर्यात्परः कः प्रभुः ॥१७७॥

युद्धेऽकारि महान्वहादुरनृपः श्रीसूरसिंह त्वया
पर्ज्जन्योर्जितगर्ज्जगुर्ज्जरसुरत्राणस्तथा जर्जरः ।
भ्रष्टोत्साहमसाहसः स समरे[1] भीरुर्यदद्यावधि
भ्राम्यत्यद्रिदरीसमुद्रलहरीकांतारकुञ्जान्तरे ॥१७८॥

साम्राज्यं गुर्ज्जरेषु व्यरचि तदनु त्वादर्शि जल्लालदीनः
तस्याज्ञातो विजेतुं समगमि च दिशा दक्षिणा तत्क्षणेन ।
तत्र श्रीखानखाना नरपतितिलको वंदिपादारविंदे
शिक्षंतुं (?) स्वामिभक्तिं भुवननृपतयः सूरसिंहक्षितीशान् ॥१७९॥

त्वत्तःसाहिनिजामदुर्ज्जयदलाधीशोथ भंगाभिधो
भूयोभिर्हवसिव्रजैःपरिवृतो भंगाकुलो भ्रान्तवान् ।
राजूराजिषुराजराजरजसा त्वद्वाजिराजोखुर-
क्षुण्णेनावृतनेत्रपालिरभितो भ्रश्यद्दृश[1] भ्राम्यति ॥१८०।

स्फूर्ज्जद्गर्जवतो दिशो घनघटापूरैः समावृण्वतो
दृष्ट्वाडंबरमंबरस्य चकितैर्द्राग्राजहंसैर्द्रुतम् ।
सद्यस्तत्प्रविघट्टने पटुतरं त्वां[2] सूर्यमायोजयत्
पुत्रं च प्रबलप्रभंजनमिव श्रीखानखाना प्रभुः ॥१८१॥

प्रति हवसिबलं ततः प्रतस्थे सह मिरजामणिनैरिजाभिधेन
तुरगखुरपुन्थन्थधूलिपूरैः प्रतिनृपमंबरमंबरं च रुन्धन् ॥१८२॥

---

१. स मरे ।

१. भ्रश्यन्स्मृश । २. श्चासूर्यं ।

सूर्यस्यास्य शनैश्चरस्य हवसिन्नातेशितुश्चाभव—
द्योगः कैश्चन वासरैः सबलयोरागच्छतो सम्मुखम् ।
नैतस्यात्मविचारणा किल रणे काचित्तथासीद्यथा
बालश्रीमिरजैरिजावनकृते चिन्तासमन्तादभूत् ।।१८३।।

अत्रान्तरे चंडरुचौ चरमाचलचुंबिनि
अध्वश्रमपरिश्रान्तं निविवेश बलद्वयम् ।१८४।।

उदियाय च चक्रचक्रवै वोपशमप्रक्रममूलमंत्रमूर्तिः ।
दिनकृन्नृपतिश्च स व्यधात्स्वबलोद्योगविधिं विचक्षणः ।।१८५।।

सद्यः सन्नह्य (... ....) ति[1] दलयुगे वीररोमांचवर्ष्यैः

प्रोद्यद्भिर्भूरिभेरपटुपटहरवैः पूर्यमाणे दिगंते
प्रातः स्नातः प्रसन्नः कृतनियतविधिः पूजयित्वा स जिष्णुं
श्रीकृष्णं कोमलाभिः स्तुतिभिरिति तदा तुष्टुवे सुष्ठुवेषः ।।१८६।।

नमस्ते समस्तेशविद्यप्रशस्ते नरस्तेऽर्चकस्तस्य हस्ते जयश्री
जयश्रीपतेभक्तहृद्दीपते कोप्यवा चीयते भीतिभिर्लिप्यते न ।।१८७।।

न कश्चित्कपर्दीनगदेहमर्दी न जंभप्रतर्दी तदुद्दीपनाय
सदानंदरूपं सदानंदसूनुं विजानंति ये त्वामजानंत मूर्त्ति ।।१८८।।

नमः काममूर्त्ते मनष्कामपूर्ते सदारामविश्रामभूमेर्मुनीनां ।
लसत्पद्मदाम त्रिलोकीललाम स्फुरद्धाम तत्ते नमामः स्मरामः ।।१८९।।

नमः कंसविध्वंसिने शंसिने ते नमः केशिविभ्रंशिने वंशिने ते ।
नमस्तेस्तु कृष्णाय कृष्णातिलज्जापरित्राणसज्जाय हृज्जागरूक ! ।।१९०

नमोनाम गोपाल गोपालनायोल्लसद्धस्तविन्यस्तगोवर्द्धनाय ।
नमो वल्लवीचारुदृक्पल्लवीवित् नमः पोतविस्फीतदावानलाय ।।१९१।।

नमः पारिजाताय हर्त्रे विहर्त्रे हरेर्गर्वसर्व्वस्वविच्छेदकर्त्रे ।
नमः सत्यभामाभिरामाय तुभ्यं गुरुस्वर्णचंचत्सुपर्णप्रवर्ण ।।१९२।।

---

१. छंदसि दोषत्वम् । सन्नह्य क्षुब्धैः प्रति 'इति सुतरां ज्ञेयम् ।

सुधाम्ने सुधाकर्षिणे ते जगद्ध्वंवे सिन्धु निर्मथनाय ।
नमो मोहिनीरूपिणे यूपिने ते नमोदैवतद्रोहकृन्मोहकर्त्रे ॥१६३॥

नमस्ते प्रमत्ताय सत्तामहिम्ने नमो रेवतीदेवतीभूत तुभ्यम् ।
वलाय प्रलंबप्रहर्त्रे हलाग्रोच्छलत्सूरसूतांबु पूरच्छलाय ॥१६४॥

तमालं तमालंबनं हेमवल्या अहल्याशिलाशापशल्यापनोदम् ।
वृतं वीरल[1]क्ष्मीलसल्लक्षणेनान्वितं लक्ष्मणेनाखिलक्ष्यीकरोमि ॥१६५॥

नमो निष्कलंकाय लंकाधिनाथ क्रुधा बद्धपाथःपते पुण्यगाथ ।
घनाभाय ते पद्मनाभाय योगिस्फुरच्चित्तलोभायितामात्र तुभ्यम् ॥१६६॥

इति प्रस्तुवन्वस्तुतस्तं नृपालः तमालोकयद्रूपमत्यद्भुतं तत् ।
परीक्षिद्यथा रक्षितं स्वं स मेनेऽनुभावी जयश्चान्वभावीहृयेन ॥१६७॥

अत्रांतरे निशितशस्त्रनिपातजन्मा कोलाहलः कलहकेलिबलद्वयस्य ।
आविर्बभूव भुवने भयमादधानो भूप प्रणम्य भगवंतमथ प्रतस्थे ॥१६८॥

गीर्वाणैः किमु गीयसे गरुड किं गर्व्वं गते गाहसे
गोविन्देन गजेन्द्रमोचनजवान्मंदः पथि प्रोज्झितः ।
रुद्धा योगिजने प्रभंजनगतिश्चेतः परे तत्पदे
कुंठं कंठरवैरिमान्किमिति धिक्कुर्व्वंतमर्व्वेश्वरम् ॥१६६॥

नद्धवर्ममुकुटोधृतहेतिर्देवराज इव देवतुरंगम् ।
आरुरोह स सरोरुहचक्षु विक्षिपन्निव दृशेव विपक्षान् ॥२००॥

संघट्टं कटकद्वयस्य करटिद्वंद्वोत्कटास्फालित-
तुद्यद्दंतबलोच्छलच्छकलरुक्किर्मीरिता नेकदिक् ।
संदष्टोष्ठपुटोद्भटप्रतिभटप्रक्षिप्तकौक्षेयक
प्रोद्यत्कातरकांतिहृत्कटध्वानः समंतादभूत् ॥२०१॥[2]

किं भीष्मः किं नु भीमः किमुत स भरतः कि सहस्राज्र्जुनो वा
किं वा वोराधिवीराः क्षितिपतिमणयः श्रूयमाणाः पुरीणाः
दृष्टश्चेदेष वीरः समितिहबशिनः कालयन्कालरूपः
कोपाल्लक्ष्यात्मपक्षाधिपतिमपि रिपुं योऽजयद्दुर्विजेयम् ॥२०२॥

---

१. वीरक्ष्मी । २. छन्ददोषः ।

युद्धप्रोद्धुरगर्व्वपर्व्वत महावीराधिवीर प्रभो
सूर्यक्षोणिमणे रणे प्रहरणे दत्तैकचित्तस्य ते ।
बद्धभ्रूकुटिरक्तलोचनयुग दृष्टौष्ठमुत्पश्यतो
मातंगा मशका इव प्रतिभटाः प्रांते पिपीला इव ॥२०३॥

यन्मातंग कदंबडंबरमपि त्यक्त्वा क्षणादंबर-
चित्रं देवदिगंबरः समभवद्वेगाद्दिगंतं गतः ।
तत्तं खंडयतः प्रचंड सुभटोदंचत्प्रपचं पुरो
दीव्यत् त्वद्भुजदंडविक्रमगुरोर्योगस्य विस्फूर्ज्जितम् ॥२०४॥

यन्नामश्रीनिजामप्रबलबलपतिग्रामसंग्रामभूमौ
भूमीभृन्मालदेवान्वयतिलकमणे सूरसिंह व्यधायि ।
तत्स्यंदत्कज्जलास्रैर्हबशयुवतिभिर्व्यक्तमालेखि सिंधौ
द्वोपाधोशैरधीतं निरवधि विविधां दुर्विधामादधानैः ॥२०५॥

संत्यक्ताः सिंधुरास्ते समितिनिपतिता बंधवोबंधुराश्च
व्यक्तं मुक्तं यशस्तद्भुवनभरभृतामंबरः प्राद्रवद्दृक्
दिङ्मूढः प्रौढिहीनो हृतनिखिलबलो हंत गूढः कथंचित्
निव्यूढः किन्तु तद्वत्पुनरतिचकितस्तत्पथं नाधिरुढः ॥२०६॥

अपहृतमनद (?) कुंजराधिराजभ्रमदलिगुंजितमञ्जुगीयमानां
परसमरजयश्रियं दधानः स निववृते मिरजैरिजेन सार्द्धम् ॥२०७॥

खानखानवसुधावसुधाम्ना वर्द्धितो विविधवस्तुविधानैः
आगरानगरमेत्य चकत्ताचक्रवर्त्तिचरणौ स ववंदे ॥२०८॥

पथिषु चिरवियोगोत्कंठिताभिः प्रजाभिः
प्रतिपुरमभिनद्यै मंगलैर्नंद्यमानः
अकबरधरणीशप्रेषितस्तोषपूर्वं
निजनगरमुपायान्नंदितानेकलोकम् । २०९॥

शृंगारितप्रांतचतुष्पथापणं सुमंगलोद्गीतिनिबद्धतोरणं
महाजनैर्जीवजयेतिवर्द्धितः प्रविश्य तद्योधपुरं समृद्धिमत् ॥२१०॥

गवाक्षजालैर्जलजाननाकरप्रमुक्तमुक्ताकरवर्षहर्षितः
द्वार्युल्लसत्पल्लवकुंभसुंदरं विवेश राजा निजराजमंदिरम् ॥युग्मम् ॥२११॥

विमुक्तमुक्ताफलराजिपूरितप्रभास्फुरद्राजत पात्रवर्तिभिः
नीराजितो मातृजनैर्विलोचनैरालिंगितश्चोत्सुकसुंदरीजनैः ॥२१२॥

स वदयित्वा गुरुवृद्धदेवान् संभाव्य चामात्यजनान् क्रमेण
आनन्दयन्नुत्सुकदारवर्गमंतः पुरे नेकसुखान्यभुक्तः । युग्मम् ।।२१३।।

एणशावनयनानिकुंरवैर्नैकभोगभवनं भुवनेशं
आजगाम ऋतुराजवसन्तः सेवितुं सुभगमत्र वसंतम् ।।२१४।।

मृदुमलयसमीरा दोलनास्तीर्णपुष्पाः
परभृतकमनीया लापलालित्यवन्तः
अहह ! विरहभाजो मंजुगुजद्विरेफा
मन इह हि निकुंजाः कस्यनोद्वेजयंति ।।२१५।।

उपरि विकसितानां माधवीमंडपानां
भ्रमदलिनिकुरवं स्निग्धजीमूतकांति ।
अवहितमवलोक्योत्कंठितश्चारुकूजं
तरलयति शनैः स्वं पिच्छभारं मयूरः ।।२१६।।

इह मनोजनुषः सहकारिणीमुदित गुंजदलिव्रजचुंबिता ।
अरमयत् कुपिता अपि कामिना न सहकाः सहकारजमंजरी ।।२१७।।

विरहिणीहृदयप्रविदारणो छलितशोणितशोणरुचिर्भृशम् ।
मधुमृगेन्द्रनखालिरिवालसन्नवपलाशततिर्वनराजिषु ।।२१८।:

विरचयति मतल्ली [.....................] प्रसून
प्रकरकनकमल्लीप्रांतभागे विभज्य
कलय मालिनि मानं लक्ष्य चेतांसि यूनां
मलिनयितुमनंगः संगिभृंगच्छलेन ।।२१९।।

इह दिशि दिशि फुल्लद्वल्लरी पुष्पजात-
प्रचरदतुलगंधां दोलयां लंबमानम् ।
मधुकरनिकुरंबं कीलितव्यालभोग-
भ्रममुपजनयन्न क्वापि यांत्यबरस्थम् ।।२२०।।

स मधु मधुरिमाणमीक्ष्यमाणो
मृगनयनामिलितो मनोजमूर्तिः
उपवनभवनं विवेश रंतुं
मदनमहोत्सवकेलिकौतुकेन ।।२२१।।

अर्प्पयन्नवरसालमंजरीः खंजरीटनयनावशंवदः
मादिनं मदनदेबमर्च्चयामास भासुरविलासलालसः २२२।।

सानुकंपमिव मल्लिमतल्लीः कंपयन्किमपि चंपकवल्लीः
वापिकांबुकणहारविहारी मारुतः सुखयति स्म रतांते ।।२२३।।

इत्यनंतरसुखान्युपभुंजन्मंजुगुंजदलिपुंजवनेषु ।
भूपतिः सुखयति स्म स पौरान्पूरितार्थिजनमानसवृत्तिः ।।२२४।।

अस्तंगते साहिजलालदीने दीनेक्षणे भूभुवने क्षणेन
राहुग्रसन्गुर्ज्जरराजचन्द्रान्बहादुरः प्रादुरभूत्स भूयः २२५।।

कैश्चिद्दुष्टविलोचनैरिह यथावत्स्वं नृपं कल्पितं[1]
त्यक्त्वा स्वामिपरिग्रहं पथि वृथा भीमैर्द्रुतं कैश्चन ।
कैश्चिन्मूढवदासित विलसितं खद्योतवत्कैरपि
श्रीसूर्येण समस्तधर्मधुरमुद्धर्तुं तदा धावितम् ।।२२६।।

आविर्भावविभासितोदयधरा धारेण धावत्तरै
र्वाजीन्द्रैः समुपेत्य लोकनयनालोकं[2] समातन्वता
श्रीसूर्येण तथा बहादुरतमो व्यापादि यद्भूतला
द्दूरीभूय कुलाचलोदरदरीगर्भेष्वपि भ्रश्यति ।।२२७।।

आसीद्दुर्दंडदुष्टप्रदमननिपुणः सर्वतः सार्वभौमः
श्रीमज्जल्लालदीनक्षितिपतितनयः श्रीजहांगीरवीरः ।
सद्यः प्रोत्साद्य शत्रूस्त्वरितमयमुपेत्येह[1] दृष्टः प्रहृष्टः
कोप्यन्यः सूरनाम्नः किमपि कलयति स्वामिधर्मस्य मर्म ।।२२८।।

कैश्चिन्निश्चितमन्यथा कलयितुं कैश्चिच्च दोलायितं
कैश्चिद् भूरि विचारितं सचकितं कैश्चिच्चिरादागतम् ।
अन्यैरेत्य विलज्जितं तदपरैर्न्यक्कारशालायितं
श्रीसूर्यं क्षितिपाल तत्रभवता भूयः प्रकाशायितम् ।।२२९।।

वीरः श्रीमन्नुदारे तव मनसि जयोत्साहभाजि प्रकामं
विस्तारं यात्यमुष्मिन्नणवतिवसुधाविंदवन्त्यश्चयोऽपि:
श्रीसूर्यक्षोणिपालोन्नतिभृति तु पुनः प्रांतशलं तिके चित्
शैलाः कैलाशमेरुप्रभृतय इतरे सर्वतः सर्पयंति ।।२३०।।

---

१. वस्त्वन्यपृकिल्पितम्
२. लोकयनालोकन्
१. शत्रूस्त्वरित

श्रुत्वा व्यासमुखात्पुरातनकथा: कौंतेयकर्णादिका
स्तास्ता विस्मयवत्तरा न हि विशश्चासास्मदीयं मनः ।
सत्यासत्ययुगव्यवस्थितिरिति प्रत्येति चित्तं चिराद्
दृष्टे श्रीमति सूरनामनि महाराजाधिराजे त्वयि ।।२३१।।

उद्दामानेकवासः परहितनिरता चारमंता महोक्ति-
र्नित्यं मत्या परीतः कलममृतधरो मानिभिः सेवनीय
मेयः सद्भिर्वरस्त्रीपरिजनरमितो नमगोष्ठोप्दभिज्ञो
वीरः श्री सूरसिंह त्वमिव तव रिपुर्ज्ञायते तत्र मोहः ।।२३२।।

क्षीराब्धिप्रभवा विलासवसतिः पद्मं यदाकर्ण्यते
तत्ते लोचनरूपमेव कलये श्रीसूरसिंह प्रभो ।
लभ्यंते कथमन्यथा करुणया स्यंदत्यमुष्मिन्नितो
रत्नौघा इत उत्कटाः करटिनस्तुंगास्तुरंगा इतः ।।२३३।।

यद्देवासुरकारणाद्विरचितं श्रीसूरसिंह प्रभो
प्राक् तच्चित्रमदर्थमत्रभवता[1] नेत्रीकृतं मंत्रये ।
सूते साधुषु यत्सुधां रसमसत्स्वन्यं कमप्यन्यतो
विभ्रष्टस्मृतयो यतः प्रतिपदं ते विस्खलत्याकुलः ।।२३४।।

वंशप्रशस्तिरिति राजकनाममात्र
मुक्तं तवेह चरितान्यपि कानिचित्प्राक् ।
श्री सूरसिंह ! कलयिष्यसि यान्यतोनु
वक्षंत्यनेककवयश्च वयं च तानि ।।२३५।।

श्रीसूर्यस्य चिरंतनेन जनुषा य चिह्नितः प्रागभूत्
वंशः संप्रति जर्जरः समभवत्कालस्य बाहुल्यतः ।
श्रीसूर्यक्षितिपाल तं नवयितुं नीतावतारस्त्वया
जीर्णोद्धार वदेष यद्विरचितः श्रीसूर्यशः पुनः ।।२३६।।

वारीवारणयूथपैर्भवतु ते दानद्रवैः पंकिला
वाहैर्मेदुरमंदुरोदरभुवश्चंचत्खुरक्षोदिताः
योधैर्निर्जितवैरिवृंदनिकरैद्वारश्चत्वाराश्चंचुरा[1]
स्वायत्तीकृतवाग्भिरस्तु कविभिः श्लाध्या सदा ते सभा ।।२३७।।

---

१. मत्रमत्रभवता

१. छन्दोभङ्ग परिलक्ष्यते

वित्रस्तैणविलोललोचनलसल्लीलावतीभासुरं
श्रीसूर्यक्षितिभृन्मणे सुखयतु त्वामंतरंतः पुरम् ।
प्राप्नोतून्नतिमुत्तरोतरशुभैर्वंशः सुपर्वप्रभैः
सत्पुत्रैर्भवतः कुलेऽतिविशदे जातानु विंबैरिव ।।२३८।।

आसीद्वेदविदावरोतिविशदे यो वत्सगोत्रै द्विजः
श्रीमान्दानिगणाग्रणी नरहरिः श्रीमालिनामन्वये
येनानेककरत्नमौक्तिकतुलारूढेण रौक्मीतुलां
काश्चित्स्वात्परिवारतोऽनुभवने दास्योपि संरोपिता ।।२३९।।

तत्पुत्रोपि तथैव लक्ष्मण इति ख्यातस्त्रिपाठी ततो
वैकुण्ठः किल येन विप्रवनिता म्लेच्छौघबंदीकृताः
दत्वा द्रव्यचयानमोक्षत ततः सूनुः सतामग्रणी
संजज्ञे हरनाथ इत्यथ ततो विद्वानभूद्विट्ठलः ।।२४०।।

युक्तिव्यक्तिस्तदनुजनुषा माधवेन व्यधायि[1]
स्फूर्ज्जत्येषा भवतु भुवने सूरसिंहप्रशस्तिः ।
दोषं दूरीकुरुत कवयः सदगुणं धत्त यस्मात्
संत सत्यं किल परगुणग्राहिणस्ते प्रशस्ताः ।।२४१।।

एषा कीर्तिपवित्रितत्रिजगतां राजर्षभानां यशो
वर्णालीकविवक्ष्यणेन विविधालंकारशून्यापि चेत् ।
आदेयोत्तमपूरुषैः कलियुगैनोनाशिनी विश्रुताः
वंद्या पामरकीर्त्तितापि यदिव श्रीरामनामावलिः ।।२४२।।

फुल्लतामरसदामभूषितं श्यामलं किमपि धाम कामये
वामवल्लवकृशोदरीदृशोर्यद्वशीकरणकज्जलीयति ।।२४३।।

इति श्रीसूरसिंहवंशप्रशस्तिः चतुर्थ सर्गः ।।४।। श्रीमाधवभट्ट
कृतम्।संवत् १७७७ शाके १६४२ रा आश्विनकृष्ण षष्टी रवि ··· ··········।

---

१. व्यथायित

मातमपोशी अजंट साहब ने की, उसके बाद जब अजंट साहब महलों आते श्रीजी सिरफ ताजीम[1] बगसता, श्रीजी ने उनके अच्छे बरताव के सबब तीन कदम पेशवाई[2] करना जारी किया; और पहले बीड़ा[3] सरदारों को दिया जावे, जैसा और अतर[4] दिया जाता था। साहब ने कहा—'अब हमेश: आना होगा, इसकी कोई जरूरत नहीं' जब से अतर-बीड़ा देना माफ हुवा। जब से दरबारी काम में वा खाणा में बरकदार बीड़ा वा अतर दिया जाता है।

हरचा[5] की सवारी हुई, कुल सिरदार उमराव हाजर हा, उमरावों की तरफ से घोड़ा नजर[6] आया वो वापस हुवा। हरचा का नजराणा मामूली जमा हुवा। मैंने भी हरचे के नजराणे के ४००) नजर किये पर रखाये नहीं गये। हरचा का नजराणा सब की तरफ से यथायोग जमा होता है, जब तक गवरमेंट से गद्दीनशीनी का हुकम सादिर[7] नहीं हुवा रजीडंट साहब ने किसी काम में दखल नहीं दिया और काम भी जरूरी ही होता था। मुख्य खरच का काम था सो खानगी तोर उनसे पूछ लिया जाता था। दरमियान में सिरफ १२ दिन का खर्चा था सो सिवाय मामूली खरच के ४ लाख संकल्प हुये जिसमें मैंने बहुत कोशीश के साथ दो लाख असपताल-मदरसा का फंड में रखाया। पहले महाराना सरूपसिंहजी, शंभुसिंहजी की वगत में १०) सरूपसाही फी नामे दक्षणा में दिया गया था और भी बहुत कुछ खरच हुवा था, इस वक्त बामणों को फी नामे २) सरूपसाही दिलाये गये। इसमें लोगों को बहुत फायदा पहुंचता था इसलिये दो लाख फंड में रखना कोई पसंद नहीं करता था, हाजरवास[8] लोग तो इसके कतैई खिलाफ़ थे।

जब गवरमेंट से छ: महीने की निगरानी का हुकम आया तो रजीडंट साहब ने सब रियासती काम का हाल मुझसे दरयाफत फरमाया और खजाने में जो जमा था वो उनको कह दिया गया और सिरफ इतना ही अरज किया के जमा-खरच का और इजलाऐ-गेर का काम तो मेरे जुम्मे है रियासती

---

१. ताजीम—सम्मान में, स्वागत में आदर प्रदान करना।
२. पेशवाई—आगे बढ़कर स्वागत करना।
३. बीड़ा—पान का बीड़ा।
४. अतर—इत्र।
५. हरचा—हर्ष की (गद्दी पर बैठने के उपलक्ष्य में)
६. नज़र—भेंट स्वरूप।
७. सादिर—जारी।
८. हाजरवास—महाराणा की हाजरी में, सदा पास रहने वाले व्यक्ति।

मुतफरकात[१] काम का बजट संवत् ४० में संवत् ४१ के लिये श्री बड़ा हुजूर ने मुकरर फरमाया वो साहब को मुलाहजा कराया, साहब बजट देख बहुत खुशानुदी जाहर कीदी। इसमें आमद होती है वो खजाने दाखल होती है, इस बजट माफक खरच करने में इक्त्यार हांसल है, मामूली खरच में भी कमी रहती है, सिवाय खरच जितना होता है वो मंजूरी से होता है। जूड़ीशल काम मेरे जुमे नहीं है और न मेरा दखल है, अलबत्ता महदराज सभा का मेंबर मैं भी हूं, जिस पर फरमाया—आप अपना काम बदस्तूर करते रहो, सिवाय खरच बाबत मुझसे पूछ लिया करो। महदराज सभा का काम बहुत चढा हुवा था वयुंके श्री बड़ा हुजूर खेद के सबब रोबकारों[२] पर हुकम व इस्तस बाबत मिसलों का काम नहीं फरमा सकते थे, साहब ने यह तरीका कर दिया के पेशी का मुंशी और दो-दो मेंबर हफतेवार बदली होकर कोठी पर आया करे, उनके सामलात से सब रोबकारें मैं निकालूंगा और जो संगीन मुकदमे हैं वो हफ्ता में दो दफे मैं आऊंगा सो दरबार और हम व मेंबर बैठकर निकाला करेंगे। इसी तरीके से काम जारी हुवा। आठ दिन मेरी भी रोबकारें निकालने में बारी आती थी। साहब ने इस तजवीज से छः महीने में जुडीसल काम बहुत कुछ साफ कर दिया, बलके चढा हुवा काम भी निकाल दिया गया। छः महीना बाद फिर साहब ने कोई काम नहीं किया, सब काम दरबार में होने लगा।

बड़ा हुजूर के देवलोक होने पर परदेस के पामणा-पई[३] और रियासतों के मोतमीद[४] वा खुद जैपुर, जोधपुर, किशनगढ, ईडर महाराज पधारचा।[५] रेल चित्तोड़ थी, मेरा अखीर साल तक ज्यादा हिस्सा वक्त का इन्हीं लोगों के चित्तोड़ से यहां लाने और उनके आराम के बंदोबस्त में खर्च होता था। इसमें खर्च भी बहुत हुवा। जैपुर महाराज ने श्री हुजूर के बाईजी साहब से सादी की बहुत ही ख्वाहिश कीदी लेकन नामंजूर फरमाई। जैपुर महाराज साहब के बाई की शादी कुंवरजी बापजी[६] सुं करार पाई जिसकी तहरीर महक्मे-खास से जैपुर कोनसिल के नाम लिखी गई लेकिन वर्ष २ वर्ष के बाद ही जैपुर बाईजी का इन्तकाल हो गया।

---

१. मुतफ़रक़ात—हिसाब की भिन्न-भिन्न रकमें।
२. रोबकारों—आदेश पत्र—हुक्मनामे।
३. पामणापई—मेहमान। ४. मोतमीद—विश्वस्त व्यक्ति।
५. जोधपुर से महाराजा जसवंतसिंह, कृष्णगढ से महाराज शार्दूलसिंह, जयपुर से महाराजा माधवसिंह तथा ईडर नरेश केसरीसिंह।
६. महाराणा फतहसिंहजी के कुंवर भूपालसिंहजी।

गद्दी नशीनी की खिदमत के बाबत फिर इस माफक अंगरेज अफसरों का चिट्ठियें आईं ।

It gives me great pleasure to place on record the high opinion I have of Rai Bahadur Mehta Panna Lal Munshi of the Mahkma Khas of Mewar. I have watched the work done by this very excellent official with the greatest interest and satisfaction, and it has been my pleasing duty, on more than one occasion to bring his good services to the notice of the Government of India by whom he has been honored with a title.

H H. The Maharana has in Mehta Panna Lal a most loyal and excellent servant.

I hope to hear often of his well being.

E R. C. Bradford

22 March 1887

Agent to the Governor General
for Rajputana



My dear Rai Pannalal,

Residency,
Udaipur, 31st Oct. 1888

On this the third occasion of my relinquishing the office of Resident in Mewar, it gives me sincere pleasure of again thanking you for the useful and valued assistance, you have always rendered me in the discharge of my official duties.

I, have had, as on a former occasion, to mark with sincere appreciation the wisdom and foresight which you have brought to the discussion of all official matters, as well as, to note the watchful guard. you have maintained with reference to anything affecting the interests of the Mewar State.

The marked improvements which is ever manifest, in many of the most important departments of the State administration is, I am

aware, mainly due to your initiaitve and to the energy, intelligence and honesty, single mindedness with which you carry out your difficult duties.

I trust that you may, for many long years be spared to continue to the State of Mewar more valuable services by which she has already so greatly benefitted.

I heartily wish you every success and I shall be ever interested in hearing of your welfare and in that of your son and family.

I am my dear Rai Pannalal.
Yours Sincere Friend
C. B. Evan Smith, Colonel
Officiating Resident, Mewar.



My dear Sir, Oodeypore, 28 Dec. 1890

In saying good bye I wish to tell you that during my brief stay in Oodeypore to conduct business with you has been a pleasure.

I leave with the impression that in your H. H. The Maharana possesses an able and faithful high official.

Yours truly
H. B. Alebart
Colonel



रीवां भुवाजी साहब, महाराणाजी सरदारसिंहजी के बाई, यहां हो थे। श्री बड़ा हुजूर ने उनको ओर कस्नगढ से महाराणा भोमसिंहजी के बाईजी को यहां पधराए थे, उनकी खातिर बहुत जादा की गई। कस्नगढ वाले तो पहले ही पधार गये थे और रीवां भुवाजी साहब यहां ही थे, उनको लेने को रीवां से होरासिंहजी जो रीवां महाराज के बहुत करीबी भाई थे आये। उन्होंने शोग-भंगाने की अरज की, मंजूर फरमाई। आमेट की हवेली में उनकी तरफ से गोठ वगेरा सब दस्तूर हुवा। श्रीजी पधारे जब जैसे यहां के लोग पधरावणी करते उसी तरह उन्होंने किया। मुझको १ कंठा सोने का रीवां की गड़त का श्री भुवाजी साहब ने बगसा। श्री बड़ा हुजूर को पोशाक

बणवाने का वहुत शोक था, वहुत-सी पोशाकें वेशकीमती जमा हो गई थी वो सब अहलकार, पासवान, चावक-सवारों वगेरे यथा—योग वगस दी गई। मुझको भी एक अचकन सलमा-सितारों का वा एक कोट सलमा-सितारों का वेशकीमती वख्सा गया।

अजंट गवरनर जेनरल व्राडफार्ड साहव तशरीफ लाये। वाद मामूली पेशवाई मुलाकात के तरपोल्यां[1] का चोक में बड़ा दरवार[2] हुवा उसमें गदीनशीनी का लाठ साहब का खलीता और गेणा कपड़ा का थान वगेरे किश्त्यां नजर हुई। तोपां की सलामी हुई। व्राडफोर्ड साहव स्पीच दियो जीमें श्री वड़ा हुजूर की तारीफ व अच्छा इंतजाम रखने वगेरे की कही और दो—पारटी न रखने का उपदेश दिया और कुछ मेरे लिये भी कहा।

अजंट साहव ने, सज्जन निवास वाग व सज्जनगढ[3] का काम श्री वड़ा हुजूर ने वहुत ही वढ़ा रक्खा था, इमारत वढ़ाने के वड़े-वड़े इरादे थे उसको मुक्तसर[4] तोर पर थोड़ा खरचा में खतम कर देने का वंदोवस्त किया।

देवगढ, भेंसरोड़, सलुंवर, उनके पट्टे में निकास-पेसार की तजवीज माफक वसूल करने में अपना दाण में[5] हक था उसका नुकसान जाहर कर वसूली राज की रोक दी थी जिसकी तकरार चलती थी सो उनको हरजाना सलुंवर ३०००), देवगढ १५००), भेंसरोड़ १४००) देना राज से तजवीज कर दाण वसूल कराना जारी कराया और रुका हुवा दाण भी वसूल हुवा।

धांगडचो सगतावतों का ठीकाना है, उसकी गोदनशीनी का मुकदमा महाराणा सरूपसिंहजी के वक्त से चलता था। अजंट साहव दारू का हक वाजव समझते थे, महाराणा सरूपसिंहजी वजेफर ठाकर के भाई ने धांगडचो की तरवार बंधा दी, फेर पंच—सिरदारों ने अजंट साहव की राय से दारू

---

१. तरपोल्यां—बड़ी पोल में प्रवेश करने पर चौक के खुरे पर महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के बनाये हुए संगमरमर के तीन दरवाजे हैं जो त्रिपोलिया कहलाते हैं।

२. दरबार—दि. ४ मार्च, १८८५ को उक्त दरबार हुआ।

३. सज्जनगढ—उदयपुर के पश्चिम में ब्रह्मपोल से २ मील दूर बासंदरा पहाड़ है जो समुद्रतल से ३१०० फिट व जमीन से ११०० फिट की ऊँचाई पर है। शिखर पर जाने हेतु लगभग २ मील लम्बी घुमावदार सड़क है। गर्मियों में रहने के लिये महाराणा सज्जनसिंह ने एक प्रासाद बनवाया था जो उनकी मृत्यु के बाद पूरा करवाया गया।

४. मुक्तसर—मुख्तसर—संक्षेप में।

५. दाण में—चुंगी में।

वालों का हक में फेसला कर धांगड्यो पर कब्जा दिलाने को फोज भेजी लेकन कवजा नहीं हो सका। चंद महीनां फोज वहां रह कर वापिस ग्राई ग्रौर चार गाम वजेफर का जवत किया। इस धांगड्यो के ठाकर महाराणा जवानसिंहजी के वक्त में बागी हो गये थे। इन्दोर के इलाके में वहुत वारदातें करते थे, उस जमाना में बाबाजीसा मोतीरामजी[1] फोज लेकर धांगड्यो गये ग्रौर बहुत कोशीश जां-फसानी झगड़े से धांगड्यो पर कब्जा किया था, वलके उनके बड़े वेटे मूलचंदजी वहां ही काम ग्राए, उनकी बहू जाजपुर में सती हुवा। बाबाजीसा मोतीरामजी को इस खिदमत में पालकी ग्रौर उसके खरच में गाम मोतीपुरा इनायत हुवा। वजेफर ठाकर के भाई के चलने पर[2] फिर लछमीलालजी हाकम जहाजपुर ने धांगड्यो पर कब्जा कर लिया ग्रौर ठिकाना खालसे में रहा। दारुवाला ग्ररजाऊ हुवा, ग्रजंट साहब ने उनका हक समझ धांगड्यो उनको दिलाने की राय दी। मैंने श्रीजी को ग्ररज की— धांगड्यो न दिया जावे, ग्रौर कोई गाम उनके गुजारे माफिक दे दिया जावे लेकिन भींडर महाराज मदनसिंहजी इसके मददगार थे सो धांगड्यो दारु-वाला ने दिलाया गया। इसके सिवाय कोई ऐसी भारी काम ग्रजंट साहब ने न किया ग्रलवत्ता बृजनाथजी तालुक वैपार में बहुत रकम फसी हुई थी जिसकुं समेटणे बाबत ताकीदी खत जारी किया।

इसी ग्ररसे में पेमाइस होकर बंदोवस्त के कागजात तईयार हो गये थे सो श्रीजी से वींगटे साहब को ग्रौर मुझको बंदोवस्त जारी कराने वास्ते रासमी-परगणे पर भेजे गये, लोगों ने बंदोबस्त में हुज्जत तो की लेकिन समझा-बुझाकर बंदोवस्त मंजूर करवाया। फेर जो पानड़ीयें[3] तईयार हुई थी उसमें जमीन का जमीदारों का उजर था उसकी कमी बेशी दुरस्त करने के लिये साहब राशमी रहे, मेरा इसमें कुछ काम न था, जारी कराने का ही काम था सो जारी करा दिया। फेर मेरे तो गढबोर[4] की बोलमा[5] थी सो साहब से रुखसत लेकर गढबोर-नाथद्वारे चला गया, मायने[6] सुं भी नाथद्वारे बुलाय

१. मोतीरामजी—पन्नालालजी के दादा प्रतापसिंहजी के बड़े भाई एवं महता दीपचंद का पुत्र। ये जहाजपुर जिले के हाकिम भी रहे तथा महता शेरसिंह के प्रधानत्व में उसके सहायक थे। इन्हें महाराणा सरदारसिंहजी के समय कैद किया गया तथा कुछ दिनों बाद कर्णविलास महल के झरोखे से गिरा कर मार डाला गया। यह हत्या शेरसिंह के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से की गई थी।

२. चलने पर—मृत्यु हो जाने पर। ३. पानड़ीयें—जमीन का विवरण।

४. गढबोर—चारभुजा। ५. बोलमा—मनौती। ६. मायने सुं—पत्नी को भी।

लिया फेर जात्रा के वाद नाथद्वारा सु उदेपुर भेज दिया, मैं पीछा रासमी गया। साहव ने भी काम खतम कर लिया। अब किसी कदर असपताल, मदरसों का व सफाई का खरचा वंदोवस्त पर लगाने की साहव की राय हुई, मैंने भी इसमें आम का फायदा समझ कर मुनासिब समझा, लोगों कु जीस तरह हो सका समझा कर मंजूर कराया। ५ वरस पावआनी, रुप्या वाद दस वरस तक आद आनी, पनरा वरस तक पूरण आनी बीस वरस तक वंदोवस्त में आनी रुप्या करार पाया। रास्मी जला का वंदोवस्त करके यहां हाजर हुये। इस खिदमत वावत चिट्ठीयें इस माफक अंग्रेज आफिसरों की आई :



Extract from a letter No. 255 P. dated the 13th Nov. 1880 from Captain A C Jallest first Asst. Agent to the Governor General Rajputana to the Pol. Agent, Mewar.

In acknowledging the receipt of your letter No. 19 P. dated 26 Aug. 1880 and its enclosure, I am directed to request that you will be good enough to convey to Mr Wingate and to Rai Pannalal, the Agent to the Governor General's appreciation of their tact and judgement in dealing with the difficult question connected with the recent dissatisfaction among the Patails.

No. 836 G. of 1880

Above forwarded to Diwan Rai Panna Lal for information.

C. K. M. Walter
Political Agent

Camp Kosital
the 17th Nov. 1880



Dear Sir,

As I am leaving Udaipur I take the opportunity of writing to you, to say, how much I appreciate the work you have performed during my tenure of office, of your conduct during the disturbances that came amongst the Patails last year, I have, on two or three

occasions, submitted official reports to the Agent to the Governor General. Hope you will continue to labour as honestly and conscientiously in the performanee oi you. duties in future, as you have in the past. When in need you will always receive the support of H. H. the Maharana and of the Political Agent. With all good wishes.

Believe me,

Rai Pannalalji — Yours truly

Mewar — C. K. M. Walter

इस बाबत महाराज गजसिंहजी[1] ने बुलाकर मुझे कहा—ये लागतें जो लगाई मदरसा, असपताल की इसमें कुछ नुकसान तो नहीं है ? दूर-अंदेशी से सोची या नहीं ? मैंने अरज किया—मेरी समझ में बहुत फायदा है और जब आनी रुप्या होगा कुल बंदोबस्त जिलों में एक लाख की आमदनी हो जावेगी, इसको मैं किस तरह छोड़ सकता था। फरमाया—साहब लोग पीछा खरच करावेगे, उनका दखल होगा। मैंने कहा—खरच तो बेशक होगा लेकिन मुलक की तरक्की और इंतजाम होगा वगैरे, फिर इसमें होई क्या सकता था।

मुझको गणगोर का मोका पर नाव की बैठक कठेड़ा में बगसी गई और बाग के लिये जमीन तो थी बड़ा हुजूर बगसी ही उसको पीछोले से पीलाई का परवाना कर बगसा और बाड़ा के सामने ३।। बीगा जमीन भी फेर बगसी। फेर महाराज गजसिंहजी ने मुझे फरमाया के—आपकी बहुत बड़ी खिदमत है, कुछ ख्वाहिश वे तो अरज करावो। मैंने कहा—सब खावदा की सुनजर सुं आनंद है, मेरे लिये तो क्या अरज कराऊँ, काकाजी फूलचंदजी को गाम देवस्थान में गेणे[2] है और उठाका कबजा में है और भंडार का रुप्या भी बाकी है, ये सब रुप्या मगरो मुकाते[3] लादा जांरा टोटा[4] रा है सो यां सब की किश्त वे जावे जीं मुजब जमा वेता रहेगा और गाम निकालस वे जावे। लछमीलालजी ने फूलचंदजी के गोद मुकरर कर दिया जावे। जों पर देवस्थान का करीब २० हजार के बाकी हा अर भंडार का ५० हजार के करीब बाकी जीं की देवस्थान को ≡) ब्याज सुं भंडार की बना ब्याज सुं १५००) की किश्त वेर गाम निकालस को हुकम वियो।

---

१. महाराजा गजसिंहजी—शिवरती ठिकाने के महाराज।

२. गेणें—रहन। ३. मुकाते—ठेके पर। ४. टोटारा—हानि के।

महाराज सुरतसिंहजी करजाली वाला ने अजंट साहब की राय से दस हजार को पट्टो देणो तजवीज हुवो सो गाम 'मुखेर' तो दी गई और बाकी पट्टा के वास्ते महाराज मोसूफ 'सायरा' वा 'कणेरा' रा परगणा लेवा री कोशीश कीदी, इनकारी हुई, जीं पर जादा नाराजगी जाहर करता रह्या। आखर ८ हजार रोकड़ सालयाना मिलना करार पाया सो वांको करज चुकावा की तजवीज हुई लेकिन करज तो चुकायो नहीं गयो रोकड़ महावार मिलता रह्या, थोड़ा अरसा बाद ८ हजार माफ कर दीये गये।

बड़ा माजीसा[1] राठोड़जी के २५ हजार, दोई छोटा माजीसाहब[2] के सालयाना १२ (बारा) हजार बंदाया गया। एक वगत दादीजी चवाणजी ने ८ हजार रुप्या बगस्या। जैपुर महाराज अठे ही बराजता हा और दादीजीसा मेड़तणीजी महाराणा सरूपसिंहजी के राणीजी देवलोक हुवा अठा का मामूल[3] माफक रूपेरी-आसावरी[4] ओढाई गई, अठासु जनानी-जनाजो पेटी में ले जावा की तजवीज आयंदा वास्ते हुई।

बाड़ी की जमीन बगसी जी में बाग, मकान बणावा रो खात मोहरत कीदो वा सड़क, नोहरौ वा बगीचर बणावा को मोहरत कीदो।

बड़ा माजीसा, कसनगढ माजीसा दो पोशाक बेशकीमती जनानी मायने[5] बगसी।

जनानी डोढ़ी को काम लालचंदजी जुमे हो सो वांरी तरफ सु बड़ी भारी गलती हुई और प्यारचंदजी की खिदमत मालुम हुई सो उनको सोना का लंगर बगस डोढ़ी को काम वांरे सुपरद हुवो।

लखाड़चा को परगणो गिरवा तालुक वे गयो, उठी ने देवल्या का जिला की शिकायत जादा ही वा धरचावद का पट्टा का भीलां एक बजरंग पलटन का सीपाही ने मार नाक्यो सो भाई तखतसिंहजी ने कुछ फोज लेर वठी भेज्या गया। ठीक तरह इंतजाम कर भीलां ने सजा दीदी अर खास-खास

१-२. माजीसा—महाराणा सज्जनसिंह की ईडर वाली तथा कृष्णगढ़ वाली तीनों पत्नियों से तात्पर्य है।

३. मामूल—दस्तूर।

४. रूपेरी आसावरी—सफेद चद्दर, अर्थी पर ऊपर से डाले जाने वाला कपड़ा।

५. मायने—पन्नालालजी की पत्नी से तात्पर्य है।

चंद मुलजमां ने गिरफतार कर लिया । ईं कारवाई में श्रीजी हुजूर वा रेजीडंट साहब खुश हुवा । श्रीजी भाई तखतसिंहजी के वाड़ी में पधारचा, पधरावणी, गोठ हुई । भाई तखतसिंहजी ने सोना का लंगर वगस्या, संवत् १६४१ में ।

माजीसाहव बड़ा राठोड़जी श्रीजी ने जनाना में बुलाय एक वसीअ्रत को कागद श्री बड़ा हुजूर को दस्तखती नजर कीदो के या वसीअ्रत है और भी कुछ फरमावणो वेगा सो फरमाई वेगा । वारणे पधार मने याद फरमायो, हाजर हुवो । फरमायो-कोठी अ्रजंटसाहब पास चालां, चहरा पर बहुत ही कुन्दगी ही । किश्त्यां को हुकम हुवो, किश्त्यां सवार वे रंग सागर में पधारतां मने फरमाई—माजीसा वसीअ्रत पेश कीदी जीं में पचास हजार को पट्टो बड़ा माजीसा रे, २५-२५ हजार छोटा के, लाख रोकड़ बड़ा के, ५०-५० हजार छोटा के, गादी को हक सोहनसिंहजी को लिख्यो है । मां अ्ररज करी ईं को श्रीजी कुछ फिकर नहीं करे, मां वसीअ्रत की बात को खूब खुलासो कर लियो हे, अ्रजंट साहब सब जगाह जनाना में पूछाय लीदो, वसीअ्रत होवा सुं इनकार कीदो, जस्यो के ऊपर जीकर लिख्यो है, सब हाल अ्ररज कीदो । अ्रबार रजीडंट साहब हुजूर सुं अ्ररज कर ही देगा । सोहनसिंहजी को पहली ही नादावो श्री बड़ा हुजूर कराय कमीस्नर साहब की तसदीक कराय लीदी है वांरो हक लिख्यो वे तो कागद जाली है । कोठी पधारचा, साहब भी तसल्ली कर दी, फेर ५ सिरदार अ्रहलकारां की राय सुं वसीअ्रत की दरयाफत हुई श्री बड़ा हुजूर जस्या दस्तखत मिलाया गया हा परंतु अ्रसल में हा नहीं । माजीसाहब का ही दस्तखत हा, फेर मिसलें दाखल दफतर हुई, ईं बात को कुछ भी अ्रसर नहीं हुवो ।

श्री राणीजी साहब जड़ाव वाई वामणी की मारफत राखी भेजवा को हुकम करायो सो माथे जढायो, ईं को दस्तूर कियो गयो, पोशाक भेजी गई, राखी आई । भाई बीज की गोठ का रुप्या ४० वगस्या, मारी तरफ सुं तीज-गणगोर पर संज्यारो[1] पूगतो रहचो सो १६६८ तक जारी रहचो, जोधपुर महाराज के देवलोक होवा वाद वंद हुवो ।

संवत् ४२ का दशरावा पर धारण करवा रो डंका रो कवजो वगस्यो

---

१. संज्यारो—शृंगार विषयक सामग्री आदि ।

गयो, सिलह की सवारी में, अब केई वरसां सु सिलह की सवारी[1] बंद है।

ईं वरस में श्री हुजूर में श्री बाईसाहब ऊंकारकंवर बाई को जन्म हुवो, मारी तरफ सु बाईसाहब के पोशाक ने ११ मोहरां भेजी गई।

मूं जन्माष्टमी का दर्शण वास्ते संवत् १९४२ नाथद्वारे मय भाभा,-मायनुं[2] के गयो। पाछा आवता देलवाड़े मुकाम हुवो, राज साहब महमान-दारी बहुत आछी तरह सु कीदी। भुवाजी सरसबाई अठे हा सो चेत विद १ हरिसरण हुवा, वांकी गोरण्यां[3] को जीमण पंचायती नोहरा में कीदो।

खबर आई के देवगढ में कुंवरजी वा वांरे बहू रात का पोढ्या सुबे नी जाग्या, कंवाड़ बंद हा, कंवाड़ खोल्या गया, मांय दोई लाशां मिली। उठे तो विशेष कारवाई नहीं हुई, दाग वे गयो। अठा सु तहकीकात वास्ते राय सोहनलालजी भेज्या गया, यां तहकीकात कीदी। रावतजी के काम करवा वाला नथमलजी चुन्नीलालजी पोखरणा, बालकसनजी वगेरा चंद आदम्यां ने हवालात में कर अठे लाया, मिसल पेश कीदी, मिसल सु ये ही लोग मुस्तबह[4] मालुम हुवा। ईं वगत रजीडंट वाल्टर साहब बड़ा साहब वे गया और प्लाउडन साहब रजीडंट आया, वांरी सलाह

---

१. सिलह की सवारी—दशहरा और शरदपूर्णिमा के बीच एक दिन फौज की हाजिरी के लिये मुहल्ला के नाम से नियत होता है। इस दिन महाराणा साहिब व कुल सरदार पासवान वगैरह लोग फौजी लिबास पहिनते हैं, याने सिर पर लोहे का टोप जिस पर तुर्रा कलंगी लगे हुए, बदन पर कवच अथवा हजारमेखी अथवा कड़ीदार बख्तर हाथों में दस्तानें, पैरों में कड़ीदार पाजामें, हाथों में बर्छे वा खाण्डे रखते हैं। घोड़ों की पीठों पर पाखर और मुंह पर बनावटी सूंडे लगी हुई होती हैं। इस सवारी को देखने अंग्रेज लोग भी दूर-दूर से आते हैं। महाराणा महलों से सवार होकर दिल्ली दर्वाजह के रास्ते से सारणेश्वरगढ़ के पास पहुंचते हैं और वहां दर्बार हो कर तोपखानह और फोंज की हाजिरी ली जाने के बाद हाथी सवार हो कर वापस महलों में पधारते हैं।
दे० वीर विनोदः पृ. १३०।
[इसी को मोहल्ले की सवारी कहा जाता है।] उदयपुर सचित्रः पृ. ८८

२. भाभा, मायनुं—माता व पत्नी।

३. गोरण्यां—विवाहिता लड़की की मृत्यु पर पिता के घर मृतात्मा की शांति हेतु किए जाने वाला भोज।

४. मुस्तबह—अत्याचारी, जालिम

ली गई, कमीसन मुकरर कर कामिल[1] तहकीकात करवा की राय दी। विंगेट साहब परसीडंट हुवा, मेम्बर कमीसन भी मुकरर हुवा, मुझको भी कमीसन में मेंबर किया गया। बड़ा बाग में एक महीना तक तहकीकात हुई। कुंवरजी बदनोर परण्या हा, बदनोर वाला भी मुदेई हुवा। एक महीना का अरसा तक तो तहकीकात हुई, नथमल, चुन्नीलाल मुजरम करार पाया, जन्म कैद की सजा हुई। बाकी मुजरम छोड़ दिये गये। जहर-खवानी मालुम हुई, मुजरमों का बयान था के भीतर सगड़ी थी, किंवाड़ बंद थे, कोयला का गेस सुं मृत्यु हुई।

भाई विट्ठलदासजी[2] के मां के ओर भायां के आपस को तकरार बहुत चलती थी। विट्ठलदासजी की मां की अरज्यां पेश होवा पर श्री बड़ा हुजूर कुल यां को पट्टो जब्त कर लीदो कारण मांडलगढ़ का मुकाता का रुप्या भी बाकी हा। खरच के वास्ते किसी कदर रोकड़ मुकरर कर दिया सो विट्ठलदासजी ने आपस में समझाय सब को राजोपो पेश करायो ओर सरकारी रुप्या को देवस्थान को खत कराय ७ सात हजार साल की किश्त कराय गाम ३ देवस्थान तालुक कबजा में कराया, बाकी गामां की उठंत्री हुई। रुप्या ४५००) में हवेली गेणे राख करज देर बाबाजीसा गोकलचन्दजी अठे संवत १९३५ काती सुद १ ने देवलोक हवा सो न्यात को नुगतो बावनी कराई।[3]

मारवाड़ की तरफ सुं कुम्भलगढ की सरहद पर जादा दखल बदावा की शिकायत होवा पर अठा सुं पसंद कर मुकड़ी साहब जो कोटड़ा की छावणी असस्टंट हा, मुकरर कराया ओर मोतमींद जगन्नाथजी ढीकड्या, केसरीलालजी लाला मुकरर हुवा। साहब अस्यो फेसलो कियो के कुम्भलगढ के नीचे मीनारा कायम किया, मोतमीद फेसलो नामंजूर कर वहां से चल दिये। साहब ने मोतमीनो की शिकायत की, ओर क्या हो सकता था। अपील मैंने लिखवाई, प्लाउडन साहब पास पेश कर आबू भेजवा की ओर उनकी सफारस की मेने बहुत कुछ अरज-मारूज की, साहब ने सब बात समझ रीपोट करी के ऐसे दरमयानी फेसले टुकड़े-टुकड़े का वाजब नहीं होगा। मेरवाड़े के

---

१. कामिल—पूरी, संपूर्ण।
२. विट्ठलदासजी—गोकलचंदजी के तीसरे पुत्र।
३. ओसवालों की जाति के समस्त ५२ गांवों के लोगों को मृत्युभोज पर आमंत्रित किया। ५२ गांवों का अंक भोज की विशालता दर्शाने हेतु प्रायः सभी बड़ी जातियों में प्रयोग में लाए जाने की परम्परा है।

तरपटे से सिरोही के तरपटे तक लेन निकलना चाहीये और अफसर कोई मुन्सफ, दोनों रियासतों का बे-तालुक का होना चाहिये वगेरे। जीं पर अपील की समायत वेर हस्वराय कुल लेग़ का फेसला वास्ते करनल वायली साहब मुकरर हुये। यहां से मोतमीद लाला त्रभवनलालजी किये गये। इसके फेसलों में यहां से भी बहुत कुछ मदद देग़ी पड़ती थी, साहब ने सब लेग़ का फेसला किया जिसमें देसूरी का यानि पगल्या की नाल का पहले मेवाड़ के हक में हुवा था, कायम रहा। कुम्भलगढ का फेसला ठीक मेवाड़ के हक में हो गया। इसमें जोधपुर की तरफ से अपील हुई और भी दो चार मुकदमा में हुई, छोटे-मोटे मुकदमों में यहां से अपील हुई कारण के सरहद एक सरे से निकलती थी ताहम गाम-गाम के साथ निकलती तरपटे कायम होते जाते थे। इस कुम्भलगढ के मामले में प्लाउडन साहब ने बहुत मदद दी, मेरी खिदमत बाबत इस तरह से चिठी लिखी।



19th April, 1886

My Dear Sir,

If I had known when I left Udaipur that I will not be able to return there I should have thanked you personally, before my departure, for the cordial assistance which in all business matters I have invariably received at your hands. You have occupied your present high position so long and with such credit to yourself that any opinion which I may express can add but little to the reputation which you hava justly earned and which my predecessors, one or all, have fully acknowledged. Still it is a great pleasure to me personally to have an opportunity of testifying my humble appreciation of the excellent services which, by your prudent counsels and careful conduct of the business of the State, you have rendered to Mewar and to H. H. the Maharana.

Wishing you all prosperity.

Believe me,
Yours very truly
(Sd) J. C. Plowden

प्लाउडन साहब सिरफ २-३ महीनां ही रहया फेर पाछा स्मीथ साहब रजीडंट वेर आया। इसी साल में यानि संवत ४३ में माजीसाहब झालीजी देवलोक हुवा।

रजीडंट स्मीथ साहब ने एक पंचायत के मुकदमे में महकमाखास के काम करने वाले पर ४००) जुरमाना तजवीज किया जिससे कि रियासत का हतक[1] था ओर ना-वाजिब तजवीज थी, फिर वड़ासाहब पास अपील कर जुरमाना भी खारिज कराया ओर मुकदमा भी खारज हुवा।

वींगेंट साहब सहाड़ा का बंदोवस्त सुनाने गये, सहाड़ा जिला में हाकिम महता रुगनाथसिंहजी थे सो वास्ते कमी-बेशी आसामी वार की सफाई के लिए यहां रहकर साहब मोसूफ बंदोवस्त की पानड़चा साफ कराई लेकिन दरअसल रघुनाथसिंहजी जिद्दी आदत के थे इससे साहब मोसूफ ना-खुश रहते, उनसे मेरी दोस्ती महारानाजी श्री सरूपसिंहजी के वगत से ही थी। कमो-बेशी कराने के झगड़े में शिकायत जिला की तरफ से हुई, उसकी तहकीकात वींगेट साहब ने की; कुछ ज्यादती साबित होने पर रुगनाथसिंहजी कुं आठ महीना की महज केद तजवीज हुई वो त्रिजयपोल का दरवाजा पर भुगताई गई। यह हाल लिखने का सबब यह है के ऐक डिगरी अदालत दीवाणी की वींगेट साहब का सिरस्तेदार पर हुई थी उसकी हकरसी के लिये छ: रीपोट अदालत दीवाणी की आ चुकी थी, महक्माखास से मेने वास्ते कारवाई वा-जवाब वींगेट साहब के पास भेजता रहा, कुछ जवाब न आया जद मैं विंगेट साहब के नाम अंग्रेजी चिठी लिखी के यह मुकदमा खास आपका सिरस्तेदार पर है, वो पेश करता है या नहीं ? छ: दफा लिखा गया है, महरवानी कर जवाब भेजें। इसके बाबत मालुम नहीं सिरस्तेदार ने क्या-क्या बातें साहब कुं अरज की मगर ये ही मुख बात उसने जाहर की के रुगनाथसिंहजी महताजी पनालालजी के दोस्त हैं ओर मेने उनके मुकदमे में जिसमें केद हुई सरकारी कोशिश की है उसकी नाराजगी से मुझको फंसाते हैं। इस पर मुझको कुछ पूछा नहीं गया, ऐकाएक मेरी शिकायती रपोट वींगेट साहब की लेकर अजंट स्मीथ साहब ने बड़ा साहब को बहुत सख्त रीपोट की। जब दो-तीन दिन बाद मेरा मिलना हुवा तो दोनों साहब लोग बहुत नाराजगी से पेश आया यहां तक के मेने माफी मांगी तांहम नाराज ही रहे। उसके दूसरे ही रोज आबू से वकील राज का खत मेरे नाम आया के—ऐसा रीपोट आया हे और आपकी बहुत शिकायत लिखी हे इसके लिये मुझको फरमाया है के इसका

---

१. हतक—(हत्क)—अपमान।

हाल उनसे दरयाफ्त करो सो जल्दी जवाब लिखावें। मेने लिखा—मेने जो कुछ कारवाई की दीवाणी की छः रीपोट आने पर की है, मेरी तरफ से कोई कारवाई नहीं की गई, मालुम होता है कि किसी न किसी शख्स ने नाहक शिकायत आप तक पहुंचाई है, वगेरे वगेरे साफ जवाब लिख दिया। उसके जवाब में बड़ा साहब रजीडंट साहब को साफ जवाब दिया के इसमें पन्नालाल-जी ऊपर कोई बात आमद नहीं होती उन्होंने दीवाणी की रपोटों पर कारवाई की है शायद और भी कुछ लिखा हो। फिर तो दूसरी मुलाकात में दोई साहब लोगों ने बहुत मीठी और इखलाक की बातें की बलके रजीडंट साहब ने तो मेरे लिये बाग की डाली[1] भेजा, लेकिन थोड़े दिनों बाद स्मीथसाहब को भरतपुर मुकरर किये, यहां वाल्टर साहब छुट्टी गये थे सो पीछे तशरीफ लाये।

इसी साल में श्री भाईजी साहब, भाभा वा काकाजी फूलचंदजी, काकीजी साथ में तखतसिंहजी बदरीनाथ बड़ी जात्रा पधारया। बदरीनाथ की जात्रा कर अयोध्या सुं काशी पधारया। मारी माता के बीमारी हो गई सो काशीजी में सावण सुद ८ संवत ४३ देवलोक हुवा। बीमारी की खबर आवा पर मैं भी जाने ही कुं था के यह खबर आई, लछमीलालजी जहाजपुर से वा फतहलालजी उनकी मोजूदगी में ही काशीजी पहुंच गये। वहां सब चाल-चलावा अछी तरह हुवा। पुण्य-धर्म और न्यात ओसवालों में सक्कर से भर कर पीतल का घड़ा भेज्या गया। और श्री भाईजी साहब का इरादा रामेश्वर पधारने का था मगर तबीयत ठीक नहीं थी सो बहुत लिखापड़ी करने पर यहां पधारे। मैंने यहां रिवाज माफिक करचा[2] वगेरा की और काती में बावन गामों की बावनी की गई। खांड मण २०० के गाली गई। कुल उमराव, सिरदार, पासवान, राह-बेवार वाला ने पंचायती नोहरा में जीमाया गया। बाबाजी साहब सगतसिंहजी, गजसिंहजी सब पधारया, जीम्या, लोग घर पर आया। श्रीजी हुजूर से वा राणीसाहब की तरफ से करीब ५ हजार रुप्या बगसाया गया। तीन हा भायां ने रंग बंधावा[3] में पाग दुपट्टा बगस्या।

---

१. बाग की डाली—बगीचे के फलों की टोकरी।

२. करचा—क्रिया-कर्म।

३. रंग बंधावा—मृत्युभोज के बाद शोक भंग करने हेतु परिवार के सदस्यों को रंगीन पगड़ी बंधाई जाती है। इसी को "रंग बंधावा" कहते हैं। इससे पूर्व परिवार के सदस्य सिर पर शोक का प्रतीक सफेद फेंटा [वाफा] बांधे रहते हैं।

इसी साल कांकरोली गुसाईंजी महाराज छपनभोग[1] रो उत्सव कीदो, दर्शणा वास्ते श्रीजी पधारया, मैं भी अपनी तोर पर दर्शणा वास्ते गयो।

विक्टोरिया महारानी ५० वर्ष राज कीदो जींकी जुबीली को जलसो हुवो, विक्टोरियाहाल[2] ईं की खुशी में बण्यो और मलका की मूर्ति लगावणो तजवीज हो कर बणायो गयो, मूर्ति का २५ हजार के करीब लागा। मैंने भी इसकी खुशी में कारड भर कर २००) मारफत रजीडेंट साहब के दिया, और भी सिरदारों ने दिया।

डाक बंगलो भी इसी साल बण्यो ओर फिर आखर होटल बणाया गया। जेल भी इसी साल बन कर तैयार हुवा। कैदी वा-जावता वहां रहने लगे, जेल का तालुक रजीडंट के सरजन के सुपरद हुवा। शिवनिवास के महल का काम भी इसी साल शुरू हो कर बहुत भारी इमारत बनी। महाराना शंभुसिंहजी की छत्री बनी, कुछ काम बाकी हो, बड़ा हुजूर की छत्री बणावो शुरू हुवो, दोई छत्र्यां तैयार हो गई, परन्तु अब तक डोरो नही फरचो न मूरत्यां स्थापन हुई।

संवत् १९४३ श्रीजी में श्री बाईजीराज कशोर कुंवर बाई को जन्म हुवो, मामुली पोशाक व मोहरां भेजी गई।

कांकरोली गुसाईंजी वा मथुरा का गुसाईं सरूप सात को अठे पधारनो हुवो जीं को तार आयो।

---

१. छप्पन भोग—वल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के भोग के लिये विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने की प्रथा है। एक साथ छप्पन प्रकार के व्यंजन बनाकर श्रीकृष्ण को भोग लगाना ही इस उत्सव की महत्ता है।

२. इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया के शासन की स्वर्ण-जयन्ती के उपलक्ष्य में सज्जननिवास बाग में नवलखा महलों के समीप ही वि. संवत् १९४३, ईस्वी सन् १८८७ में विक्टोरिया हॉल का निर्माण करवाया गया। इस भवन में राजकीय पुस्तकालय व अंजायबघर खोला गया। इस भवन को वि. सं. १९४७, ई. १८९० में लार्ड लेन्सडाउन ने खोला। भवन के सामने ही महारानी विक्टोरिया की सफेद आदमकद मूर्ति लगाई गई जिसको वि. सं. १९४६, ई. १८८९ में महारानी के पौत्र प्रिन्स एलबर्ट ने अपनी उदयपुर यात्रा के समय खोली। अब उक्त भवन में सरस्वती भण्डार नामक राजकीय पुस्तकालय है तथा उक्त मूर्त्ति को स्वतंत्रता प्राप्ति के काफी समय बाद उक्त स्थान से हटा दिया गया है।

गो मारे बाग मकान बणावो संपूर्ण तो नहीं हुवा परन्तु बहुत कुछ काम बण चुको, सात ही सरूपां[1]को वाड़ी बराजवो हुवो, मकान तो बहुत

---

१. वल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक श्री वल्लभाचार्यजी तैलंग जाति के सोमयाजी यज्ञनारायण भट्ट के वंशज और लक्ष्मण भट्ट के पुत्र थे इनका जन्म ई० १४७८ में चम्पारण्य में हुआ था, इन्होंने शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का, जिसको वल्लभ सम्प्रदाय भी कहते हैं, प्रचार किया। गोवर्धन पर्वत पर इनको श्रीनाथजी की मूर्ति मिली थी। वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ को गुसाईं (गोस्वामी) की पदवी मिली तभी से उनकी संतान गुसाईं कहलाई। विट्ठलनाथजी के सात पुत्र हुए जिनके पूजन की मूर्तियां अलग-अलग थीं। ये वैष्णवों में "सात स्वरूप*" नाम से प्रसिद्ध हैं उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरधरजी टीकायत (तिलकायत) थे इसी से उनके वंशज नाथद्वारे के गुसाईंजी टीकायत महाराज कहलाते हैं और श्रीनाथजी की मूर्ति गिरधरजी के पूजन में रही। बादशाह औरंगजेब द्वारा मूर्ति तोड़ने के भय से इनके बड़े पुत्र दामोदरजी गुप्त रूप से श्रीनाथजी की प्रतिमा को लेकर संवत् १७२६ में गोवर्धन से निकले और आगरा, बूंदी, कोटा, पुष्कर, कृष्णगढ व चौपासनी में ठहरकर अंत में संवत् १७२८ कार्तिक सुदि १५ को वहां से प्रस्थान कर मेवाड़ पहुंचे। वि० सं० १७२८ फाल्गुन वदि ७ को बनास नदी के किनारे सिहाड़ गांव के पास खेड़े में मूर्ति स्थापित की गई। उक्त स्थान उन्नति करता गया जो आज नाथद्वारे के नाम से प्रसिद्ध है।

दे० गौ. ही. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास : पृ० ३३८-३३९

*श्री वल्लभाचार्य व विट्ठलनाथ की सेवा की मूर्तियां श्रीनाथजी व नवनीत प्रिय नाथद्वारे में स्थापित हैं। विट्ठलनाथ के सातों पुत्रों के नाम से जो सातस्वरूप हैं उनका विवरण निम्न प्रकार है :

सात स्वरूप

व्यक्ति	स्वरूप	स्थान
गिरधरजी	मथुराधीशजी	कोटा
गोविन्दजी	विट्ठलनाथजी	नाथद्वारा
बालकृष्णजी	द्वारकाधीशजी	कांकरोली
गोकुलनाथजी	गोकुलनाथजी	गोकुल
रघुनाथजी	गोकुलचन्द्रमाजी	कामवन
बालकृष्णलालजी	यदुनाथजी	सूरत
घनश्यामजी	मदनमोहनजी	कामवन

कम हा परन्तु कृपा पूर्वक मकान ने पावरण कीदो, घर पर श्री भाईजी साहब के बीमारी ही सो दर्शरण देवा पधारचा, २५) २५) रुप्या हरेक सरूपरे भेट कीदा।

मुझे भी इसी साल में C. I. E. को खिताब हुवो। संवत ४३ पोस सुद ११ श्री भाईजीसाहब देवलोक हुवा, चाल-चलावा वगेरे सब आछी तरह से किया गया और भाभासा की बावनी माफक बावनी कीदी गई वा कुल उमराव सिरदार, पासवानां राह-बेवार वालां ने जीमाया गया। रजीडंट साहब वा दूसरा साहब लोग मातमपुर्सी वास्ते आया। छतरी सुपेत राजनगर का पत्थर की बणाई गई। दो हजार रुप्या श्रीजी बगस्या, पाग बंधाई में सरपाव बगस्यो, एक महीना बाद रंग बंधाई में पाग अमरसाही दुपट्टो बगस्यो।

जादा खुशी की बात या है के खिताब मने मिल्यो जोंरी खबर भाईजी-साहब के हरिसरण होवा के ऐक दिन पहले ही आ गई थी सो वांने भी मालम वे गई।

मने जो बगीचा वास्ते जमीन बगसी, बगीचो मकान तैयार वे गया सो श्री भाईजीसाहब का हाथ सूं नाथद्वारे ईं शरत पर के गुसाईं सरूप पधारे वा कोई माननीय महात्मा वगेरा पधारे तो अठे बिराजे १००) सालाना किराया का जमा कराया जावे, जब मारा वारसा का कबजा में रहते भेट कीदी गई।

संवत १९४३ का वैसाख में वाड़ी को काम संपूर्ण हुवो सो वास्तव[1] कीदो गयो। घर का गजधर[2] ने कड़ा-सरपाव, कारीगर-मजरां ने यथायोग दियो गयो। भाईजीसाहब हरिसरण हुवां ने दिन थोड़ा हुवा सो जलसो तो नहीं कीदो गयो, परन्तु निज भाई सगा ने वाड़ी में जीमाया गया।

इस साल में वींगेट साहब मोतमीद बंदोबस्त की तरक्की वेर बम्बई प्रेसीडेन्सी में गया अठे बंदोबस्त का काम पर विडलफ साहब मुकरर वेर आया। बाकी बंदोबस्त वां जिला में सुगाय खतम कीदो।

---

१. वास्तव—वास्तु शास्त्र के अनुसार विधि-विधान पूर्वक पूजा एवं शांति पाठ करवा कर ब्राह्मण भोजन का आयोजन करना। नवीन भवन में प्रवेश से पूर्व किये जाने वाले उत्सव को मेवाड़ में "नांगल" कहते हैं।

२. गजधर—मिस्त्री, मुख्य कारीगर।

इसी अरसे में वाल्टरसाहब अजंट गवरनर जनरल हो कर गये यहां करनल माईल साहब रजीडंट आया, ये साहब अवल ही[1] राजपूताने में आये थे।

संवत १९४४ में श्रीजी के दूसरा महाराज कुमार को जन्म हुवो[2]। मारी तरफ सु पोशाक, मोहरां वगेरे भेजवा को दस्तूर हुवो। श्री महाराज कुमार का जन्म होवा की खुशी में कतरी वाकी वरसां की काबिल नावसूली के ही, अरज कर ७ लाख २५ हजार के करीब बाक्यात छोड़ाई गई; और ईं खुशी में मने एक पन्ना की कंठसरी आवाजदार ब-खुशी बगसी जींरी कीमत ३०००) के करीब है और भी चंद लोग हाजरवासी वालां ने गेणां की रकमां[3] बगसी और सरदार पासवानां ने अमूमन पाग दुपट्टा दरजा वार बगस्या। कचेरयां का अहलकारां मात्रां ने[4] और सिरकार का लोगां ने पागां बगसी गई। करीब ऐक लाख रुप्या के ईं में खरच हुवा।

मालदासजी की सेरी में बकरो ले जावा पर महाजनां-वोरां के सख्त फिसाद हुवो। हजारों वोहरा महाजन जमा हो गये। ईंटा, घरां का केलवां सु आपस में मारकूटाई हुई, आखर में जंगी फोज की कम्पनी आई जद शांति हुई। बोहरा रेजीडेंसी में अरजाऊ हुवा, तहकीकात हुई, बोहरा महाजनां सु ५०००) के करीब जुरमाना का लिया। बोहरां की तरफ सु जुरमाना को हिस्सो जादा रह्यो। फेर ईं जुरमाना में पुलिस के सामने घंटाघर[5] बणाय घड़ी लगावो तजवीज हुवो, ईं वास्ते हमेश, ईं सु यांकी लड़ाई याद रहेगा ताके फेर अस्यो वाको नहीं करे, आम लोगां ने भी फायदो पहुंचे।

संवत १९४२ में मदरास का लाठ आया और बाद ही नवम्बर में वायसराय को तशरीफ लावो करार पायो, जीं का बंदोवस्त वास्ते बहुत कोशीश करणी पड़ी, सब बंदवस्त ठीक हुवो। आतसवाजी बड़ोदा का

---

१. अवल ही—पहली बार ही, प्रथम बार ही।
२. मार्गशीर्ष सुदी ११, तारीख २६ नवम्बर, १८८७ को दूसरे राजकुमार का जन्म हुवा।
३. गेणां की रकमां—पहिनने के आभूषण, धारण करने के आभूषण।
४. मात्रां ने—सभी को, प्रत्येक को।
५. घंटाघर—वर्तमान समय में बड़े बाजार के अंतिम सिरे पर जहाँ सूरजपोल व हाथीपोल से आने वाले मार्ग मिलते हैं वहाँ घंटाघर स्थित है। इसी के ठीक सामने आज भी पुलिस चौकी कायम है।

कारीगर बुलाय तईयार कराई गई, खाणा को ठेको बम्बई का होटल वाला ने दियो गयो। ये दोई लाठ रजीडंसी पर ही ठहरचा। पेशवाई मुलाकात हस्ब-सिरस्ता हुई। मदरास का लाठ को बड़ो खाणा जगनिवास वोलां महिलां में हुवो, नाव सवार वे र रोस्नी तालाब की आतसबाजी मुलाहजा करी। जलसो बहुत आछो हुवो, साहब बहुत ही खुश हुवा। बाद में लार्ड डफरन आया, पेशवाई-मुलाकात मामूली हुई। पेशवाई तोन मोल दरवाजा सु हुई, मुलाकात में ६ सिरदार मां समेत साथ हा, वापसी मुलाकात में २०-२५ सिरदारां की मोहरां नजर हुई। खाणो बड़ो शंभुनिवास हुवो। रोस्नी तालाब की वा आतसवाजी छूटी, भीलां को नाच हुवो, साहब बहुत खुश रहचा। वाल्टर असपताल[१] कों नीम को पत्थर रख्यो गयो, जलसो हुवो, स्पोच फतहलालजी पढ्यो। लाठसाहब मारे साथ खुशनुदी जाहर फरमाई।

श्रीजी को G. C. S. I. का खिताब मिला उसका तगमा देवा वास्ते साहब अजंट गवरनर जनरल वाल्टर साहब अठे आया। पेशवाई, मुलाकातां मामुली हुई। बाद में तरपोल्यां का चोक में सामियाना खड़ा वेर बड़ो दरबार हुवो। पहली साहब अजंट गवरनर जनरल आया पछे श्रीजी महलां सु पधारचा, सिंहासन पर बिराज्या, तुगमो[२] साहब हाथ सु लगायो, तोपां की सलामी हुई। मामुली रसमां दरबार की अदा हुई। कांवराजजी वा मारी कुरसी ओळ के भड़े सामे लगाई गई। खुशी का खाणा का जलसा, आतस-बाजी वगेरा हुई। दूसरे दिन सिवनिवास का चोक में साम्यानों खड़ो वेर मुक्तसर दरबार हुवो। श्रीजी वा वाल्टरसाहब पधारचा फिर मेरे साहब तगमो[३] लगा दियो अर फरमाई— आपकी अछी खिदमत को कदर कर यह तगमा बगसा गया है। मैंने अर्ज किया—मुझका कोन जानता था वलायत तक

---

१. वाल्टर असपताल—विक्रम सं० १९४२ कार्तिक सुदि २ (ई. स. १८८५ ता० ८ नवम्बर) को हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड डफरिन के उदयपुर आगमन पर महाराणा सज्जनसिंह द्वारा स्थापित जनाना अस्पताल (वॉल्टर फीमेल हॉस्पिटल) के लिये एक नई इमारत तैयार करने के लिये लेडी डफरिन के हाथों उसका शिलारोपण कराया।

दे० उदयपुर राज्य का इतिहास : गौ-ही० ओझा : पृ० १२५०-५१।

२. G. C. S. I. के खिताब का तमगा महाराणा फतहसिंहजी को।

३. तमगो—C. I. E. के खिताब का तमगा महता राय पन्नालालजी को, इसकी घोषणा महारानी विक्टोरिया की सिलवर ज्युबली के अवसर पर सन् १८८७ में की गई थी।

मेरा नाम पहुंचाना श्री हुजूर की सुनजर अर आपकी मदद से ऐसा हुवा है जिसके लिये तहदिल सु शुकर गुजार हूं । उसी रात को कोठी याने रजीडेंसी पर मेरी तरफ से खाना हुवा, बेंड बजा । खाणे के बाद मैं भी कोठी पर पहुंचा वांह बहुत अखलाक[१] के साथ बातें होती रही । बाद जाम तंदुरुस्ती के गोल कमरे में अतर-पान-चोसरें दी गईं । मुझे भी पीछी चोसर बड़े साहब ने पहनाई । तुगमा मिलने पर श्रीजी में वा जनानी डोढ़ी नजराणा कराया गया ।

इसी साल में ऐक बात ऐसी पेदा हुई के श्रीजी की गदीनशीनी के वक्त यह बात भी ते हुई थी के आयंदा महाराज सगतसिंहजी के कंवर होवे तो हक बागोर का रहवे, इसी बुनयाद पर महाराज सगतसिंहजी के ठुकराणी के हमल[२] होने की बात मशहूर की गई जो मामा अमान-सिंहजी के बहन थे और उनको बागोर भेजने के लिये चंद बातों की श्रीजी में मालुम कराई । असल में हमल था ही नहीं, इसका शुबा होकर तहकीकात करना तजवीज हुवा, और महाराज मोसूफ ने भी हमल होने पर बहुत जोर दिया ओर रजीडंटी तक इस बात को पहुंचाई गई, ओर उनको बागोर अपने तोर भेज ही दिया । यह मामला रजीडंटी में जवाबदेही के लिये मेरे ही सुपरद फरमाया गया । मैंने भाई तखतसिंहजी को श्रीजी की चिठी लेकर आबू पर अजंट गवरनर जनरल के पास भेजे, इन्होंने सब हाल वाकफ किया । साहब मोसूफ की तहकीकात कराने की हुई । महाराज साहब की तरफ सु एक अंगरेजी यूरोपीयन दाई को सरटीफीकेट पेश हुवो जिस पर राज सु·········· ·· [डाक्टरनी] गवरमेंट की मारफत जो बहुत मोतबद ही २०००) महावार पर बुलाई गई और वीं पास सु जांच कराई गई । वीं साफ हमल नहीं होवो जाहर करयो । रजीडंट साहब को तसल्ली हुई, फिर महाराज साहब चंद रोज उजरात करते रहे आखर यह मशहूर किया के बच्चा पेदा होकर मर गया । मुकदमा खतम हुवा । दरमीयानी जवाबदेही की कारवाई महीनों तक होती रही, सिरफ नतीजा यहां दरज किया गया है । इसमें तुरफा यह हुवा के इस मोके को, जो मेरे खिलाफ कविराज जी तो शुरु ही से थे, गनीमत समझ वृजनाथजी को वा कोठारी बलवंतसिंहजी को शामिल कर ऐक कमेटी रची, श्रीजी में इस मामले में बहुत कुछ शक की बातें पेदा कर, बहुत बड़ी बात हमल से नुकसान की वा लोगों की और मेरी साजिस होने की दिखाई गई और जाहजपुर की फोज बहुत दुरस्त थी उसकी निगरानी के लिये,

---

१. अखलाक—शिष्टाचार ।

२. हमल—गर्भ ।

जब तक बागोर का मुकदमा चला, मामा अमानसिंहजी को भेज दिये इस गरज से के फोज का दिल हाकिम भाई लछमीलालजी की तरफ से खेंच कर अपनी तरफ कर लेवें। इससे साफ जाहिर है कि मेरी तरफ का भी शुबा बताया गया लेकिन परमेश्वर की कृपा से मेने तो मुकदमा साफ कर दिया, इसमें उनकी बात खुद ही नेस्तनाबूद हुई लेकिन इस कमेटी की कारवाई का यह नतीजा हुवा के मामाजी ने फोज में खाली रसाले के सवारों को बहका कर हाकम जाहजपुर के खिलाफ शिकायतें कराई।

अब श्रीजी ने मुझ से तो नहीं दरयाफत फरमाया और सोहनसिंहजी का ला-दावा का दस्तावेज की ढूंढ शुरू हुई। बड़ा हुजूर की खास पेटी कागजों की संभाली, कविराजजी, ज्यानीजी, बगसीजी वगेरे सुं पोशीदा दरयाफत हुई। मैंने भी सुना के उस कागज को बहुत ढूंढा-ढूंढो हो रही है। जब मेने अरज किया—मेने सुना हे के सोहनसिंहजी का ला-दावे का कागद की हुजूर में जरूरत है सो अगर चाहिये तो महक्माखास का दफ्तर में मोजूद है। बेशक इस कागज के निकालने की सोहनसिंहजी की तरफ से कोशीश बहुत हुई, इसमें महक्मेखास का माफिज दफ्तर बहुत इमान पर रहा, यह कब मुमकिन था के कागद निकल सके। उसी वगत वो कागद मंगाया गया, देखकर तसल्ली हुई, मैंने अरज की—माफिज दफ्तर काबिल इनाम के है, ५००) नगद और ३) महावार की तनखा में तरक्की बगसी गई।

इसी साल में भतोज जोधसिंहजी[1] का विवाह मेने ही किया जो महता माधोसिंहजी की पोती के साथ शादी हुई थी। व्याव में श्रीजी की जनाना सुदी पधरावणी मकान पर हुई। गोठ वगेरा खल्ला फतहलालजो का व्याव में हुवा उस माफक व-खुबी हुवा। इस मौके पर महाराज सगतसिंहजी के फतूर की खिदमत के सबब मेने जोधसिंहजी को सोना बगसने की अरज कराई, मंजूर फरमाकर लंगर बगस्या गया और दो हजार रुप्या मने वगस्या, सरपाव, पाग, दुपट्टा सबने बगस्या। भाई लछमीलालजी काकाजी फूलचंदजी के गोद चले गये थे ताहम विवाह मेने अपने खर्चे से ही किया। जीमण न्यात को वा सरदारां, पासवानां ने जोमावा वगेरे जलसा व्याव में बहुत अच्छे

---

१. जोधसिंहजी—पन्नालालजी के भाई लछमीलालजी का पुत्र। महाराणा फतहसिंहजी द्वारा ५ फरवरी, १८८८ को उक्त आमंत्रण स्वीकार कर मेहमानदारी स्वीकार की गई थी, गौ० ही० ओझा ने इस अवसर पर दोनों को सोने के लंगर बगसने का लिखा है जो इस वृत्तान्त के विरुद्ध पड़ता है।

होते रहे। महताजी माधवसिंहजी व्याव उनकी हेंसियत सिवाए किया। व्याव में बेंड-बाजो वा हाथी, काच को होदो, चांदी को जेवर समेत बींद की सवारी वास्ते बगसा गया। व्याव खतम होते ही जाजपुर के दोरे का हुकम हुवा। लछमीलालजी को फोरन जाहजपुर पहुंचणो पड्यो। श्रीजी को पधारवो हुवो, रसाला का सवार अरजाऊ हुवा जिसका सबब ऊपर दर्ज कर दिया है, और यह बात पैदा की गई के व्याव के नूते के नाम से हमसे रुप्ये वसूल किये गये। पलटण के लोग कोई शाकी न थे पर इन्होंने उनसे भी लेने की मुखबरी करी, यहां पधारने पर सवारों की अरजी नूता की शिकायती रजीडेंसी से आई। मालुम की गई, वो तो सब जाण-बूझ में ही थी। रजीडंट माइल साहब ना-वाकिफ थे उनको श्रीजी ने बहुत कुछ फरमाई, दरयाफ्त कराने की मंशा से और दरयाफ्त मोतमीद बंदोवस्त वीडलफ साहब को सोंपणे की ख्वाहश जाहर फरमाई। रजीडंट साहब ने भी उनको लिख दिया, महक्माखास से हुकम होने पर साहब जाहजपुर पहुंचे। कुछ दरयाफ्त जाबता माफिक तो की नहीं खाली सवारों की अरजियां ७० के करीब लिखा लाया अर ८-१० पलटन वगेरे के अफसर, कामदारों को केद कर लाये। हाकिम का जवाब लेना तो दर-किनार लेकिन कुछ सुणा भी नहीं। अपनी तरफ से बेरिस्टर की मारफत कारवाई की दरखास्त कर उलटे नाराज हुए और यहां आकर हाकम बींद की शिकायती नूता वसूल करने की रीपोट कर दी रजीडंट साहब को, रजीडंट साहब ने बड़ा साहब को लिखी, मांसु दरयाफत फरमाई, मेने जो कुछ असली हाल था लिखा .... सो साहब अजंट-गवरनर जनरल वा लाट साहब............ तशरीफ लाया साहब मम्दुह यां [यहां] के के हालात से बखुबी वाकफ थे, माईल साहब को भी बहुत कुछ समझाया और यहां का हाल वाकफ किया, हाकम को जवाब लेवा को हुकम हुवो। जवाब हाकिम ने सब पेश किया, जां लोगां ने साहब केद कर लाया उदेपुर में सख्त केद राख्या, सख्ती से भी पूछताछ की गई लेकिन उनकी तरफ से कोई सबूत की बात पेश नहीं हुई। चंदरोज ऐसे ही मामला रहा, केदी लोग रिहा किये गए। वाल्टर साहब ने मुझे फरमाया—तहकीकात अछी हुई नहीं, श्री दरबार का जिद है, बेशक लछमीलालजी ने जाहजपुर में बहुत तरक्की की है, मेने खुद देखा है। दरबार को भी मेने कह दिया है। दरबार हाकमी से लछमी-लालजी को माफ करना चाहते हैं, मिजाज में जिद बहुत है इसलिये आप इसमें खेंच नहीं करें। दरबार खुश रहे वो ठीक है, इसमें गलती आप ही की है। मुझ को ताजुब हुवा, अरज किया—मेरी क्या गलती है ? अगर गलती भी हो तो हाकम की हो सकती है। फरमाया—"आप ही ने सब कोशीश कर इनकु गद्दी-नशीन किया अगर किसी ना-बालिग का गद्दी-नशीन करते तो आप ओर हम काम रियासत का अछी तरह चला सकते।" मेने अरज किया—हुजूर का इस कदर खयाल है इसके लिये मशकूर हूं मुझ को हर तरह श्रीजी

का हुकम की तामील मंजूर है। फेर फरमाया—दरबार ने मुझसे कसमिया वादा कर लिया है के थोड़ा दिन बाद लछमीलालजी कु दूसरे जिले की हाकमी दे देवेंगे। साहब १५-२० दिन यहां रहकर आबू गये, बाद में महदराज सभा से हाकम लछमीलालजी की मोजूदगी में पेशी वेर ५००) जुरमाने का हुकम हुवा। जुरमाना जमा करावा बाबत कुछ भी नहीं लिखी गई। हाकम जगन्नाथजी ढीकडचा मुकरर हुवा। जो पहले चित्तोड़ में ५००) नजर कराया गया वो ना-मंजूर फरमाकर पीछा बगस दिया, "नजर कराणे की क्या जल्दी थी," माफ फरमाया। लछमीलालजी ने जाहजपुर की आमदनी ऐक लाख २५ हजार से ऐक लाख ६५ हजार तक पहुंचाई, जिसमें बहुत तरक्की हुई। माइल साहब को सब यहां का हालात वाल्टर साहब से मालुम हो गया फिर वो हर बात का पूरा गोर करके अपना काम करते थे, मुझसे हरेक मामले, मुकदमे में पूछा करते थे।

इसी संवत ४४ में फतहलालजी की बहू के आगरणी हुई। श्रीजी से फतहलालजी ने एक धोरां-पट्टा की अंगरखी वगेरे बेश कीमती पोशाक बगसी गई, न्यात को जीमण कीदो गयो।

इसी साल में मय खटला[1] के नाथद्वारे, गढ़बोर दर्शनां के वास्ते जाना हुवा, काम पीछे से भाई तखतसिंहजी करते ही रहते थे। इसी साल में उदयसिंहजी चवाण ने गाम आक्यो, हरनाथजी पाणेरी जो रसोड़ा-पाणेरा का दरोगा हा, गाम बगस्यो। उदयलाल बठलोत पींडा को भेट पर गाम बगस्यो गयो। फतहलालजी के लड़का हुवा, जलसो कीदो गयो। भांग, अमल वास्ते सादड़ी राज, बेदला, वगेरे सब उमराव, महाराज गजसिंहजी वगेरे पधारचा। तीन महीना को वेर हरिसरण हुवो।

नाथद्वारे गुसाईंजी अठे पधारचा, हवेली पधरावणी कीदी, घोड़ो-सरपाव वगेरा भेट कोदा, वाड़ी बिराज्या। ...... गुसाईंजी महाराज की पधरावणी कीदी गई, वाड़ी भी पधारचा। नाथद्वारे गुसाईंजी का पधारवा पर नाथद्वारे की फोज ३०० आदम्यां की उठा का खर्च पर पहले ही जी में २०० आदमी उठाया गया। चंदा का २००) रुप्या मारफत अजंट साहब के दीदा गया, (ज्युबीली का चन्दा में देवा वालो जावे)।

ई साल [१९४६] चेत महीना में डयूक ऑफ कनाट वा साहब एक जरमन का शाही खानदान का साहब अठे आया। सब बंदोबस्त उत्तमता सु हुवो। लाठ साहब माफक दस्तुरो मुलाकात, पेशवाई वगेरा हुई।

---

१. खटला—परिवार।

शंभु विलास.......................फतहलालजो पेशवाई में गया, वा बांकी महमानदारी का काम पर मुकरर हुवा। वीं मोका पर गणगोर की सवारी भी देखी। और अनजीनीयर टामसन साहब तजवीज कीदी के आयड़ की नदी की नहर देवाली का तालाब में वेर पींछोला में आय सके है जीं के लिये केही अनजीनीयर लोग ना-मुमकिन बतावता हा लेकिन देवाली का तालाब की पाल 20 फीट जादा ऊंची करवा की जरूरत देख तखमीनो ३ लाख के करीब हो सो नीम को पत्थर ड्यूक ऑफ कनाट का हाथ सुं रखायो गयो, नाम कनाट बंद राख्यो गयो. जीं पर ड्यूक ऑफ कनाट फरमाई के बंद का नाम "कनाट बंद" और तालाब का नाम "फतहसागर"[1] रखा जावे। साहब मोसूफ बहुत खुश रहचा, मां सुं भी बहुत अखलाक सुं पेश आया। फतह-लालजी ने एक जड़ाऊ लाकेट दीदो। जंगलात का अफसर बसनसिंहजी वो प्रोत शंभुनाथजी अरज कीदो—'नहर कदी नहीं आ सकेगा।' टामसन साहब भी पेमायश जारी कीदी। ई लोग या ही कहता रहचा पर नहर आय ही गई।

मारवाड़-मेवाड़ की सरहद की लेरा को काम खतम हुवो। चंद मुकदमा लेरा का दोनुं तरफ से अपीलां ही। कुम्भलगढ़ पगल्या की नाल का फेसला पर मारवाड़ की तरफ सुं अपील बहुत जोरजद ही इसका फेसला वास्ते वाल्टर साहब तजवीज करी के देसुरी के मुकाम जोधपुर से महाराज प्रताप-सिंहजी आवेगा वेसा ही जी—अख्तियार मोतमद मेवाड़ से आना चाहिये, वहां अपील का फेसला किया जावेगा। देसूरी जावा को मने हुकम मिल्यो, डेरा-लवाजमा वगेरा बगस्यो, साथ में हतणी, सोना रो छड़ीदार बगस्यो। मूं नाथद्वारे गढ़बोर वेतो हुवो देसुरी पहुंच्यो, लाला त्रिभुवनलालजी मोतमीद भी साथ हा। साहब मोसूफ बुलावो मेल्यो, साहब फरमाई—महाराज प्रताप-सिंहजी आ गए हैं, आप उनसे मिलो, आपस में फेसला हो सके तो तय करो। मूं महाराज साहब का डेरा पर गयो, महाराज डेरा बाहर पधारचा, हाथ

---

१. फतहसागर—यह तालाब १।। मील लम्बा, १ मील चौड़ा और ३५ फिट गहरा है। इस का बांध २८०० फिट लम्बा है, इसमें ५५८ मिलियन क्यूबिक फिट जल है। इस तालाब को वि० सं० १७४४ (ई १६८७) में महाराणा जयसिंह ने थूर के तालाब के साथ ही बनवाया था। महाराणा भीमसिंहजी के समय में अति-वृष्टि से इसका बांध टूट गया और सहेलियों की बाड़ी भी वीरान हो गई। इस तालाब के पूर्व में देवाली गांव है, इससे यह देवाली का तालाब प्रसिद्ध हो गया। दे० उदयपुर सचित्र : पृ० ६४।

मिलायो, डरा में ले गया । बात-चीत हुई, अरज कोदी—आप तो मारवाड़ का मालक ही हैं मूं मेवाड़ को नोकर आदमी हूं, आप सूं कई मुकाबलो कर सकूं, आप महरबानी कर तै कर देवे, जीं पर फरमाई—आप क्या चाहते हैं ? मैं सोची, आपणे तो कुम्भलगढ, देसूरी यानि पगल्या की नाल को फेसलो रहणो चावे । मैं मोतमदां सुं दरयाफत कर लीदी, वां कही—मेवाड़ की अपील जो कीदी गई वा जोधपुर की अपील का मुकाबला में कीदी गई वरना वीं में जादा हरजो कुछ नहीं है । मैं अरज कीदो—मारी अरज तो या है के दो तरफी अपीलां लेली जावे । महाराज फरमाई—बहुत अच्छा आपकी खातर के लिये मंजूर है । मां अरज कीदी—काल ही साब से अरज कर दी जावे । दूसरे दिन या बात दो तरफी पेश कीदी, साहब मंजूर फरमाई, प्रंत महाराज कही—पहाड़ां का पानी को हक मारवाड़ को है सो कोई पाणी रोक्यो नहीं जावे या शरत वेणी चावे । मारे खयाल में आई के पहाड़ां को पानी किस तरह रुक सके है ? मैं हां भर लोदी । वालटर साहब कही देखो । सोच-समझ कर जवाब दो, तो भी समझ में नहीं आ सकी । मने अदेशो जरूर हुवो जद मां कही और तो पानी रुके हो किस तरह, अगर कोई तालाव बांध राक्यो जावे तो रुक सके, सो अस्यो तालाव बंध सके नहीं, कोसां पर्यंत पहाड़ है । जीं पर या बात तै हुई के अगर मेवाड़ अस्यो तालाव बांधवो चावेगा तो राय मारवाड़ की ले ली जावे और मारवाड़ मेदान में तालाव बणावे तो मेवाड़ को राय ले लेवे । खेर, या शर्त मंजूर वेर मामलो खतम हुवो । साहब बहुत खुश हुआ । महाराज रवने वेवा को खबर ही, मूं फेर डरे गयो, अरज कोदी—आपकी महरबानी सुं काम जल्दी खतम वे गयो, श्रीजो हुजूर में आप चिठी लिख देवें, महाराज मंजूर कर चिठी फेसलो हो जावा को और मारवाड़ की फोज श्री दरबार का हुकम की है अस्या मजमून की चिठी लिख दीदी सो नजर कोदा गई । महाराज प्रतापसिंहजो के बहुत उजर करवा पर भी सब महमानदारी को बंदोवस्त अठा की तरफ सुं कादो गयो । जाती दफे ई काम को कामयाबो तावे गढबोर ५००) रुप्या को वालमां करतो गयो हो सो ढाल चांदी की सोना का काम की तईयार कराय भेट कीदी । पाछा आवतां गढबोर सुं, देवगढ-आमेट की बहुत खंच ही सो दोई ठीकाणां में होतो हुवा फूलडोल[1] पर नाथद्वारे आयो । मायने सुं भी नाथद्वारे आय गया हा । दोई ठीकाणा में महमानदारी बहुत आछी हुई ।

---

१. फूलडोल—चैत्र मास के प्रथम पखवाड़े में कृष्ण मंदिरों में फूलडोल के उत्सव होते हैं, मूर्ति का फूलों से शृंगार किया जाता है और मन्दिरों में फूल बंगले बनाए जाते हैं । उस समय वसंत राग के गायन-वादन के संगीत के सरस कार्यक्रम होते हैं ।

मारवाड़ की लेन का काम तो खतम हुवा ज्युंही प्रतावगढ-मेवाड़ की सरहदवरारी री लेन रो काम साहव मुकरर वेर जारी हुवो। मोतमद लाला केसरीलालजी बाद उनके महता रुगनाथसिंहजी मुकरर हुये। [प्रतापगढ] को काम भी खातर ख्वाह हुवो, कोई नुकसारण ······ ······ नहीं हुई। मेरवाड़ा अर मेवाड़ की हदवरारी ······ नक्शा मुं हुई वीं का पेमायस की रुह सूं नक्शा बरणावरणा अर लेरणां की दुरस्ती कररणी ही सो बंदोवस्त का महक्मा का अफरामदीन हेदर पेमायस का वाकिफकार लायक आदमी ने मुकरर कीदो। सब लेरणां साफ वे गई, कोई नुकसारण की शिकायत नहीं रही। इस काम में मुझे बहुत निगरानी करनी पड़ती थी, मोतमदों को मदत देरणी पड़ती थी, संद-सबूतें ढूंढाकर भेजरणी पड़ती थी। श्रीजी महाराज की कृपा सुं कोई भी जमीन मेवाड़ की जावा की बात पेश नहीं आई बलके लाला त्रभवनलालजी कुं ७००) केसरीलालजी को १०००) हदवरारी की ठीक कारवाई बावत वगसाया गया।

जेठ महीना में श्रीजी नोपत्यां सवार[1] वेर महलां सुं कोठी[2] पधारता हा, मूं भी पायगा रा घोड़ा पर चढचो हुवो साथ हो आगे चाल रह्यो हो, सूरजपोल बाहर दिली दरवाजा की तरफ सुं बगी साहव लोगां री आवती ही। बगी [बग्गी] में कुरण है ई की दरयाफत वास्ते मने याद फ़रमायो। मूं घोड़ा ने बराबर लायो, अरज की दी, अस्या में मारी सवारी को घोड़ो बिगडचो, खड़ो आय गरणोटी[3] खाय गयो, मूं पड़ गयो, पग में चोट आई, पाछो घोड़ा पर चढचो। लछमरणसिंहजी चवारण ने साथ देर घरे जावा रो हुकम हुवो। पग रा फाबा री हड्डी पर घोड़ा रो पग लाग गयो, इलाज कीदो, तकलीफ बहुत बढ़ गई। छः महीना तकलीफ रही। काम महक्माखास रो भाई तखतसिंहजी कीदो। तकलीफ अठा तक बढ़ी के तीन डाक्टर मलन साहब, पादरी साव,[4] अकबरअलीजी अलाज करता, आखर पग काटवा की तजवीज डाक्टर लोग कर चुका हा, पर श्री परमेश्वर असी कृपा कीदी के पादरी साहब ही खुरदबीन ला करके कहा के रसी ने देख ली जावे, रसी हड्डी की है या मांस की, पहले जांच कर लेना ठीक है। जांच कीदी गई, रसी हड्डी की नहीं मालुम हुई जीं सुं पहली तजवीज माफ रही, फेर कुछ सहत की सूरत

---

१. नोपत्यां सवार—घोड़े पर सवार।
२. कोठी—रेजिडेण्ट का निवास स्थान।
३. गरणोटी—चक्कर।
४. पादरी साव—रैवरेंड डॉक्टर शेपर्ड जो स्कोटिशमिशन के पादरी थे; इन्होंने उदयपुर में अस्पताल, गिरजाघर एवं मदरसे स्थापित किये।

वे गई। काती महीना में महक्मेखास को चारज लीदो। ई बीमारी में डाक्टर वगेरा इनाम-इकराज में ५ हजार रुप्या खर्च हुवा। श्रीजी खावंदी फरमाय साता पूछवा वास्ते घर पर पधारचा, नजर-नछरावल हुई, उठ नहीं सक्यो, खावंदी का लफज फरमाया। रजोडंट पीकाक साहब तीन वक्त घर पर बीमारी में आया। ऐक वाको अस्यो हुवो के महाराज सख्तसिंहजी[1] ऐकाऐक रात में हरिसरण हो गया। ई को हल्लो मच्यो, जहर वगेरा शुबो हुवो। डाक्टर साहब पोस्टमारटम करवो चायो, भाई तखतसिंहजी बहुत कोशीश के साथ ई ने रोक्यो क्युं के चहरा, नखां पर कोई अलामात जहर को मालुम नहीं वेती ही। बागोर खालसे हुवो वीं का मसवरा के लिये रेजीडंट साहब तीन दफे में दो दफे ई की बातचीत वास्ते आया, बहुत गुफ्तगू के बाद मैं या ही राय जाहर कीदी के—बागोर श्री हुजूर में कुंवरजी बाईसा हुवा है और फेर होने की उमेद है, ई वास्ते छोटा कुंवरजी वास्ते रखा जावे, इससे रियासत से जमीन देने की जरूरत न होगा, बागोर के खानदान में कोई मोजूद भी नहीं है। संवत् ४५ में फेर छोटा कुंवरजी को जन्म हुवो अंत थोड़ा ही दिनों में देवलोक हो गया।

वरजनाथजी सुं वैपार समेटवा की तो ताकीद ही ही, वां सुं पेच[2] भीलाड़े[3] खड़ो कीदो वीं को काम नहीं चल सक्यो। ब्याज की जेरबारी[4] रही। आखर वां ही बंबई की तरफ सुं मुफसल कंपनी ने पेच ४० हजार में दस वरस के लिये देणो तजवीज कीदो। शरतां तह करवा को मने हुकम हुवो, कम्पनी की तरफ सुं एक साहब आया, शरतां तै हुई, दस वरस में पेच चलतो हुवो पाछो सुपरद कर देणो; मां या सिवाय ।=) [छह] आना गांठ राज में देणो वगेरा शरतां करार पाई। कम्पनी कुछ रुपया खरच कर पेच ने चलतो कर लियो। कम्पनी बहुत फायदो उठायो। बेशक, उस वक्त कुछ मुझ कुं भी इस काम का पूरा तजरुबा नहीं था, बलके पेच नहीं चलने से ये महसूल मुकरर हुवा गनीमत समझा, लेकिन महसूल मुकरर होने में कमी रही। कम्पनी सुं पेच की कीमत में भी रकम कम ली गई तथा वैपार का नुकसाण का ७६ हजार अत्तो मंडाया गया। ई काम में वृजनाथजी की बड़ी बदनामी

---

१. सख्तसिंहजी—महाराणा सज्जनसिंहजी के पिता एवं बागोर के महाराज, इनका देहावसान वि० सं १९४६ की भाद्रपद वदि ४ (ता० १४ अगस्त, १८८९) को हुआ। इनके निःसंतान मर जाने से बागोर खालसे कर राज्य में मिला लिया गया।
२. पेच—कपास ओटने की मशीन।
३. भीलाड़े—भीलवाड़ा।
४. ब्याज की जेरबारी—ब्याज का बोझ।

हुई लेकिन महरबानी के सबब वैपार का फायदा के बजाय नुकसाण अत्तो मंड़ाया गया ।

ई साल में शाहजादा विक्टर[1] अठे तशरीफ लाया । मुलाकात, पेशवाई लाठ साहब सरस्ते हुई । आया जीं दिन शहर में रोसनी आछी हुई । खाणा के दिन तालाब की रोस्नी, आतसबाजी वगेरे जलसा हुवा । ठहरवो शंभू निवास हुवो, भीलां को नाच हुवो, शाहजादा खुश रहया ।

श्रीजी में ई साल फिर बाईजी को जन्म हुवो, मारी तरफ सुं मामूली पोशाक, मोरां भेजी गई ।

गढबोर, नाथद्वारे बोलमा ही सो जावो हुवो, मांयने सुं बोलमा ही सो पेदल गढबोर गया । श्री भाईजी सा० की छत्री तईयार वे गई सो डोरो फेरयो गयो ।[2]

ऊंकार कंवर बाई को सगपण बीकानेर करार पायो । महक्माखास सु वठा की कोंसल के नाम कागद लिख्यो गयो ।

नाहरमगरे गुड़-दोड़ी में घोड़ा पर सुं श्रीजी आखड़ गया[3] बेहोंशी वे गई, अठे जरूरी सवार आयो, स्यानो वग्गी में मंगायो गयो, रवने करवा को बंदोबस्त कीदो । दूजां खबर आई—"मत भेजो" ढोल्या पर महलां में पधराया । मूं भी वीं वगत रवने वेर नारमगरे पूगो । सिर में चोट आई पर सब तरह ठीक दर्शण हुवा, फरमाई—क्यूं आया, सर की चोट सुं बेहोंशी हो गई, अब ठीक है । पांच-सात दिन रहकर पाछो आयो । श्रीजी वठे महीना तक बिराज्या, जब चोट की तकलीफ रफे हुई, अठ पधारवो हुवो । नजरन छरावल हुई, मैं भी ५०) नछरावल कीदा ।

१- शाहजादा विक्टर—वि० सं० १९४६ (ई० सन् १८९०) में इंगलिस्तान के युवराज सप्तम एडवर्ड के बड़े शाहजादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर आना हुआ । महाराणा ने उसका सम्मान कर उससे सज्जन-निवास बाग में विक्टोरिया हॉल के सामने महाराणी विक्टोरिया की संगमरमर की मूर्ति का उद्घाटन कराया ।

२. डोरो फेरयो गयो—महताजी के पिता श्री मुरलीधरजी की याद में नाथद्वारे में उनकी छत्री का निर्माण करवाया गया था सो निर्माण-कार्य पूरा होने पर शास्त्रानुसार शांति पाठ पूजा आदि कार्य करवाया गया । इस कार्य में छत्री के चारों तरफ कच्चे सूत का डोरा बांधा जाता है अतः सम्पूर्ण विधि-विधान के साथ कार्य सम्पन्न होने को डोरा फेरना कहा जाता है ।

३. आखड़ गया—गिर गये ।

इसी साल में मैने नाथद्वारे में सदाबरत कायम किया, सालयाना खरच को अंदाजो ६००) को कीदो गयो, एक कामदार ई काम वास्ते वठे १०) महावार को मुकरर कीदो ।

संवत १९४६ में दूसरा कंवरजी बापजी देवलोक पदारचा ।

संवत १९४७ में लाठ लेन्सडाउन अठे तशरीफ लाया । बंदोवस्त महमानदारी, पेशवाई खाणो, मुलाकात रोशनी, आतसबाजी, भीलों का नाच वगेरे हुवा । श्री बड़ा हुजुर [सज्जनसिंह] कुंवरपदा का महलां की घाटी के सामने "सज्जन अस्पताल" का नाम सु अस्पताल मुकरर हुई, वेशक जगाह असी खुसादा नहीं ही ई वास्ते भंसराड़ की हवेली सामने लेन्सडाउन असपताल का नाम सु असपताल बणावणो तजवीज हुवो, लाठ साहब का हाथ सु नीम को पत्थर रखायो गयो । जव असपताल तइयार हुई, सज्जन-असपताल उठ अठे आई, नाम नहीं रह्यो, अरज कीदी गई—एक देशी डाक्टर रहवे और श्री बड़ा हुजूर का नाम सु असपताल है सो बणी रहवे जीमें नाम बड़ा हुजूर को वण्यो रहेगा, प्रंत ना-मंजूर हुई ।

दस बरस गुजरवा पर फिर मरदमशुमारी को काम शुरु हुवो । ई वगत नकशा, हिदायतां बनिस्पत संवत ३६ के जादा आई, बारीक्यां निकलती गई । संवत ३७ में मरदम शुमारी मुलक मेवाड़ का हिस्सा कर कराई गई । वीं में ठीक नहीं होवा को शक हो सो जलावार अर उमरावां का ठिकाणां की उमरावां सु जांके जादा पट्टो हो वांकी मारफत करावो तजवीज हुवो अर यो हुकम वे गयो के मरदुमसुमारी में काई गाम बेजां दरज करेगा तो मरदुम-शुमारी की नजीर नहीं मानो जावेगा । ई चाल सु होवा पर मरदुमशुमारी वहुत ठीक हुई । खरचा में भी कमी रही । संवत ४७ में मरदुमशुमारी हुई वीं में कुल आबादी १८४३२४३ की आई । इस साल मरदुमशुमारी में १५०००) करीब खरच हुवा ।

अज्मेर भाणेज अभयमलजी को ब्याव हो, मारो कुल खटला सुंदा अज्मेर गढबोर वेर जावो हुवो । सोना री छड़ीदार भी बगस्यो गयो । मायरो कर पुष्कर वेर रतलाम होता हुवा ऊंकारनाथ, माहंकाल का उज्जेन दर्शन कर छोटी सादड़ी, बड़ी सादड़ी, कानोड, भींडर वेता हुवा अठे आया । ठीकाणा में महमानदारी ठीक तरह कीदी । अज्मेर मायरो दस्तूर मुजब कीदो गयो । रतलाम में सेठजी दीपचंदजी की तरफ सु महमान निवाजी वहुत कुछ हुई । हतणी, म्यानो, पेरा-सवार, डेरा, कनातां भार बरदारी वगेरा अठा सु ठीक तोर छावनी नीमच का स्टेसन पर आय गया हा ।

कस्नगढ भुवाजीसा[1] को नाथद्वारे पधारवो हुवो। कस्नगढ वाला माजीसाहब भी नाथद्वारे पधारचा, मेवाड़ में सरवरा को बंदोवस्त कीदो गयो।

ईं साल में श्री रखवदेवजी मय मायनुं वा काकीजी के दर्शणां वास्ते जावो हुवो। दर्शण कर मूं तो छड़ो, कल्याणपुर, भोराई वेर, सराडे वेर, जेसमद वेर अठे आयो। वीं वगत सराड़ा जिला मगरा को बंदोवस्त इंतजाम आछी तरह वे गयो हो जीं का देखवा सुं बहुत तबियत प्रसन्न हुई। हाकिम मगरा की तरफ सुं धुलेव[2] के मुकाम सरकारी राज की फोज जिला की फरजी लड़ाई दिखाई गई और सब बंदोवस्त मारी सफर के लिये ठीक कीदो गयो। सराड़े गोठ हुई, वठे खटलो भी आय गयो हो।

जद सुं जहाजपुर को मामलो उठायो गयो जद सुं लोगां की अदावट को अर झूठी शिकायतां को असर मालकां रा दिल पर वे गयो हो, परन्तु रजीडंट माईल साहब सारी बात समझ लीदी सो उठे कोई शिकायत पर वाजब खयाल हो जातो जीं सुं काम चलतो रह्यो। इसी अरसे में एक बहुत बड़ी बात पेश आई वो ये है के सेठ जवाहरमलजी, वृजनाथजी की सलाह से अपनी दुकान का काम चलाने लगे और उन दिनों डाक पहुंचाने के लिये वा साहब लोगों की आमद-रफत वास्ते मीलकाठ चलती थी इसका सेठजी ने ठेका वृजनाथजी के मारफत लिया। वृजनाथजी के तहत में सायर[3] को जमो भी उनको अमानतन मिल जातो, अर दुकान पर परदेशी भवानीनारायणजी थे उनने सेठजी की हुंड्या दो लाख तक लिखवा कर बदला व्याज उपजा कर दुकान की आमदनी दिखाते, ऐसे ही बोहरों को भी बहुत रुप्या करज दे दिया। वृजनाथजी की मदद से हकिम लोग भी जमो सेठजी के ही मारफत खजाने भेजने लगे, मैंने इस बात को रोकने में बहुत कुछ हुकम अहकामात जारी किया लेकिन कुछ भी तामील नहीं को, आखर में नतीजा हुवा के रोकड़ के भंडार सेठजी की लिखी हुई हुंड्या जला की दुकानों की भंडार खड़ी रही, छः महीना तक नहीं सकरी। जब कोठारी मोतीसिंहजी रपोट करी के छः महीना से हुंडचा खड़ी है, बावजूद ताकीद के रुप्या हुंडियें सिकार के नहीं भेजते, वो रीपोट मैंने श्रीजी में पेश करी, हुकम हुवा—"रहने दो", लेकिन श्री हुजूर कुम्भलगढ पधारने वाले थे,

---

१. कस्नगढ भूवाजीसा—महाराणा भीमसिंहजी की पोती और कुंवर अमरसिंह की बेटी। महाराणा सज्जनसिंहजी की भूआ कीका बाजी।
२. धुलेव—ऋषभदेव, रखबदेवजी को धूलेव भी कहा जाता है।
३. सायर—साइर, चुंगी का महसूल।

मैंने अरज किया—इस पर जैसा-तैसा हुकम होना चाहीये, फरमाई—पाछा पधारवा पर पेश करना, मैंने अरज की—यही हुकम लिखवा दिया जावे, हुकम लिखाया गया। दो-तीन दिन बाद ही वृजनाथजी भी कुम्भलगढ गये, न-मालुम वहां क्या-क्या बातें उन्होंने श्रीजी के दिल पर जहनशीन की लेकिन कुल मेरी शिकायत, गफलत सेठजी की रिस्तादारी के सबब बे-समाल उनकी मदत के लिये सरकारी रकम बाकी रही, माल का काम का जुमेवार महताजी हैं, उन पर अब मुकदमा चलाने का मौका अच्छा है वगेरे, वगेरे। यहां पीछे से मैंने सेठजी से और सब हांकमां वगेरा सु दरयाफत की तो करीब ६ लाख रुप्या सेठजी के जुमे राज के मालुम हुवे, उसकी फहरिस्त बना कर सेठजी से तसदीक कर ली। वृजनाथजी की तरफ से ठीक जवाब मुझको नहीं मिला। और दो बरस पहले हिसाब दफ्तर पर एक परदेसी आदमी नारायणदासजी नोकरी मुकरर हुए उन्होंने हिसाब की ऐसी गोवणी[1] डाल दी के हिसाब जो पहले एक साल का दूसरा साल में अखीर मेवाड़ का आंकड़ा पेश होना तो बंद हो गया, दो-तीन बरस से हिसाब पेश ही नहीं हुवा वरना बकाया मेरी निगाह में भी आ जाती खैर, श्रीजी हुजूर महीना के अरसे में कुम्भलगढ से यहां पधारे जब मेने जो मेरी दरयाफत से सेठजी के जुमे रुप्या बाकी रहा उसकी फहरीस्त पेश कर अरज किया के—ये रुप्या लागों ने महक्मेखास के हुकम के खिलाफ मन-मकसूद[2] दिया है, अगर अब भी सेठजी का घर का ठीक बंदोबस्त होगा तो रुप्या वसूल हो सकेगा, शायद कुछ बाकी भी रह जावे लेकिन थोड़ा हरजा रहेगा। जिस पर फरमाया—"रुप्या दिया ज्यांने तो मारी मुरजी वेगा तो पूछूं गा वरना सेठजी ने तो 'नानणा को टापो ओडा-ऊंगा,"[3] खास कर मारी तरफ भी नाराजगी मालुम हुई। फिर कारवाई अई-पायगुजारी की वेती रही, फिर भी मेने रुप्या वसूली की सूरत सेठजी से कर के फहरीस्त नजर किया, उस वगत तो मंजूर फरमाई, परन्तु थोड़ी देर के बाद हुकम भेजा के इस कारवाई को मुलतवी रखा जावे। सेठजी का बड़ा उजर यह था के मीलकाठ वृजनाथजी की मारफत श्रीजी का हुकम सु ठेके ई शरत पर लिया के इसमें नुकसाण होगा वह दरबार से दिया जावेगा, उसमें ८० हजार को नुकसाण बयान कियो अर या रुप्या का दावीदार हुवा।

---

१. गोवणी—गुत्थी, उलझन।

२. मन-मकसूद—मन मक्सूद, स्वेच्छा से।

३. नानणा रो टोपो ओढाऊंगा—कंगाल करके छोड़ूंगा।
नानणा—विधवा स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त किया जाने वाला काला कपड़ा जिस पर छपाई भी होती है, मेवाड़ में विधवा स्त्रियां इसका घाघरा पहिनती हैं।

सादड़ी में अफीम सेठजी के ७०-७५ हजार की पोते उसके बाबत बृजनाथजी सेठजी की चिठियां अफीम आढत्या की कर देने वगेरे अंगरेजी डाक में लिखी, वो डाक के जरीए पकड़ ली। उसमें गो मेरा नाम कोई नहीं था लेकन कहीं ऐसा जिकर सुना गया के "सलाह वालों की सलाह भी पहली है", वो इशारा मेरो तरफ बृजनाथजी ने लगाया और इसका भी मुकदमा चलाना चाहा, और हर तरह को मेरे ही ऊपर उन्होंने कमरबन्दी को, मुझको कुछ-कुछ हाल मालुम होता रहता था लेकिन चुप-चाप अपना काम करता रहता था। उसी अरसे में लाख रुप्या की हुंडी टांका की राज से अजंटी में गई, खजाना सेठजी ही के था, खजाना का काम चलताई था, उनको अजंटी से मिल गई, इसकी एवज में बारा हजार माहवारी भील कोर के खरचे के दिये जाते थे उसमें भी तंगी आ गई। विडलफ साहब भी बंदोबस्त खतम कर चले गये, माल का महकमा महता भोपालसिंहजी के सुपरद हो चुका था उनको बंदोबस्त के काम चलाने में कई दिक्कतां पेश आई, यांने बंदोबस्त के कानून में बहशां पेदा कर दी गई इसी के जरीये से जाहरा फिर वींगेट साहब कुं बुलाने की दरखास्त रजीडंसी में हुई के एक दफे २ वरस के लिये आकर इस काम को साफ करे, दर-परदे उनको मुझसे नाराज समझते थे जिसका जिकर ऊपर लिख चुका हूं, मुकदमा मेरे पर उनसे कराणा था, आखिर वींगेट साहब तीन हजार महावार तनखा पर आया और काम बंदोबस्त का दुरस्त करना सुपरद हुवा, लाला केसरीलालजी सिरस्तादार मुकरर हुवा। फिर सेठजी[1] का मामला उनके सुपरद इस गरज से हुवा के छः लाख रुप्या सरकारी किस की

---

१. सेठजी जुहारमल—सेठ जोरावरमल बाफना (पटवा) गोत्र का ओसवाल महाजन था। उसके पूर्वजों का मूल निवास स्थान जैसलमेर था। उसके पूर्वज देवराज के गुमानचन्द नाम का पुत्र हुवा। गुमानचंद के बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावरमल और प्रतापचंद नामक पांच पुत्र थे। चौथे पुत्र जोरावरमल ने व्यापार में अच्छी उन्नति कर कई बड़े-बड़े शहरों में दुकाने कायम की और बड़ी संपत्ति प्राप्त की।

ई० सं० १८१८ में कर्नल टॉड मेवाड़ का पोलिटिकल एजेण्ट होकर उदयपुर गया। उस समय मेवाड़ की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी अतः कर्नल टॉड की सलाह पर महाराणा भीमसिंहजी ने इन्दोर से सेठ जवाहरमल को उदयपुर बुलाया और उससे कहा "राज्य के कामों में जो रुपया खर्च हो, वे तुम्हारी दुकान से दिये जावें और राज्य की सारी आय तुम्हारे यहां जमा रहे।" पोलिटिकल एजेण्ट ने भी उसे प्रबन्ध-कुशल देखकर अंग्रेजी खजाने का प्रबन्ध उसके सुपुर्द कर दिया। महाराणा ने उसे पालकी तथा छड़ी के साथ बदनोर परगने का पारसोली गांव और सेठ की उपाधि दी। (निरन्तर-पृष्ठ १३८ पर)

गफलात से उनमें बाकी रहे, खास कर इशारा मेरी तरफ था, दोयम "मील-काठ" का नुकसाण का दावीदार सेठजी बेजा है, राज से कोई हुकम नुकसाण देने का नहीं दिया गया है, वो ही जुमेवर है, इस बात को भी साफ की जावे। साहब कमीशन रा प्रसीडंट हुवा, चार मेंबर बाबाजी गजसिंहजी, ठाकर मनोहरसिंहजी, राणावत उदेसिंहजी, महता भोपालसिंहजी मुकरर वेर कमीशन शुरु हुवा। साहब ने मुझे कभी कमीशन के सामने नहीं बुलाया, बंगले पर मिलते रहते, मुझसे जबानी बहुत कुछ दरियाफ्त व सवालात जबानी करते रहते। मेने अपना सचा-सचा हाल सब जाहर किया और यह भी कह दिया—सेठजी बेशक मेरे बहनोई हैं, उनके घर का हाल मुझसे छिपा नहीं। संवत् १९३४ में भी इनका काम कचा रह गया, रजीडंसी मारफत दिये हुए वा देवस्थान वगेरे के ३।। साढे तीन लाख रुप्या राज के बाकी रह गये वो मेने ही वसूल किये, जमा होने तक ।।) का सूद समझ लिया गया, कोई राज की ऐक कोडी का भी नुकसाण नहीं हुवा बलके सूद में फायदा हुवा और इनका काम पोछा चलता कर दिया। इनके घर का

महाराणा स्वरूपसिंह के समय राज्य पर २० लाख से अधिक रुपयों का कर्ज था, जिसमें अधिकांश सेठ जोरावरमल बापना का था। महाराणा ने कर्ज निपटारा करना चाहा। ई० सं० १८४६ ता० २८ मार्च को उसने महाराणा को हवेली पर आमंत्रित किया और महाराणा की इच्छानुसार कर्ज का फैसला कर दिया। महाराणा ने प्रसन्न होकर उसके पुत्र चांदणमल को पालकी व उसे कुण्डाल ग्राम दिया।

जोरावरमल के दो पुत्र सुल्तानमल और चांदणमल हुए। चांदणमल के दो पुत्र जुहारमल और छोगमल हुए। महाराणा फतहसिंह के समय ई० सं० १८९३ तक उदयपुर और चित्तौड़ के बीच रेल न थी और चित्तौड़ का स्टेशन ६९ मील दूर होने से मुसाफिरों को उक्त स्टेशन तक पहुंचने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी, इसलिये उनके सुबीते के लिये महाराणा ने शहर उदयपुर तथा चित्तौड़गढ़ स्टेशन के बीच "मेल कार्ट" चलाना स्थिर कर इस काम को सेठ जुहारमल की निगरानी में रखा, परन्तु उस काम में बड़ा नुकसान रहा। इस पर महाराणा ने हानि की पूर्ति करने तथा पहले का बकाया निकाला हुवा राज्य का ऋण चुका देने की आज्ञा दी। उस समय उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, जिससे वह महाराणा की आज्ञा का पालन न कर सका। इस पर महाराणा ने राज्य के रुपयों की वसूली तक के लिये उसका पारसोली गांव अपने अधिकार में कर लिया।

[संक्षिप्त]।

दे० उदयपुर राज्य का इतिहास :

गौ. ही. ओझा पृ० १३३१-१३३५।

काम मुझसे छुपा नहीं है, जब तक मेरी सलाह पर चलते रहे, काम दुरस्त रहा। जबसे बृजनाथजी से मिल कर ग्रोर बदनमलजी मुनीम कु ं रखा है काम बहुत बेढब बढ़ा दिया गया, मेरी नेक सलाह पर ग्रमल नहीं किया। महक्मेखास का हुकम नहीं मानकर सबने रुप्या दिया ग्रोर ग्रब खजाने में भी रुप्या दिया ग्रोर ग्रब खजाने में भी रुप्या नहीं है, भीलकोर की तनखा रुकेगी, सादड़ी में ग्रफीम है वो रोक दी गई है। जब खजाने की तंगी रजीडंट साहब को मालुम हुई उन्होंने भी सेठजी की राज में बड़ी-बड़ी नोकरचां ग्रोर गवरमेंट को भी मदद दी है, पुराने जमाने में, ई वास्ते इनके घर का ठीक बंदोवस्त होना चाहिये वगेरे बहुत कुछ लखा-पढी कहन-सुन[1] की। वींगेट साहब ने बंदोवस्त के लिये मुझे पूछा, मैं कही इनका काम बहुत गड़बड़ है, इनका हिसाब देखने से सब हाल मालूम हो सकता है ग्रोर हिसाब की जांच के लिये मेरे भरोसे वाले भी शामिल होने चाहिये, मुझको बृजनाथजी की तरफ से हिसाब में जाल होने का पूरा शुबा है। ग्राखर वींगेट साहब श्रीजी में सेठजी के हिसाब की जांच करने ग्रोर उनका काम चलता रखने का बंदोवस्त वास्ते कमेटी मुकरर वेणी चावा बावत ग्ररज की ग्रोर उसमें महता राय पन्नालालजी भी मेंबर होवे, श्रीजी ने कमेटी मुकरर फरमाई। मारे सिवाय जोसी नारायणदासजी वा कोठारी बलवंतसिंहजी मेंबर हुवा, तीनों ने काम चलाने का भी बंदोवस्त किया, मुख [मुख्य] खजाने रजीडंसी का काम चलाना जरूर था। ग्रोर हिसाब देखा तो बहुत ही बे तरतीब ग्रोर हर जगाह मेल खुला हुवा निकला, बहियों में हर जगह पाना छूटा हुवा, जमा की तरफ ग्रत्तो, ग्रत्तो की तरफ जमा लिखी हुई, चावे जद चावे जेसा जमा खरच कर सकते, ग्रांकड़े केही वरसों से वणाये ही नहीं, न बाहर की दुकानों के ग्रांकड़े ग्राये, पोते कुछ भो नहीं, बहुत ही ग्रबतर काम मिला। सब बहयों पर मेने दस्तखत किये ताके नया जमा-खरच न हो सके। सब जांच-परताल की गई जिसमें जत्ता खाता बृजनाथजी, भवानीनारायणजी, सरकारी दुकान के थे उनके जुमे ही कुछ कमीसन ग्राढ़त का लेणा-देणा भी पाया गया। रुप्या गुमास्ता खाय गया, मीलकाठ खाते लागता रहचा, कुछ वैपार में नुकसाण हुवा कुछ फजूल खर्ची में गया। मेरा तो ३ हजार रुप्या उनके जमा था, खाता दुरस्त मिला हुवा निकला। मेरे जुमे कोई खाता नहीं निकलने से दोनों मेंबर दिल में बहुत ना-खुश हुये। दो महीनां तक ये काम किया जत्ते महक्मेखास को काम भाई तखतसिंहजी करता रहचा। जस्यो हाल हो रीपोट की गई। साहब भी सब हिसाब, बहीड़ा मंगाया, ग्रछी तरह देख लिया ग्रोर कमीसन के सामने जांच कर ली ग्रोर जिन-जिन को रुपे दिये थे सब कमीसन के सामने जवाब लिया

---

१. कहन सुन—कहना-सुनना, कहासुनी।

सिरफ मोतीसिंहजी कोठारी कमीसन में बावजूद तलबी के नहीं गया। हाकमों के दफ्तर की सब मिसलां साहब मंगाय ली जिसमें मेरे हुकम सब मिल गये जिसमें रुप्या देने की मनाई की गई थी। वृजनाथजी की रीपोट थी के सादड़ो में दाण का जमा सालमसाही आवे, भंडार उदेपुरी देणा पड़े। सेठजी की दुकान सालमसाही जमा करा देवा की और ३ महीनां बाद भंडार उदेपुरी आंकरा जमा करावा की मंजूरी फरमावे। मेने लिख दिया—उदेपुरयों का भाव सु हुंडी ली जावे, सेठजी की दुकान जमा करावा की मंजूरी नहीं वे सके। ऐसे ही जगन्नाथजी ढीकड्या जाहजपुर जिला में सरकारी पोतदारी[1] तोड़ सेठजी की पोतदारी की मंजूरी चाही, नामंजूर की गई, लेकिन उन्होंने तो पोतदारी सेठजी की कर ही दी, बल्के उन्होंने बहस किया। चित्तोड़ हाकम थे जब सेठजी के डाकखाने के रुप्या जमा कराने बाबत यह कागज श्रीजी में पेश कर "खास आज्ञा" का हुकम भी ना ई का भेजा लेकिन उसका अमल नहीं किया; ईं सब अहकामात कमीसन में पेश हो गये। १२ महीनां तक कमीसन का काम चलता रहा जिसमें २ महीनां तक तो मेंबरों की बहश में ही अखीर रीपोट साहब की रुकी रही लेकिन असल बात के खिलाफ हो क्या सकता था, आखर एक राय कर दस्तखत रीपोट पर करना ही पड़या। अंगरेजी डाक को चिठयां पकड़ने का मुकदमा वृजनाथजी ने चलाया उसमें वृजनाथजी पर रेजीडंसी से सरकारी डाक के काम में ऐसा करने चिठ्यां लेने का जुरम लगाया गया। अफीम तो राज से रुकी हुई थी, वींगेट साहब ने जाबताई रपोट और उसके साथ अपनी चिठी श्रीजी में लिखकर महक्मेखास में मेरे ही पास भेजा, उसमें साफ लिखा था के यह काम ऐसा नहीं था के मुझको इस काम के करणे में १ साल खरच करणा पड़े लेकिन बहुत अरसा महता राय पन्नालालजी की तहकीकात में खरच करना पड़ा लेकिन वो तो साफ और पाक निकलते हैं, उनके जुमे कोई बात आमद नहीं होती और उनकी राय से काम नहीं किया गया उसको जुमेवरी भी उनकी नहीं हो सकती। इसमें कसूर अवल बृजनाथजी, दोयम भवानीनारायणजी, सोयम कोठारी मोतीसिंहजी का है, चारम ढीकड़्या जगन्नाथजी व महता रुगनाथसिंहजी का है, इन्हीं की वजह से रुप्या सरकारी जाया हुवा है, वगेरे। सिरफ जुरम साबत किया अखीर तजवीज नहीं लिखी। थोड़ी रकम दूसरे हाकमों की दी हुई थी वो खफ़ीफ रकम होने से जुरम में दाखल नहीं हुई। मीलकाठ को हरजो सेठजी ने मिलणा वाजब लिख्यो। ई रीपोटां श्रीजी में पेश कीदी गई, मुलाहजा होवा पर रंज ही मालुम हुवो, चंद रोज यूं ही पड़ी रही, आखर तजवीज हुई, १० हजार जुरमाना का वृजनाथजी सुं, १० हजार भवानीनारायणजी सुं, १० हजार

---

१. पोतदारी—सरकारी रकम जमा कराने का स्थान, ट्रेजरी।

मोतीसिंहजी सुं, दो-दो हजार जगन्नाथजी, रुगनाथसिंहजी पर जुरमाना का हुवा। वृजनाथजी, भवानीनारायणजी सुं जुरमानो वसूल कर निकाल्या गया। दूसरा का जुरमाना वसूल नहीं हुवा। सेठजी के जागीर को गांव पारसोली जबत कीदो गयो, रकम पूरी वसूल नहीं वे सकी।

इसी मामले में वींगेट साहब ने वृजनाथजी भवानीनारायणजी तालुक वैपार में बहुत नुकसाण लिख आयंदा रेल चित्तोड़ सुं अठा तक बणावा की राय दीदी वा भी श्रीजी में पसंद नहीं हुई।

वींगेट साहब के सुपरद दो-एक फोजदारी सरदारों के मुकदमे हुये जींकी तजवीजां लिख संवत ४९ में वापिस चल्या गया।

रेल के बाबत वींगेट साहब की रीपोट पर बड़ा साब, अजंट साहब बहुत कुछ कही, बणाना चाहिये बहुत फायदा है। पुलीस के बाबत पहले रुकी सो राज की ही पुलीस राखवा को हुकम भी मंगाय लियो गयो परन्तु मंजूरी को हुकम नहीं हुवो। बड़ा साहब, अजंट साहब मने भी राय पूछी, मारी राय साफ ही जो श्रीजी में मालुम करी वा ही राय उठे जाहर कीदी के ५०-६० हजार को फायदो तो मीलकाठ का खरच, डाक-पारसल की हिफाजत का, सवार, पैदल वा बग्यां का खरच वगेरे में किफायत होगा, व्याज भी ठीक उपज जावेगा, वोपार की तरक्की वेगा, आम ने आराम मिलेगा या ही साहब लोगां ने कही। आखर बड़ा—साहब रेल बणावा बाबत जोर देर लंबो-चोड़ो खलीतो श्रीजी में लिख्यो, वी में ई भी लफज हा 'आपके मीनीस्टर की राय भी रेल बणाने की है' या बात भी लोगां ओर तरह जचाई, खेर, मैं अपना काम करता रहा आखर देबारी[1] तक रेल बणाना मंजूर हुवा। संवत ५० का फागण में देवारी उदेपुर सुं आठ मील पर बड़ा साहब टरेवर साहब भी मोजूद हा, रेल की नीम को पत्थर रख्यो गयो।

संवत ४८ में स्यामजी कृष्ण वर्मा बेरीस्टर १०००) महावार पर नोकर राख्या गया, सिरफ सलाहकार हा ओर सभा में भी काम करता हा, यां री

---

१. देवारी—उदयपुर का प्रवेश द्वार जो उदयपुर शहर से ८ मील दूर है। यहीं से पर्वत-श्रेणियों ने उदयपुर को घेर रक्खा है। देबारी का दरवाजा बन्द हो जाने पर इस मार्ग से न तो उदयपुर में प्रवेश किया जा सकता है न कोई उदयपुर से बाहर जा सकता है। चित्तौड़ से देवारी तक रेल बनाने का कार्य मि० कैम्बल टॉमसन की निगरानी में हुआ।

साहब लोगां पास ग्रामदरफत जारी हुई, लेकिन सेठजी का मामला में तो जो कुछ बात चावता वा नहीं हुई ।

संवत ४८ में नाथद्वारे लाल बाबा हुवा मारी तरफ सु ४५०) को दस्तूर भेज्यो गयो । सं० ४८ में ही फतहलालजी के दूसरो लड़को हुवो ड़ोढ़ महीना को वेर हरिसरण हुवो ।

वापजी नंदकुंवर बाई[1] को व्याव कोटे करार पायो । शरतां ५० हजार नकद श्री वापजी के सालयाना वा पाटवी पणा का बरताव वगेरे ग्रागे फूलजो वापजी को व्याव हुवो वीं माफक शरतां करार पाई । भाई तखतसिंहजी वा हमेरगढ़ रावजी भेज्या गया । जान का डेरा कस्नपोल बाहर लेणा का परेट का चोक में हुवा । जान खुश्की के रस्ते ग्राई, सब बंदोवस्त ठीक हुवो प्रंत महारावजी सदीव सु ड़ावा ड़ोड़ा[2] बैठता हा वा ही चाल ही ग्रब महारावजी जीमणा[3] वेढचो चाह्यो । ई को साहब लोगां तक बात-चीत हुई कोई बात करार नहीं पाई जीं सु गोठ, दरीखाना वगेरे नहीं हुवा । खानगी मुलाकातां हुई, महारावजी जीमणा वैठा । मारी तरफ सु व्याव का दस्तूर का जनाना-मरदाना सरपाव ५५०) का वा गोद को दस्तूर भेज्यो गयो । ई व्याव में ग्रजंट गवरनर जनरल टरेवर साहब भी शरीक हुवा । खाणा के वगत स्पीच दीदो जींमें मारी कारगुजारी की तारीफ बहुत ग्राछा हरफां[4] में कीदी गई या बात भी श्रीजी में नागवार हुई ।

संवत १६४६ माह विद ५ ने फतहलालजी के देवीलाल[5] को जन्म हुवो, ई साल मय खटला के गढ़बोर, नाथद्वारे दर्शणा वास्ते गया ।

ई साल में माइल साहब को तबादलो वेर साहब दो महीनां वास्ते ग्राया बाद में वायली साहब पक्का रजीडंट वेर ग्राया ।

काकाजी फूलचन्दजी संवत १६४८ पोस वदि ४ ने देवलोक हुवा । काम सरहद की मोतमदी को साहब पास केई बरसां सु सुपरद हो सो करता हा ।

---

१. नंदकुंवर बाई—महाराणा फतहसिंहजी की प्रथम पत्नी जो ठिकाना खोड़ की थी से उत्पन्न संतान । इनका विवाह कोटा के महाराव भीमसिंहजी से हुआ था ।
२. ड़ावा-ड़ोड़ा—बायीं ग्रोर ग्रथवा तिरछे हटकर वैठना (Left side) ।
३. जीमणा—दाहिनी ग्रोर (Right side) ।
४. हरफां—शब्दों में ।
५. देवीलाल—पन्नालालजी का पौत्र एवं प्रस्तुत जीवनी की प्रेस कॉपी का लिखने वाला ।

चीन वाला हिन्दुस्तान की अफीम लेवो बंद कर देवो चाहचो। ईं के बाबत बहुत कुछ अफीम की खेती वैपार वगेरे हाल दरयाफ्त हुवो और बहुत सवाल वैपारी, अफीम बोवा वाला करसा[1] वगेरे का रीयासत का जवाब वास्ते आया, अंगरेजी मे, वीं की कारवाई कर सब जवाब अंग्रेजी में भेज्या गया। बायली साहब ना-पसंद कीदो, मने बुला र कही—जवाब दुरस्त नहीं है, सब इजहार[2] अलग-अलग चावे, वैपारियों का एक इजहार है। मां कही बहुत कुछ तै कर जो असल बात थी वो लिखाई गई है, अलग-अलग इजहार होता तो मुक्तलफ[3] बयान होता जिसमें सही बात को ढूंढणा पड़ता, अब वगत नहीं है, मयाद अनकरीब है, आप भेज देवें, साहब भेज दिया। मालुम वे साहब कुछ लखी वेगा, जवाब आया के जवाब बहुत दुरस्त आये, बायली साहब मने बुलाय खुशनुदी जाहर कीदी।

मदरसा असपताल को काम कमेटी सुं रजीडंसी में हो तो! प्रसीडंट रजीडंट मायल साहब हा वांरो वगत खतम होवा पर पेन्सन लेर वलायत गया वीं वगत कमेटी की तरफ सुं अभिनंदन-पत्र दियो गयो। मदरसा, असपताल में बहुत तरक्की हुई, जिला में भी मदरसा, असपताल कायम वे गया वगेरे।

काम चलने में अब गड़बड़ी होने लगी। सेठजी का मामला में मारी सफाई का बारा में खुशनुदी जाहर वेणी चावती ही पर बजाए ईं के रंज ही मालम हुवो, ईं सबब मारी तबीयत भी रंजोदा ही रही। श्री भाईजी साहब को गया श्राध करणो हो सो दो महीना की सीख लेर काम रो चारज भाई तखतसिंहजी ने देर रवाने हुवो। मायनुं, फतहलालजी वां के बहू भी साथ हा। मथरा, प्रयाग, कासी होतो हुवो गया श्राध कर वापिस अठे आयो। लवाजमो स्टेसन तक बदस्तूर मिल गयो, जात्रा ब-खुशी हुई। मथरा में सेठजी की तरफ सुं वरज[4] का नामी स्थानां पर जावा वास्ते वग्यां की डाक वगेरा को वा भरतपुर का स्टेशन तक बंदोवस्त बहुत आछो हुवो। सेठजी जीमाया, खातर बहुत आछी कीदी। काशीजी में राजा शिवप्रसादसिंह वगेरे सुं मिलवो हुवो, पंडतां की सभा कराई गई। गढबोर, नाथद्वारे वेर अठे आवो हुवो। केलासपुरी[5] सुं आवतां चीरवा का घाटा में तखतसिंहजी की चिठी मिली के

---

१. करसा—किसान।
२. इजहार—इज्हार, जाहिर करना।
३. मुक्तलफ—मुक्तलिफ, अलग-अलग।
४. वरज—व्रज।
५. केलासपुरी—एकलिंगजी।

स्यामजी[1] बेरिस्टर के जरिए देलवाड़े राज[2] ग्राप पर वा रजीडंसी का हेड कलरक पर पांच-पांच हजार रुप्या रिसवत में देवा को दावो रजीडंसी में कीदो है सो रजीडंट साहब खुद तहकीकात करेगा वगेरा हाल की चिठी ग्राई ; ग्रठे ग्रायो, तखतसिंहजी चारज को ग्ररज कीदी, पाछो मने देवा को हुकम हुवो सो चारज लीदो गयो ।

देलवाड़े राज की तरफ सु वेरीस्टर स्यामजी कृष्ण वर्म्मा गो राज में नोकर हा वांके जरिए मने वा रजीडेंटी का हेड़ कलरक ने ५ पांच हजार बतोर रिशवत देवा को जावताई दावो कीदो । सबूत में देलवाड़ा का बईयां, खाता वा गवाह पेश हुवा । हेड कलरक ने रुप्या फतहलालजी की मारफत देवो, ग्रक्का[3] में ले जावा वगेरे बयान कीदो । रजीडंट साहब बा-जावता तहकीकात कीदी, फतहलालजी का कोचवान को भी बयान हुवो । खास रजीडंट साहब बयान लीदो, ग्रखीर में कोई सबूत नहीं हुवा बलके बईयां, खाता में यकाकूक कोदा सावत हुवा, ग्रौर सहीवाला वगतावरसिंहजी का कागद रुप्या भेजवा का ग्रावा पर खरच होवा का बिजनस पेश हुवा, हेड़ कलरक बरी हुवा । मां पर जो कोई सबूत ही-ही नहीं ई वास्ते मने साहब पूछ्यो ही नहीं, लेकिन सुणी गई के श्रीजी में ग्ररज कीदी के मेने पन्नालालजी से नहीं पूछा, ग्रगर पूछता तो मुझको ही शरमिन्दा होना पड़ता । वगतावरसिंहजी सहीवाला ग्रणी जुरम में वकालात सु खारज हुवा ग्रौर "राय" को खिताब छीन लियो गयो । मुकदमो खतम होवा बाद ठाकर मनोहरसिंहजी की मारफत ग्ररज कराई के—"मारी तहकीकात ग्रर मां पर दावो रजीडेंसो में क्यु ? मू तो हुजूर को खानाजाद हो, हुजूर ही तहकीकात फरमाय लेता, हुकम वेतो जो तामील करतो ।" जीं पर फरमाई के—राज देलवाड़ा स्यामजी के चाले लाग[4] यो कीदो, फकत ।

जद के खेरख्वाही के साथ नोकरी करवा पर भी ई तरह मुकदमा होवा लागा, जद जो २५ वर्ष की खितमत की नेकनामी ही जी में फरक ग्रावा

---

१. स्यामजी—श्यामजी कृष्ण वर्मा ।
२. देलवाड़े राज—देलवाड़े से ठाकुर मानसिंह, इनकी २२ जुलाई, १९१३ को निःसंतान मृत्यु होने पर बड़ी सादड़ी के सरदार रायसिंह के चौथे भाई जवानसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया ।
३. ग्रक्का—इक्का, तांगा ।
४. चाले लाग—बहकावे में ग्राकर ।

सिवाय कोई बात नजर में नहीं आई। मालकां सु न्यावटा[1] कराया जावे नहीं, ई सबब काम सु अलग वेणों ही मुनासब समझ्यो।

थोड़ा दिनां बाद शाहपुरे राजाधराज चाकरी में आवो बंद कर दियो क्युं के अठे आया जद हुकम हुवो, संवत ४७ में के तीन महीना अठे रहवो अर वां के मां चल जावा[2] पर भी रुखसत नहीं हुई, आखर नहीं हाजर होवा तावे दो गाम देवारी पास का जब्त हुवा जीं पर वां चाकरी नहीं होवा को दावो देवली की छावणी का अजंट मारफत कीदो। देवली सु कागजात मय सनद, सबूतां के अठे रजीडंसी मेवाड़ की मारफत वास्ते जवाब आया और सं० १९५१ का सावण में थारनटन[3] साहब देवली सु अठे आया जद मने रजीडंट वायली साहब मारफत हुकम मिल्यो के थारनटन साहब सु मिले तो शाहपुरा बावत बातचीत नहीं करे; जद जो कागज शाहपुरा का आया हा वी नजर कर दीदा। ई हालत में काम करणो फिजूल हो।

थोड़ा दिनां बाद अजंट गवरनर जनरल टरेवर साहब अठे आया, वां सु मिल्यो, साहब खुद ही कुछ अठा का इंतजाम की शिकायत कर मने कही—आप जोधपुर माफक इंतजाम कर सकते हैं ? सरदार लोग सरकस हैं। मैं अरज की दी—जो जोधपुर में अक्तियारात काम करवा वाला का, लवाजमा, तनखा को बंदोवस्त वे तो मूं उठा सु भी आछो बंदोवस्त कर सकूं हूं वरना अब मैं काम करना नहीं चाहता क्युं के काम चल नहीं सकता, मेरा अस्तीफा अच्छा हरफां के मंजूर हो जाना चाहिये। फेर साहब के जावा के एक दिन पहले साहब मने बुलाकर फरमाई के आप छः महीना वास्ते रुखसत ले कर कई बाहर चले जावें और छः महीना में काम ठीक नहीं चलेगा तो दरबार काम आपको पोछा सुपरद कर देंगे वरना अस्तीफा दे देणा। मारे भी जात्रा करणी ही, ई बात ने मंजूर कर ली दी ओर दो-तीन हफ्ता बाद कुल काम निकाल भादवा सुद १०[4] चारज सहीवाला उरजणसिंहजी, कोठारी बलवंत-सिंहजी ने दियो। सिरफ १० कागद पेशी का अर वस्तो, छाप की डाबी, छायां उरजणसिंहजी तीरे भेज लिख दीदी के ई सिवाय कुल कागद मिसलां माहफीज दफतरां पास है। चारज यां दोयां ने देवा तावे खास दस्तखती टीप श्रीजी लिखाय जगन्नाथजी ढीकड़्या लार मां तीरे भेज दी।

---

१. न्यावटा—मुकद्दमा।
२. मां चल जावा—माँ की मृत्यु हो जाने पर भी।
३. थारनटन—थ्रॉनटन।
४. विक्रम संवत् १९५१ भादवा सुद १० (ई० सन् १८९४)।

भादवा सुद मैं मय मायनु के जात्रा वास्ते रवने हो गयो, साथ में लुगायां आदमी २५ हा, चार नोकरचा भी लार वास्ते मिल्या। रेल जात्रा में दो चपड़ासी, चांदी की चपड़ास का, जो महक्मेखास में हा मिल्या। अठा सुं कैलाशपुरी, नाथद्वारे, गढबोर होता हुवा सीधपुर पाटण मातृ-श्राद्ध कर अहमदाबाद मगनभाई की कोठी में ठहरचा। महमानदारी को बंदोवस्त यांकी तरफ सुं हुवो। उठा सुं राजकोट पहुंच्या, वठे महमानदारी राज सुं हुई, महाराज तो नहीं हा, महाराज के मांयनें मुजरो मालुम करायो गयो, सोपारी पान वगेरा पाछा आया। उठासुं सुदामापुरी यानि पोरबंदर पहुंच्या, उठा का रईस मुलाकात कुरस्या की कीदो, ताजीम दीदी। वठा सुं बोट में बैठ "द्वारका बेठ"[1] गया, उठा सुं पाछो बोट सूं सुदामापुरो आया उठा सूं जूना-गढ गया। वठे गरनार दत्तात्रय को यात्रा कर बम्बई पूगा।

उदयपुर से देसूरी तक लवाजमा, हाथी म्यानो पहरा सवार वगेरा वगस्या गया, रेल सवार होवा पर यांने देसूरी सूं सीख दीदी।

जूनागढ सुं वडोदे पूगा, उठे सब बंदोवस्त महमानदारी को राज सुं हुवो। महाराज तो नहीं हा, महाराजकुमार हा, वां सुं मुलाकात हुई, सीख को सरपाव आयो। मनीभाई दीवाण कुल अखतियार सुं काम करता हा, वांका मकान पर जलसो मेवा वगेरे चा-पानी हुवो, रंडचां को नाच हुवो, नाच अस्यो आज तक देखवा में नहीं आयो। बम्बई में एक महीनो रहवो हुवो। हरकृष्णदासजी, मनजी, बसनजी, गोरधनदासजी के महमान रह्या, बहुत ही खातर कीदी। बम्बई में कुछ दिन बुखार आवा लाग गयो, डाक्टर बहादरजी इलाज कीदो, आराम हुवो, दूध पीवा की नफरत ही जीं के लिये वां दवा कीदी जीं सुं दूध पीवो शुरू कर दीदो, वहुत फायदो हुवो। वीं दवा का साधन सुं सफर में तंदुरस्ती ठीक रही। कदी कदी मांयने सर का दरद की तकलीफ हो जायां करती ही। उठा सुं नागपुर, रायपुर वेर कलकत्ते पहुंच्या। नागपुर, रायपुर में जबलपुर का सेठां की दुकानां ही वांकी तरफ सुं महमानदारी हुई। नागपुर में नारंग्यां की मोसम ही, नारंग्यां वठा की मशहूर है, खूब खाई। कलकत्ता सेर कीदी। फतहलालजी भी बम्बई आय गया हा, वायली-साहव भेज्या हा के अब अस्तीफा लिख देना ही बहतर है। कलकत्ता में १० दिन रह्या, सेल कीदी फेर अस्तीफो ईं मजमून को लिख्यो के—"चंद सबबां सुं अब मूं काम नहीं कर सकूं, मारी २५ वर्ष की खिदमत सुं रीयासत में बहुत फायदो हुवो है सो अच्छा हरफां में अस्तीफो मंजूर फरमायो जावे', यो कागद

---

१. द्वारका बेट—बेट द्वारका; बेट का अर्थ बंदरगाह है।

वा बायली साहब के नाम चिठी लिखकर फतहलालजी ने कलकत्ता सुं पाछा उदयपुर भेज्या। मूं जगदीश[1] बोट में रवने हुवो। उठा सुं सतार बजावा वाला जियालालजी को साथ वे गयो, जगदीश तक बहुत आनंद रह्यो। चांदवारी बोट सुं उतर, रात रह पूजा की, रसोई जीमी। छोटा बोटां में नहर के रस्ते कटक पूगा, नहर की बड़ी शोहरत ही। कटक सुं बेल गाड्यां में भवनेश्वर, गोपालजी वेता हुवा जगदीश पूगा, आठ दिन वठे रह्या। रेल जां दिनां नहीं ही, बणती ही। वठा सुं फेर बेल गाड़्यां में रामेश्वर को रस्तो लीदो। १०४ मील पर इच्छापुर में रेल मिली। वठा सुं रेल सवार वेर विजयनगर पूगा, महाराज साहब नहीं हा, सब महमानदारी को बंदोवस्त राज की तरफ सुं हुवो। उठा सुं पणा नरसींग वा लछमण बालाजी रंगजी, विष्णुकांची, शिवकांची, मदरास वेता हुवा मदुरे पहुंच्या। मदरास में सेठ कसनदासजी की तरफ़ सुं महमानदारी हुई, भगतण्यां को नाच गाणो हुवो। उठा सुं रामेश्वर पहुंच्या, ८ दिन रह्या। दक्षण में मंदर बहुत बड़ा-बड़ा है। वृन्दावन सेठां को मंदर, जीं तरज का हा परंतु वृन्दावन में छोटो है। मदुरा में मीनाक्षी देवी को मंदर बहुत बड़ो और बहुत उमदा हो रामेश्वर सुं खंडवे वेता हुवा रतलाम आया। सेठजी दीपचंदजी की तरफ सुं बहुत खातर हुई। उठे ठहर लवाजमो, सवारयां भेजवा को उदयपुर अरज कराई, जीं पर हुकम आयो के—"हाल अज्मेर ठहरो।" छः महीना वे चुका हा लाचार अज्मेर आया उठे १।। महीनो उपरांत रहणो पड्यो, कोई जवाब नहीं आयो। इत्तफाकन बायली साहब रजीडंट मेवाड़ अज्मेर आय गया हा, वांसुं मिल्यो, उदेपुर की रोक की वांने कही गई जीं पर फरमाई—"आप उदेपुर नहीं जा सकते और जाना ठीक भी नहीं, दरबार कुं काम चलाने में आपके वहां रहने से हरज़ होता है, हां, फतहलालजी को काई काम मिल जाएगा।" मां कही—इसकी वजह क्या है, मैंने रयासत की खेरख्वाही से नोकरी की है, परंतु अस्यो ही जवाब देता रह्या, खेर सबर कीदो।

वैसाख में श्रीजी में अरज लिख भेजी के उदयपुर आवा री इजाजत हाल नहीं वे तो तीन धाम वे गई, बदरीनारायण की धाम रही सो उठी ने जात्रा की रुखस्त मंजूर फरमावें। चंद रोज जवाब नहीं मिल्यो आखिर हुकम उदयपुर आवा रो वैसाख विद में हुवो। सब सवारयां, लवाजमो भेजवा को भी हुकम चित्तोड़ तक वे गयो। बजाय हाथी के बगी आई। उठा सुं अठे पूगो, श्रीजी में मुजरो-नजर आवतां ही वे गयो। बाद में रजीडंट साहब सुं मिल्यो, या ही कही के २ (दो) हफ्ता बाद आप पाछा अज्मेर चल्या जावे, मैं कही

---

१. जगदीश—जगन्नाथपुरी।

"आप लिखकर दे देवें" ई सु भी इनकार कीदो। श्रीजी में सु कोई हुकम ही नहीं मिल्यो फिर तो बाहर जावा की जरूरत ही नहीं हुई। वायली साहब सिरफ स्यामजी कृष्ण[1] [वर्मा] वगेरे की शिकायत वा कहवा सुणवा सु वांका धोका में असी कारवाई करता रह्या, ताहम, मूं तो वायली साहब को शुकर गुजार हुं के बा-इज्जत काम छुड़ाय दियो। अठे आवा पर अस्तीफो मंजूर वेर छः महीना छुट्टी की तनखा भी मिलवा को हुकम वे गयो। राज सु अस्तीफा को जवाब नहीं मिल्यो लेकिन अजंट गवरनर जनरल चिठो बहुत उमदा खिदमत की वा गवरमेंट के कदर करवा को वगेरे मजमून को भेजी वा ई माफक है :—



Rai Pannalal Mehta C. I. E. has been in Chief Official of the Udaipur Durbar for I believe about 25 years and has been highly praised for his abilities by successive Residents. He now retires from office having been held in high estimation by the Government and to the regret of many friends in Mewar.

My best wishes attend him.

I trust he will find peace and repose after his long distinguished career.

G. H. Trevor
Agent to the Governor
General for Rajputana

Abu,
18th March, 1895.

सं० ५१ करीब-करीव जात्रा में ही खतम हुवो, काम कोठारीजी, उरजणसिहजी करता रह्या। उरजणसिहजी खाली दस्तखत कर देता, काम को बोझो कोठारीजी पर ही हो। मुख काम शाहपुरा का दावा का जवाव को ही बाकी हो सो कोठारीजी की वगत ई ही काम में खराब वेती। केसरीलालजी की मदद सु मसोदो जवाव को बणायो। दूसरो काम, सं० ५१ में ही जूड़ा-सीरोही की लेन पर साहब मुकरर वे गया सो ई काम वास्ते मोतमीद मुकरर कर भेज्या परंतु ठीक मदद नहीं मिलवा सु जूड़ा इलाके, मेवाड़ की सरहद को कोसां पर्यंत नुकसान हुवो, ई की शिकायत ही रही।

सं० ५२ में शाहपुरा का जवाब को मसोदो पेश हुवो जीं पर मने, प्रोत पदमनाथजी, राणावत उदेसिंहजी ने बुलाय मसोदो सुणायो, श्रीजी बुलाय हुकम फरमायो मसोदो सुण्यो, ठीक है, दो जगा तो तारीफ कीदी, मैं अरज करी—दो लफ्ज ई में सख्त है सो नरम वेणा चावे और साहब गाम पचोली, वारणी की उठंत्री के वास्ते लिखे सो सरदार हाजर नहीं होवे तो धूंस-खालसो होवे ही है, हाजर होवा पर उठंत्री होवे सो शाहपुरा वाला चार बरस सुं हाजर नहीं हुवा सो या लिखी जावे तो ठीक है; हाजर होवा पर उठंत्री मुमकिन है", मंजूर फरमाई। ई पर शाहपुरा वाला हाजर तो वे गया, उठंत्री भी हुई परंत तसफीया[1] की सूरत नहीं निकली।

रेल को काम जारी वे चुको हो, संवत ५२ में खतम हुयो परन्तु खरचा का २० लाख २४ हजार संवत ५० का साल में ही अत्तो मंड़ाया गया, कोठारीजी की मंशा या वेगा के संवत ५१ का साल में वांरा काम को खरच कम मालुम पड़े।

वायली अजंट गवरनर जनरल मुकरर हुवा, अठे रजीडंट रेवनशाह आया, वाड़ी दो-तीन दफे मिलवा आया।

मेरे दिन आराम के साथ गुजरवा लागा। संवत् ५२ में शहर उदयपुर का कुल बामण यांने ८४ चोरासी जीमावा को आरंभ कीदो, ३ वर्ष में खतम हुई, करीब ५ हजार रुप्या लागा। सेठजी जवाहरमलजी रा भतीजा रो विवाह महताजी भोपालसिंहजी री बाई सुं हुवो, वांने सगरी बनोला दिया गया, जलसो कीदो गयो। अज्मेर भाणी बाई रो विवाह हुवो, सेठजी समेरमलजी के बाई के मायरो भेज्यो गयो।

---

१. शाहपुरे के स्वामी को मेवाड़ राज्य की ओर से काछोले की जागीर मिली थी जिसके बदले प्राचीन प्रथा के अनुसार अन्य सरदारों के समान उसे भी नियत समय तक महाराणा की सेवा में उपस्थित होना पड़ता है। राजाधिराज नाहरसिंह ने वि० सं० १६४७ से महाराणा की सेवा में उपस्थित होना बन्द कर दिया, जिस पर महाराणा ने पोलिटिकल अफसरों से लिखा—पढ़ी की। अन्त में अंग्रेजी सरकार ने यह फैसला किया कि शाहपुरे की जमियत तो हर साल, परंतु स्वयं राजाधिराज दूसरे साल नौकरी दिया करे और उसके उदयपुर में उपस्थित न होने के कारण महाराणा उससे १०,००० रु० जुर्माने के वसूल करे। इस निर्णय के अनुसार नाहरसिंह वि० सं० १६६७ (ई० स० १६१०) से बराबर नौकरी दे रहा है।

दे० गौ. ही. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ११५६।

लार्ड ऐलगीन[1] संवत ५३ में आया। वापिसी दरबार में नजराणा में नामो नहीं मंडायो सो जावो दरबार में, महलां नहीं हुवो। स्यामजीकृष्ण वरमा[2] तो उदेपुर छोड़ जूनागढ तनखा री तरकी हुई सो वठे चल्या गया। अजंटी में जवाब नहीं भुगतावा वगेरे शिकायत शुरु हुई, ई पर स्वामी ज्ञानानंदजी[3] को अठे आवो हुवो वे सलाहकार हुवा परंतु वां पर गवरमेंट ने कुछ शक हो सो अठा सुं निकलवाया गया। स्याभजीकृष्ण आखर हिन्दुस्तान सुं भी निकाल्या गया।

---

१. लार्ड एल्गिन—ई० सं० १८९६ (वि० सं० १९५३) में भारत का वाइसराय लॉर्ड एल्गिन उदयपुर आया, यह प्रथम वाइसराय था जिसने चित्तौड़ से देबारी तक रेल द्वारा यात्रा की।

२. श्यामजी कृष्ण वर्मा—वि. सं. १९५० में जब "सेठजी का मामला" चल रहा था उन्हीं दिनों महाराणा फतहसिंहजी ने कृष्णसिंहजी बारठ की सलाह से अजमेर से प्रसिद्ध बैरिस्टर श्यामजी कृष्ण वर्मा को बुलाकर उसे महद्राज सभा का मेम्बर नियुक्त किया कुछ समय रहने के बाद वह जूनागढ राज्य के दीवान के पद पर नियुक्त होकर चले गए किन्तु वापस उदयपुर लौटकर अपने पूर्व पद पर कार्य करने लगे किन्तु ब्रिटिश सरकार के विरोध के फलस्वरूप महाराणा उसे अधिक समय तक अपने यहां नहीं रख सके। श्यामजी कृष्ण वर्मा की नियुक्ति ही महाराणा फतहसिंहजी के ब्रिटिश विरोधी स्वभाव का प्रतीक मानी जा सकती है जिसके कारण ही महता पन्नालालजी को भी बाध्य होकर इस्तीफा देना पड़ा क्योंकि महाराणा की दृष्टि में महताजी ब्रिटिश अफसरों की दृष्टि में चढ़े हुए व्यक्ति थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अन्ततः स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। आपका उत्तरी लंदन स्थित "इंडिया हाउस ६५ कामवेल एवेन्यू, हाइ गेट; भारतीय क्रान्तिकारियों की तपोभूमि थी। श्यामजी कृष्ण वर्मा लंदन से एक अखबार भी निकालते थे जिसका नाम 'इंडियन सोशयलिस्ट' था।" अंग्रेजी सरकार के बढ़ते दबाव के कारण ये पेरिस चले गए जहां से भारत की स्वतंत्रता व क्रातिकारियों के बारे में लेख लिखा करते थे। अन्ततः इनकी मृत्यु भी फ्रान्स के पेरिस नगर में हुई।

३. स्वामी ज्ञानानंदजी—भारत धर्म महामंडल, काशी के स्वामी ज्ञानानंदजी स्वयम् प्रच्छन्न क्रांतिकारी थे और अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही के पक्षधर थे। उनका राजपूताना और मध्य भारत के राजा-महाराजाओं और सामंतों पर भी बड़ा प्रभाव था।

क्रान्तिकारी बारहठ केसरीसिंह :—प्रथम खण्ड : पृ० १८ की टिप्पणी।

संवत ५४ में बाहर का दरीखाना में भाई लक्ष्मीलालजी रो नोरो भड़ेई हो सो वां तीरा सुं लेर दरीखाना शामिल मकान बणावां को काम कीदो।

कोटे श्री ठाकुरजी मथुरानाथजी का गुसाईजी के बहूजी वा लालजी आया सो बड़ी-पधरावणी कीदी। नाथद्वारा सुं छोटा मंदर का बहूजी पधारचा सो वाड़ी पधरावणी कीदी और स्वामी बालारामजी मंडली सुदां आया बहुत ही विद्वान हा बांकी पधरावणी कीदी। एक खाख्यां की जमायत जीमें १०००-१२०० खाखी चतरमासा वास्ते आया, राज सुं चत्रमासो नहीं करायो, वे अठे ही रहया, अतरा को शहर में गुजर वेणो कठिन हो, खाख्यां बहुत ही तकलीफ उठाई ई वास्ते वांने ५००) दिया गया—भोजन वास्ते, के दो-तीन दिन गुजर कर सके।

भारत महामंडल का चंदा में १००) दिया गया। अज्मेर सेठजी समीर-मलजी हरिसरण हुवा सो खटला सुं धा अज्मेर बेठवा जावो हुवो, चार दिन रह कर वापस आया।

बापू देवीलाल के गढबोर चोटी-पट्टा भी रखावणा[1] हा, फालिज की बीमारी भी दो बरस को हां जद वे गई ही सो आसावरे माताजी[2] भी जावो हुवो। बोलमा कीदी, नाथद्वारे गढबोर गया, उछव के साथ चोटी-पट्टा रखाया गया। गढबोर देवीलाल ने चांदी की तुलां कराय रुप्या १२२५) की चांदी की पील-सोतां बणाय भेट कीदी। उठा सुं माहोली रेल में बैठ गोसुंड़े उतर आसावरे माताजी गया, पाछा आवतां भदेसर रावतजी बहुत मनुहार कर भदेसर में में राख्या, मेहमानदारी आछी तरह कीदी। कुछ देवीलाल के जावद भेरुंजी की भी मानता ही सो वठे मंदर धरमसाला पकी बणाई गई।

बीकानेर महाराज[3] ब्याव की ताकीद कीदी, अठासुं श्री बाईजी की कम उमर होवा के सबब इनकारी हुई जीं पर प्रतापगढ परणा गया, अठा को सगपण माफ हुवो।

---

१. रखावणा—सिर के बाल समर्पित करना, कटवाना।

२. आसावरे माताजी—आवरी माता, आज भी पक्षाघात होने पर लोग यहां की यात्रा करते हैं। मंदिर के पास ही तालाब है, कहते हैं कि उक्त तालाब में स्नान करते रहने व माताजी के नित्य दर्शन से आशातीत लाभ होता है। बढ़ती मान्यता के कारण अनेक धर्मशालाएं बन गई हैं। बड़ा ही सुरम्य स्थल है।

३. बीकानेर महाराज गंगासिंह, वि० सं० १९५४ आषाढ सुदि ९ को १७ वर्ष की आयु में इनका प्रथम विवाह प्रतापगढ (देवलिया) के स्वामी महारावत रघुनाथ-सिंह की राजकुमारी से हुआ।

स्यामजी कृष्ण वरमा के जूनागढ में खट-पट वे गई फेर धोखो देर अठे १५००) महावार पर आया, थोड़ा ही अरसा में जूनागढ़ का कागद रजीडंसी में आया—आदमी खराब है, जुरम से निकाला गया। अठा सु भी चार छः महीना बाद बिदा हुवा। फिर हिन्दुस्तान से भी निकाला गया और यूरु। में किसी जगह मरा।[1]

ई साल में दस्तों की बीमारी हुई सो चंद रोज वास्ते आवहवा वदलवा नाहर मगरे जावो हुवो, पाछा वठा सु अठे आया। नाथद्वारे गुसाईजी के लालजी[2] का जडुल्या उतारया[3] सो सरपाव वगेरा भेज्या। फतहलालजी कोटे, बीकानेर, गवालियर, अज्मेर. नाथद्वारे गया। श्री राणी साहव चूड़ो धारण कीदो सो सांजी[4] नजर कराई गई। अणत चवदस[5] को उजमणो[6] कीदो दोई वापुवां[7] रा भाटां री पोथी में नाम मंड़ाया।

संवत् ५४ में कमठाणो शुरू कीदो सो मकान वण तईयार हुवा, वास्तव कीदो गयो। अज्मेर भाणी वाई का व्याव में मायरो भेज्यो गयो। सगरो वंदोरो[8] महताजो रुगनाथसिंहजो, विट्ठलदासजी ने दीदो गयो। ई साल में दशरावा पर सब सरदार जमा हुवा, दुःख की कलमां[9] श्रीजी में मालुम कराई, रजीडंसी में भी पेश कीदी, कोई नतीजो नहीं हुवो।

संवत् ५६ में कहत[10] बहुत सख्त पड्यो, लाखां* रियाया[11] मर गई*, तीस लाख रुपया राज का कहत—खर्च हुवा। बहुत सा तालाव वण्या, करीव-करीब

---

१. फ्रान्स के प्रसिद्ध नगर पेरिस में इनकी मृत्यु हुई।
२. लालजी—पुत्र। ३. जडुल्या उतारया—चूड़ाकर्म संस्कार।
४. सांजी—सज्जा सामग्री।
५. अणत चवदस—अनंत चतुर्दशी।
६. उजमणो—उद्यापन।
७. मेहता फतहलाल के दोनों पुत्र देवीलाल एवं उदयलाल।
८. सगरी वंदोरो—विवाह के शुभ अवसर पर सपरिवार भोजन का निमंत्रण।
९. कलमां—अर्जियें। १०. कहत—दुष्काल, अकाल।
११. रियाया, रयाया—प्रजा।

*संवत् १९५६ का भयंकर अकाल "छपनिया रो काल" नाम से वर्षों तक याद किया जाता रहा। भूख के मारे लोगों ने अपने बच्चों को भी वेचने में संकोच नहीं किया। वि० सं० १९४७ में मेवाड़ की जनसंख्या १८४५००८ थी जो संवत् १९५७ में घटकर मात्र १०१८८०५ मात्र रह गई।

दे० उदयपुर राज्य का इतिहासः ओझा : पृ. ११५६

पछे सब फूट गया । अतरा रुपया खरच होवा पर भी कहत के बन्दोवस्त की शिकायत ही रही । बहोत सी रयाया-मेवाड़, देवगढ़ की वा दूसरी नये सहर चली गई, फिर रजीडंसी में बहुत शिकायत हुई, खुद कोठारीजी[1] ने नये सहर[2] जाय यांने लावणा पड़चा । फेर वांके लिये राज सुं बंदोवस्त हुवो, पछे वरस २ वरस बाद सब तकसीम कर जीं जीं जागिरदार की रयाया ही सब सुं रुप्या खरचा-खुराक का वसूल कीदा गया, ई की भी शिकायत ही रही । मने भी मारा गामां में बंदोवस्त रयाया ढ़ाबवा को करणो पड़चो, बीहाड़ा[3] में तालाब दुरस्त कराया गया, दो हजार रुप्या लागा और भी यथा-योग्य बंदोवस्त किया गया । कमेटी हुई चंदा में ३२५) देणा पड़चा ।

श्री कुंवरजी बापजी[4] के फालिज[5] की बीमारी सरू हुई जींको तीन चार वरस बहुत सदमो रह्यो, श्रीजी महाराज खुशी कीदा परंतु ऐक पग में कसर रह ही गई ।

छोटा बापू[6] के माताजी[7] जादा निकल्या । ऊंठाला माताजी बोलमा ही सो उठे मय खटला के जावो हुवो, उछब के साथ माताजी की मानता कीदी गई । हेजा की बीमारी भी संवत ५६ में बहुत जोर सुं हुई, शहर में धान[8] सिवाय घास को कहत बहुत सख्त रह्यो, जानवर लाखों मर गया अठा तक नोबत पहुंची के सरकार गवरमेंट सुं बरसात के पहले बहुत बेल खेती वास्ते मंगाया गया । खालसा में जागीरदारां ने तकसीम मुफ्त में कीदा गया । मने भी घास बहुत मेंहगो मोतमीद हदवस्त की मारफत रेल द्वारा मंगावणो पड़चो । धान मिलवा की भी बहुत शिकायत पड़-पड़ा रहती परंतु रेल को सबब है के धान आय सक्यो अगर रेल नहीं होती तो खरचो लागतां भी जो मनख बच्या वांको बचणो भी दुःशवार हो । संवत ५६ के मगसर में काकीजी

---

१. कोठारीजी—कोठारी बलवंतसिंह ।
२. नये सहर—वर्तमान ब्यावर ।
३. बीहाड़ा—मेहताजी पन्नालालजी की जागीर का गांव (जो जहाजपुर जिले में है) ।
४. श्री कुंवरजी बापजी—महाराजकुमार भूपालसिंह ।
५. फालिज—लकवा ।
६. छोटा बापू—मेहता फतहलालजी के दूसरे पुत्र उदयलालजी ।
७. माताजी—चेचक ।
८. धान—अनाज ।

(फूलचंदजी काकाजी के वहू) हरिसरण हुवा। मांयने[1] सु ई साल में बीमार हुवा, काली खून की दस्तां शुरू वी, इलाज वहुत कुछ हुवो परन्तु श्रीजी की मरजी, वैसाख सुद ९ हरिसरण हुवा। हेजा के सबब कड़ाई[2] बंद ही, करचा-वर वगेरा कोई भी जीमण नहीं हुवो, राज सु सख्त मुमानियत ही ई वास्ते ११०० नामा को ब्रह्म भोजन मुतफदीक[3] तीर्थां में करायो गयो। संवत ५६ में कड़ाई ऐसी बंद हुई के इजाजत होवा पर कुल मेवाड़ में करचावर यानि मरचा का नुगता करणा बिलकुल हुकमन बंद कीदा गया, ई में अधिष्ठाता महताजी भोपालसिंहजी हुवा।

संवत ५६ कहतसाली के सबब कोई सिरदार हाजर नहीं हुवा, अठा तक के कस्नगढ माजी साहब[4] देवलोक हुवा सो दरीखाना में कोई भी सिरदार हाजर नही हा सो गेणो धारण करावा को दस्तूर उरजणसिंहजी सहीवाला कीदो। ५ लाख ।) चार आना सैंकड़ा सु गवरमेंट पास सु उदारा राज में लीदा गया।

संवत ५७ में मारो खटला सूदां गढ़बोर, नाथद्वारे जावो हुवो। करचा-वर बंद होवा सु शहर में तो नहीं हुवा परन्तु मेवाड़ में करचावर रुक नहीं सक्या। लोगां सैंकड़ा-हजारां खर्च कीदा, करचावर करणां ज्यां जिस तरह वे सक्या कीदा। ई को शिकायत संवत ६२ तक जारी रही। मीसलां अदुल-हुकमी की बणी, हजारां रुप्या जुरमाना हुवा। संवत ५६ की कहतसाली को नतीजो यो हुवो के दो-ढाई लाख रुप्या की बंदोवस्त में जमीन छूट गई, हजारां कूड़ा पड़त वे गया, हांसल बहुत लाखां रुप्या को बाकी रह गयो। माल को काम भोपालसिंहजी करता सो या तजवीज कीदो के—बंदोवस्त तो है परन्तु कुल आसामी को अंदाजो पेदावारी माल को कर आधा रुप्या वसूल करना, हांसल बंदोवस्त को जमा कराय देवे सो वकाया संवत ५६ में जमा करणो। ई रो नतीजो भी वहुत खराब हुवो, तफेदार वगेरा अहलकारां के रशवत का दरवाजा खुल गया। कुछ आसामी रुप्या दे दीया, अंदाजो कम कर दियो, वजाय वकाया वसूल होवा के वढ़ती गई। चंद साल यो ही तरीको रह्यो आखर पाछलां बरसा में भोपालसिंहजी ने संवत ५६ की बाक्यात रा रुप्या छूट करावणा पड़या।

---

१. मांयने सु—अन्दर जनाने में, पत्नी।
२. कड़ाई—कड़ाही, कड़ाव (हेजे की बीमारी फैल जाने के कारण सभी प्रकार के भोज पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया)।
३. मुतफदीक—मुतफ़रिक, विविध, विभिन्न।
४. कस्नगढ माजी साहब—महाराणा सज्जनसिंह की दूसरी (पत्नी) महारानी जो किशनगढ़ की थीं।

संवत ५७ में फेर मरदुमशुमारी को हुकम गवरमींट सुं जारी हुवो। मरदुमशुमारी का कायदा ग्राया जीं माफक हुई। शुमारी मेवाड़ कुल १०२१४३०[1] की ग्राई गोया १९४७ की मरदुमशुमारी सुं ८ लाख रीयाया कम वे गई। ईं साल सुं खरचो कुल गाम वार तकसीम वेर हरेक जागीरदार माफीदार सुं वसूल हुवो। राज को काम ठीक नहीं चालवा की शिकायत ही रही, हजारां कागज पेशी में जमा वेता गया। मोरवी ठाकर के भाई हरभामजी[2] ने रुप्या १५००) महावार पर सलाहकार मुकरर कर बुलाया। वे भी २ वरस के भीतर-भीतर ही ग्रठा की नोकरी पसंद नहीं कर चल्या गया, कोई काम नेकनामी रो नहीं वण्यो। जादातर शाहपुरा का मुकदमा की जवाबदेही करणी ही, वहुत कुछ कीदी, परंतु चाकरी को कोई फेसलो नहीं हुवो ग्रौर मेवाड़ में मवेशी, वलद वहुत मर गया सो पाछी खेती के लिये हजार वलदां की जोड्यां गवरमेंट मुफत दीदी सो खालसा, सरदारां, माफीदारां ने तकसीम हुई, ग्रहलकारां का गामां का करसां[3] ने नहीं मिली।

संवत ५७ में ईडर वाला माजी साहव[4] छोटा देवलोक हुवा।

बड़ा वापू देवीलाल की सगाई जोधपुर राव वहादुरमलजी की बेटी सुं हुई। ग्रासोजी पूनम चन्द्र ग्रहण, काती विद सूर्य ग्रहण, हो सो हरद्वार कुरुक्षेत्र की यात्रा कीदी। दिली गया, उठा सुं हरद्वार, लछमण भूला तक गया, उठा सुं ग्रमृतसर लाहोर वेर कुरुक्षेत्र ग्राया, उठे ग्रहण कर पाछा दिली वेर ग्रठे ग्राया, साथ में भाई लछमीलालजी भी हा। कुरुक्षेत्र में ३ लाख ग्रादमी वेगा, जंगलां में वाजार लगाया गया, सिख लोग बड़ा लवाजमा के साथ ग्राया, ग्रन्थ साहव ने भी साथ लाया। ग्रहण के दिन पांच-चार ग्रादमी वहाव की भीड़ में मरग्या, जखमी हुवा। ग्रहण को स्नान वेता ही हलो उड्यो—हेजो वे गयो—लोग एकदम भागा। फोज ग्रर हाथ्यां सुं मुसाफिरां ने रोक्या। घंटा-घंटा में माल गाड्यां में भर-भर ग्रंबाला ग्रौर दिली तरफ भीड़ ने छांटी। ग्रक्का गाड़ी किराए मिलती नहीं सो उठे ही रहणो पड्यो। पटि-

---

१. उदयपुर राज्य के इतिहास में गौरीशंकर हीराचंद ग्रोझा ने यह संख्या १०१८८०५ दी है।

२. हरभामजी—वि० सं० १९५४ (सन् १८९७) में मोरबी राज्य के कुमार हरभाम को महद्राज सभा का मेंबर बनाकर बुलाया गया।

३. करसां—किसानों।

४. ईडर वाला माजी साहब—महाराणा सज्जनसिंह की तीसरी महारानी जो ईडर की थीं। इनका नाम केसरकुंवर था।

याला की हवेली में डेरो हो, तीन दिन में गाड़ी मिली जद स्टेसन पर पूगा, पेदल ही जाणो पड्यो । हजारां अक्का गाड़ी बगियां ही पर सब लोग पहले दिन ही ले गया । उठे ही गुसाईंजी महाराज देवकीनंदनजी को पटियाला की हवेली में बिराजवो हो, खूब समागम रह्यो । महाराज बड़ा विद्वान हा, रोज वाख्यान सभा पर्व तक वेता रह्यो ।

नाहर मगरे श्रीजी को पधारवो हुवो सो लार को हुकम हुवो । लार जावो नाहरमगरे हुवो । भाई लछमोलालजी ने भी लार को हुकम हुवो सो सामल ही रह्या ।

अज्मेर भाणी बाई का व्याव में मायरो भेज्यो गयो । संवत ५८ में भाई तखतसिंहजी गरवा सु बदली वेर कपासण गया । उठे रहनो पड़तो, अठे आवता जद महद्राजसभा में भी जावा वेता ।

संवत ५६ में महताजी सरदारसिंहजी चल्या सो फतहलालजी जोधपुर बैठवा गया । छोटा बापू उदयलाल की सगाई यांरे पोतो सु तै वे चुकी, महताजो कस्नसिंहजी ५०१) सु, रावजो ३०१) सु मिलणो कीदा । चन्दनमलजी लोढा छोटा बापू रे नान्या सुसरा अज्मेर में १०१) सु मिलणो कीदी ।

वासपूजजी का मंदर में १०१) मरम्मत का चंदा में दोदा । संवत् ५६ नाथद्वारे, गढवोर खटला समेत जावो हुवो । फतहलालजो सिधपुर पाटण मातृ-गया वास्ते गया ।

दिली दरबार[1] करजन लाठ कीदो । श्रीजी को पधारवो हुवो । खेद के

---

१. दिल्ली दरबार—ता० १ जनवरी, १९०३ को शहंशाह सप्तम एडवर्ड की गद्दी नशीनी की खुशी में दिल्ली में एक बड़ा दरबार हुआ । हिन्दुस्तान के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड कर्जन के विशेष अनुरोध करने पर तारीख ३० दिसम्बर को महाराणा उदयपुर से रवाना होकर ३१ दिसंबर की रात को दिल्ली पहुंचे परंतु सफर की थकान से ज्वर हो जाने के कारण दरबार में शरीक न हो सके । इस पर लॉर्ड कर्जन ने अपनी ओर से खेद प्रकाशित किया ।
दे० उदयपुर राज्य का इतिहास : गौ. ही. ओझा—पृ. ११५७ ।
दिल्ली दरबार में भाग लेने हेतु महाराणा ने जब निश्चय किया तो महाराणा के भूतपूर्व राजनीतिक परामर्शदाता कृष्णसिंह बारहठ के पुत्र श्री केसरीसिंह बारहठ को मर्मांतक पीड़ा हुई और उन्होंने महाराणा के पास डिंगल भाषा में १३ सोरठे कोटा से लिखकर भेजे जो स्पेशल ट्रेन के रवाना होने के बाद चित्तौड़
(निरंतर पृ० १५७ पर)

सबब दरबार में नहीं पधारचा । फतहलालजी साथ गया । लाठ करजन अठे भी आया, पेशवाई मुलाकात दस्तूर मुजब हुई । वापसी दरबार में मारो जावो हुवो, नजराणो कीदो, लाठ साहब ने नजर बताई गई ।

सेठ जवाहरमलजी के भाणी बाई परण्या सो मायरो कीदो । खास खजानो जानी मुकनलालजी हस्ते हो जींमें लाख रुप्या रो गबन मालम हुवो सो मुकनलालजी वा वांरो कामदार हीरालाल कोठारी केद हुवा । जानीजी सु कुछ वसूल नहीं हुवा, तीन बरस मुकदमो जेर-तजवीज रह्यो । ३ बरस मयाद भुगताय विदा कीदा । हीरालाल केद में ही मरचो, जमी-जायदाद जबत हुई । जोदसिंहजी ने रोकड़ के भण्डार को काम लछमीलालजी की निगरानी में हुवो, संवत ५९ में ।

संवत ६० में किशनगढ रो व्याव[1] हुवो । सरपाव मामूली भेज्या गया, गोद को दस्तूर वगेरे ५००) खरच हुवा ।

कांकरोली सज्जाघर का चंदा में ३२५) दीदा गया । बदरीनाथ की जात्रा जावो हुवो । फतहलालजी साथ हा । दिली वेर हरद्वार गया, उठा सु

से कुछ आगे बढ जाने पर स्पेशल में ही उन्हें दिये गये, वे पढ़कर तिलमिला उठे और बोले "यह कविता उदयपुर में क्यों नहीं मिली ? खैर, छूटा हुआ तीर वापस नहीं लौटता; मैं इस कहावत को भी झूठा साबित कर दूंगा ।" स्पेशल ट्रेन दिल्ली स्टेशन पर आकर लगी, किले से सलामी की तोपें दगीं, किंतु कुछ ही समय बाद स्पेशल फिर उदयपुर की ओर दौड़ने लगी । अखबारों ने बड़ी-बड़ी सुर्खियां देकर अखबारों में छापा, "महाराणा दिल्ली आकर भी लौट गये ।"

[स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बारहठ केसरीसिंह से संबंधित जो सामग्री प्रकाश में आई है उससे बारहठजी के "चेतावणी रा चूंगटचा" जिसे कुछ—समय पूर्व तक कपोल-कल्पना ही समझा जाता रहा है, उन पर, अब प्रामाणिक सामग्री के प्रकाशन के बाद विश्वास करना पड़ता है । महाराणा फतहसिंह दिल से अंग्रेज विरोधी एवं प्राचीन परम्परा के निर्वाहक एवं अडिग क्षत्रिय थे अतः इस प्रकार की कविता पा-कर दिल्ली दरबार में भाग लेने के लिये रुक नहीं सकते थे ।]

(सम्पादक)

अतः बीमारी का बहाना बनाकर लौट आए ।

दे० क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रथम खंड) पृ. १२०-१२२

धर्मयुग १७-२३ अगस्त १९८६ पृ. ४२ ।

---

१. किशनगढ़ रो व्याव—महाराणा फतहसिंह की पुत्री का विवाह किशनगढ के महाराजा मदनसिंह के साथ हुआ ।

देव प्रयाग वेर गंगोत्री गया, उठा सुं त्रजुगी-नारायण वेर केदारनाथ वेर बदरीनारायण गया । फतहलालजी के रस्ता में वाळो निकल गयो जींरी-तकलीफ रही । रस्ता में गुसाईंजी देवकीनंदनजी जो योग्य पुरुष हा, समागम रह्यो । बदरीनाथ सुं बरेलो वेर अयोध्या, कानपुर, मथुरा, वृन्दावन, बलदाऊजी वेर आवो हुवो ।

नाथद्वारे बेटीजी महाराज[1] परण्या सो सरपाव भेज्या गया । अज्मेर, जैपुर फतहलालजी को जावो हुवो । नाहरमगरे श्रीजी लार फतहलालजी गया, उठा सुं अज्मेर मेयो कालेज की कमेटी में श्रीजी हुजूर पधारचा फतहलालजी लार गया ।

बगड़ावले प्लेग के सबब नयो मकान बणायो सो तईयार हुवो । बीजोल्या रावजी कस्नसिंहजी रे और फतहलालजी रे पागड़ा-बदल भाईचारो हो सो रावजी के बाई रो व्याव कोठारचे हुवो सो ४५६) का सरपाव भेज्या गया ।

संवत ६१, भूकम्प का चन्दा में १२८) दीदा गया, रजीडंसी के मारफत ।

बाग तीरली[2] बाड़ी में मायली[3] यादगार में बावड़ी, धरमसाला को काम जारी कीदो गयो । अज्मेर भाणी बाई का व्याव में मायरो भेज्यो गयो । प्लेग[4] शहर में जारी हुवो, हवेली छोड़ बाड़ी-बगड़ावले रह्या । बगड़ावले मकान बण ही चुको हो, उठा सुं गढबोर, नाथद्वारे गया । प्लेग के सबब दो महीना नाथद्वारे रह्या फेर बगड़ावले आया, उठा सुं शेर[5] में आया ।

भाई तखतसिंहजी वृज-यात्रा कर जगदीश तक तीरथ कीदा । महक्मेखास को काम कोठारीजी, उरजणसिंहजी माफ वेर महता भोपालसिंहजी, मासानी हीरालालजी के सुपरद हुवो ।[6] कोठारीजी के सुपरद मालमहक्मो हुवो, उठे भी काम ठीक नहीं चलावा की शिकायत ही रही ।

---

१. नाथद्वारे के गोस्वामी की पुत्री का विवाह ।
२. तीरली—पास की ।
३. मायली—पत्नी की ।
४. प्लेग—संवत् १९६१ में मेवाड़ में प्रथम बार प्लेग की महामारी का प्रकोप हुआ । यह रोग सर्व प्रथम कोठारिये के पास राजियावास नामक ग्राम में शुरू हुआ व सम्पूर्ण मेवाड़ में फैल गया ।
५, शेर—शहर, नगर ।
६. वि. सं. १९६२ में उक्त परिवर्तन हुआ ।

संवत ६२ में श्रीजी वा श्री कुंवरजी बापजी वाड़ी में बावड़ी धरमसाला बणी सो मुलाहजा वास्ते पधारया, सब बाड़ी में फर[1] मुलाहजा फरमाई। नजर-नछरावल कीदी। कस्नगढ सुं बापजी पधारया, राणीजी साहब बावजी चूड़ो धारण कीदो सो सांजी दोई नजर हुई।

जोधसिंहजी रो तबादलो भंडार सुं रास्मी हुवो। वाड़ी में बावड़ी, धरमसाला, महादेवजी की छत्री को काम खतम हुवो। डोरा को उत्सव[2] कीदो गयो। भाई-सगा, राह-वेवार वाला ने जीमाया गया, राग रंग जलसो हुवो, तीन-चार दिन सब वाड़ी रह्या। गंगोज[3] वाड़ी ही भरयो, कलस बावड़ी सुं ही भरया। जलसो राग रंग आतसबाजी को हुवो। नारेल पतास्यां दी गई। गंगोज को जीमण कुल ओसवालां, दूजी न्यातां, राह-वेवार वाला को हुवो। जी-में[4] जतरो करवा को हो परंतु ई में भोपालसिहजी वहोत रोक कीदी, श्रीजी में मालुम कराई गई, हुकम भी हुवो, तो फेर उजर लिख भेज्यो। आखर फेर अरज कराई—गंगोत्री को जल लाय ११००) की प्रसादी

---

१. फर—घूमकर।

२. डोरा को उत्सव—वास्तु पूजन एवं शांति पाठ करवा कर भवन, मंदिर आदि को काम में लेना। उक्त प्रक्रिया में कच्चे सूत का धागा उक्त भवन अथवा मंदिर के चारों ओर लपेटा जाता है। कालान्तर में उक्त कार्य को 'डोरा फेरना' अथवा 'डोरा को उत्सव' भी कहा जाने लगा।

३. गंगोज—तीर्थ यात्रा से सफलतापूर्वक लौट आने के बाद जो गंगाजल लाया जाता है उसे पानी से भरे कलशों में छिटका जाता है। यही गंगोज भरना अथवा गंगा जल भरना है। कलशों की संख्या उत्सव करने वाले की इच्छा के अनुसार ११ से लेकरकितनी भी हो सकती है। सभी कलशों पर नारियल और उस पर लाल, पीला, हरा कपड़ा बंधा रहता है। सभी कलश स्त्रियों अथवा कन्याओं के सिर पर रखे जाते हैं। जहां से कलश भरे जाते हैं वहां से उत्सवकर्त्ता के घर तक एक लम्बा जुलूस गाजे-बाजे एवं गंगा के गीतों को गाता हुआ पहुंचता है। मार्ग में अनेक स्त्रियां जिनके सिर पर कलश होते हैं, कलश को पकड़ कर झूमती रहती हैं व अपना सिर आगे-पीछे तेजी से हिलाती हैं, इसी को गंगाजी का भाव आना कहते हैं। अनेक कलशधारी स्त्रियां आगे बढ़ने को इन्कार करती हैं तो उनके सामने नारियल फोड़े जाते हैं। गंगायात्रा के समापन पर भोज का आयोजन किया जाता है। गंगाजल को बांटने एवं सफल तीर्थाटन के बाद किया गया उत्सव एवं भोज ही गंगोज कहलाता है।

४. जी-में—मन में।

की बोलमां है, यो तो पुण्य को काम है सो मंजूर हुई। पंचायती नोहरा में जीमण हुवो, वावड़ी में प्रशस्ती लगाई गई।

संवत ६२ में देवस्थान को काम कोठारीजी[१] सुं माफ वेर, कपासन की तबदीली वेर भाई तखतसिंहजी के हुवो। देवस्थान को बहुत बड़ो काम है सो तखतसिंहजी के सुपरद हुवो। काम सुपरद वेतां ही भोपालसिंहजी अदावत[२] सुं एक नकशो नहीं पूगवा पर धोंसा की चिठी कीदी। श्रीजी में मालुम होवा पर धूंस बरखास्त हुई। हर तरह कोठारीजी की तरफदारी में अदावत ही करता रह्या।

नाथद्वारे लालजी के जनेऊ का उत्सव पर सरपाव वगेरे भेज्या। अहमदाबाद गुसाईंजी मधुसूदनजी पधारया, वाड़ी बिराज्या, हवेली पधरावणी वगेरा कीदी। पंचायती नोहरा का चंदा में १००) दिया गया।

छोटा बापू उदेलाल के सगाई को दस्तूर महताजी कशनसिंहजी का अठा सुं आयो, उछव कीदो गयो। कुल न्यात, राह वैवार में मिठाई बांटी गई।

कोठारी बलवंतसिंहजी रे बाई रो व्याव हुवो। जान जोधपुर सुं आई, सगरी[३] बनोलो[४] दियो गयो। तुलछीनाथजी के बाई वा पारखजी रे व्याव हुवा सगरी-बनोला दिया गया।

साहपुरा की चाकरी को फेसलो गवरमींट कीदो के एक महीना राजाधिराज दूसरे वरस आवे। सालयाना जमीयत तीन महीना मोतबर अफसर के साथ भेजे। बहुत कुछ कोशीश हुई पर या तजवीज तब्दील नहीं हुई। फेर अठा सुं राजधिराज अतरा वरस नहीं आया सो चाकरी का हरजाना को दावो हुवो।

एक वाको अस्यो हुवो के राज की डावड़ी[५] चन्द्रशोभा जो शहर में रहती

---

१. कोठारी बलवंतसिंह।
२. अदावत—शत्रुता।
३. सगरी—संपूर्ण परिवार एवं मेहमानों सहित।
४. बनोला—वंदोलो, पाट मुहूर्त और कंकण बंधन के बाद विवाह के दिन तक वर अथवा कन्या का अपने संबंधीजनों अथवा मित्रों के घर निमंत्रित होकर भोजन करने जाना एवं भोजन के बाद घोड़े पर सवार हो जुलूस के साथ घर लौटना।
५. डावड़ी—दासी।

ही, बद-चलणी के सबब रावला[1] में केद राखी गई, वीं ने बांसवाड़े कुंवरजी शंभुसिंहजी जो अठे अजंट साहब की निगरानी में देवगढ़ की हवेली में रहता हा, एक नायण द्वारा रावला सुं निकाल मंगाई। ईं की खबर मिलवा पर बांसवाड़े कंवरजी रहता जठे कई फोजी आदमी भेज, हवेली घेराय, तलाशी ली गई, डावड़ी नहीं मिली। रजीडंट साहब तक शिकायत हुई, कंवरजी सहलियां की वाड़ी राख्या गया। डावड़ी को पतो नहीं लागो; आखर कुंवरजी बांसवाड़े रावलजी हुवा जद वीं ने खानेग्रंदाज कर लीदी।

उरजणसिंहजी सहीवाला बहोत उमररसीदा बहुत लायक, सीधा मिजाज का सिरदार हा। ता-उमर काम करता रह्या, ईं साल हरिसरण हुवा।[2]

भतीज जोधसिंहजी रासमी सुं कपासण तवदील हुवा। कैलासपुरी गुसांईजी की पधरावणी हवेली पर हुई। नाथद्वारे लालजी को विवाह हो, जावा को इरादो हो अंत बीमारी के सबब जावो नहीं हुवो, सरपाव वगेरे भेज्या। श्री कुंवरजी बापजी के जनेऊ को उत्सव हुवो, सरपाव नजर कराया।

भाई लछमीलालजी भादवा विद ३[3] हरिसरण हुवा, रंज बहुत हुवो ईश्वरेच्छा पर संतोष करणो पड्यो। ४००) वांरे पाछे पुण्य कीदा गया। हरिसरण होवे जां लोगां का करचावर की संवत ५६ सुं रोक ही, मेवाड़ में तो वेता ही हा, शहर में नहीं हुवा। ईं की शिकायत बहुत बढ़ गई, हजारां रुप्या तो लोगां रा वृथा खरच हुवा; हजारां ही रुप्या जां करचावर कीदा वांके जुरमाना का हुवा; आखरस जादा शिकायत के सबब ईं को कानून मुकरर होवा वास्ते कमेटी मुकरर फरमाई गई, मने भी कमेटी में मेंबर मुकरर कीदो, बहुत बहस-बेहसां के साथ कानून मुकरर हुवो। भोपालसिंहजी बहुत कम जीमण करवा कां पक्षपाती हा, खेर, जिस तरह हुवो कानून तजवीज कीदो गयो, वींने श्रीजी मंजूर फरमाय जारी कीदो, जींमें खरचा की भी कफायत हुई और बहुत आछी तरह अमल-दरामद में आय सब शिकायतां रफे हुई।

---

१. रावला—अंतःपुर।

२. सहीवाले अर्जुनसिंह ने कोठारी बलवंतसिंह के साथ वि. सं. १९६२ में महक्मा-खास से इस्तीफा दिया एवं वैशाख शुक्ला २ संवत् १९६३ में उनका देहांत हो गया।

३. भादवा बुद ३ संवत् १९६३ में पन्नालाल के छोटे भाई लछमीलाल की मृत्यु हुई।

कानून माफक भाई लछमीलालजी को करचावर ई साल में कीदो गयो। लछमीलालजी लार पुण्य का रुप्या में तेरमा के दिन छः न्यात जीमावा की तजवीज ही जीं पर भोपालसिंहजी रोक कर नहीं करवा देवो चाहचो, बोहत कहवा-सुणी कीदी पर मानी नहीं, आखर श्रीजी में मालुम कराई, मंजूरी वी, छः न्यात जीमाई गई।

इसी तरह देवस्थान को काम तखतसिंहजी के होवा* ....बदस्तूर जारी रह्यो प्रंत महाराणा स्वरूपसिंहजी के वगत में महता गोपालदासजी पर जो मेता रुगनाथसिंहजी के पासवानी बहन पासवानजी हा अर वां पर श्री वड़ा हुजूर सरूपसिंहजी निहायत राजी हा वांकी महरबानी सु गोपाल-दासजी मुसाहिबी का दरजा पर पहुंचा, वां पासवानजी गोरधन-बिलास मंदर बणाय सदावरत भी जारी कीदो, श्री ठाकुरजी ऐजन स्वरूप बिहारीजी को राज भोग सावत कीदो। एक गाम भेट भी हुवो, वो गाम कोठारीजी की वगत में कविराज सांवलदासजी, जो कोठारीजी के गुरु थे, गाम छुड़ाय अपने खुद के कराय लीदो जींसु आमदनी कम वे गई सो हुकमन गोरधन विलास की सदावरत भोपालसिंहजी माफ कराई और राजभोग भी घटावा की लिखी परंतु तखतसिंहजी वो तो नहीं घटायो, कोशीश के साथ जारी राख्यो।

मारे बीमारी पेट का दरद, होवरड़ा[1], उल्टी की संवत ५८ सु कमी-वेश जारी ही पर संवत ६३ में तो बहुत बढ़ गई। डाक्टर सरजन अन्न कम कर दूध को महावरो वढ़ावा की* .... (यूनाइटेड प्रोविन्सेस) का लफटन्ट गवरनर ह्यूऐट साहब पेशवाई में गया। स्टेसन सु अमीर[2] के वास्ते गवरमेंट सु बहुत उमदा कंप लागो जठा तक दो ऋफी (तरफी) फोज खड़ी ही। स्टेसन सु आया जीं वगत तोपखानो, सरकारी रसालो, वाजो अरदली में हो और तुरब अमीर का रिसाला का पाछे हा। असवारी देखवा वास्ते रास्ता पर केही जगाह लोगां के बेठवा वास्ते चबूतरा, पंगत्या गटावण, वां पर कुरस्यां लागी थकी थी। फी आदमी दो-तीन रुप्या का टीकट हा। मां भी एक जगाह चार टीकट लेर देखवा गया। वीं दिन कुछ मावटो[3] भी

---

* [मूल हस्त प्रति का पृ. १६७वें का आधा भाग उपलब्ध नहीं हुआ है।]
१. होवरड़ा—जी घवराना और उल्टी होने जैसा होना।
* [मूल हस्त प्रति का पृ. १६८वें का आधा भाग उपलब्ध नहीं हुआ है।]
२. अमीर—काबुल के अमीर जो भारत के दौरे पर थे।
३. मावटो—वर्षा।

हुवो । फौज सड़क पर खड़ी ही, वरानकोट[1] पहरयां ही, छांटा पड़ता हा जीं सबब, परंतु अमीर आया वीं वगत सब बरानकोट उतार दिया गया । अमीर, लफटन्ट गवरनर भी छांटा में खुली बगी में ही निकल्या । तोपां की सलामी हुई, नामूली मुलाकातां लारड़ मिंटो-अमीर की हुई और खितावां को दरबार[2] आगरा का किला में दरबार-आम का महल में हुवो । मने दरबार को वा फतहलालजी ने दरबारे देखवा को टीकट मिल्यो, पहले दिन प्रेक्टीस हुवो जो भी* ···· ··········तरह, पेदल सवारी बरणा कर लाठ साहब दरबार में आया । वैठक में जीं ने पहली खिताब मिल्यो जीं को नंवर ऊपर रह्यो । पेली ओल नंवरवार ही सो तखत की जगाह सुं ओलां पाछी लोटी सो नंबरवार बैठ गया । दरबार को होल में एक चबुत्रो वण्यो जीं पर सुरख कपड़ो हो । चबूतरो कोई १।। फूट ऊंचो वेगा वीं पर मकराणा को तखतो पलंग ज्युं, जीं पर दो चांदी की कुरसियां लागी, जीं पर लाठ-साहब, अमीर बैठा । मकराणा के तखत के भड़े दो तरफ दो कुरस्यां जीं पर एक तरफ लाठ साहब के मेम दूसरी तरफ अमीर का वजीर बैठा । चोंतरा के भड़े अमीर की सरवरा का बंदोवस्त पर बड़ा ओहदा का साहब मेकमोन जो लाठ साहब का फारन सिकटरी हा बैठा । हेटे, एक तरफ फरस पर पांच छः हात की छेटी सुं K. C. I. E. वालां की कुरस्यां, एक तरफ G. C. I. E. वालां की कुरस्यां ही, यां में तो अकसर रईस ही हा । K. C. I. E. की कुरस्यां पाछे दो ओल C. I. E. की कुरस्यां वालां की ही* ··················· आछो हो । एक होज में जल के भीतर रोशनी दीखती ही । गारड़न पारटी में मने भी लाठ साहब सुं सलाम करवा, हाथ मिलावा को मोको मिल्यो । फतहलालजी भी गारड़न पारटी में हा, उठे ही चा-पाणी हुवो, सब खड़ा-खड़ा ही बातां करता रह्या, फिर अपने-अपने डेरे गये । जलसो गारड़न पारटी को बहुत देर तक रह्यो । जाती वगत वग्यां पाछी किला में सुं नीचे भेज दी गई

---

१. बरानकोट—बरसाती कोट ।

२. खितावां को दरबार—आमतौर पर "दरबार" आगरा में नहीं होता आया है फिर भी चूंकि काबुल का अमीर भारत के दौरे पर आया हुआ था अतः इस वर्ष में घोषित नवीन खितावों को देने के लिये लार्ड मिन्टो ने इस दरबार का आयोजन किया था । स्वयम् लार्ड मिण्टो ८ जनवरी, १९०७ को प्रातः १०-३० वजे आगरा पहुँचा । ९ जनवरी, को काबुल के अमीर की अगवानी की गई एवं १० जनवरी, १९०७ को खिताबों को बांटने हेतु दरबार का आयोजन किया गया । विस्तृत विवरण के लिये देखें **Pioneer-Friday—11 Jan. 1907.**

*[मूल प्रति का पृष्ठ १९९ तथा २००वें का आधा भाग उपलब्ध नहीं हुआ है ।]

और तार लगा दियो हो सो ऊपर सु तार देवे जीं रा नाम की बग्गी आवे, ईं में बड़ी गड़बड़ी हुई, बग्यां बराबर नहीं आई। बहुत वक्त लोगां ने तार तोरे ठहरनो पड़्यो, भीड़ वे गई, अठातक गड़बड़ी ही के जैपुर-महाराज अकेला ही एक तरफ गोपीनाथजी लार नीचे गया। मांने भी पेदल ही जाणो पड़्यो, पर एक साहब की मदद सु बग्गी १५ कदम जावा पर ही मिल गई। डेरे पूगा, सरदी बहुत ही। दूसरे दिन बाग में लाठ की तरफ की गारड़न पारटी हुई। मांने चार टीकट मिल्या, गारड़न पारटी में गया उठे सेंकड़ा कोच, कुरस्यां जगाबजगा लागा हुवा हा। शामियाना तीन बड़ा हा जीं में चाह, शराब, फल-फूल, सोड़ा वाटर जम्या हुवा हा। रईस लोग, साहब लोग आप-आपके मते[1] खड़ा हा, बैठा हा। लाठ साहब आया जस्या ही अमीर की पेशवाही के लिये बाग की फाटक पर पेदल गया। उठे कुछ पावंड़ा तक लाल फरस बिछ्यो हुवो हो। अमीर, लाठ साहब आया, एक शामियाना में बेठा। फेर स्याम[2] का सब आप-आपके डेरे रवने हुवा, उठे मांने भी जैपुर महाराज, काशी नरेश वगेरे २-३ रईस वा अंगरेजां सु बात-चीत को मोको मिल्यो। दो दिन तक बाग में फोजी ख्याल-तमाशा देख्या। चार टीकट मांने भी मिल्या, लाठ साहब, अमीर भी आया। लफ्टेनंट गवरनर यू० पी०[3] सु मिलवा को मोको भी भी मिल्यो, हाथ मिलायो, बातचीत हुई। टहरी महाराज भी मिल्या, वी मारे जोड़े[4] ही कोच पर बिराज्या हा। और कई लोगां सु मिलवो, बातचीत, मुलाकात हुई। फेर फोजी कवायद हुई ५० हजार फोज ही। कवायद देखवा का टीकट हा, कुरस्यां, कोचां का टीकट बहुत मंहगा हा। दो टीकट बा-मुशकिल मिल्या। लाठ साहब अमीर भी हा। परेट फोज की हुई। वापू दोई बग्गी का कोच बगस पर सु ही देखी। फेर गरेण (ग्रहण) आय गयो सो आगरा सु मथरा गया, जमनाजी में किश्ती पर ग्रहण कीदो, वीं दिन पाछा आगरे आया जीं दिन आतशबाजी ही। टीकट चार मिल्या, लाठ साहब अमीर वा कुछ रईस लोगां समन-बुरज[5] सु आतशबाजी देखी, दूजां के एक चानणी पर[6] कुरस्यां लागी जठा सु देखी। फेर अमीर, लाठ साहब आगरा सु रवने हुवा। मां आगरो आछां देख मथुरा आया, वठा सु बलदाऊजी, गोकल, गरराज

---

१. मते—इच्छा से।
२. स्याम—श्याम।
३. लेफ्टीनेंट गवरनर ऑफ यूनाइटेड प्रोविन्सेस जॉन हयूऐट (John-Heweth).
४. जोड़े ही—पास ही।
५. समन बुरज—आगरे के किले में मुसम्मन बुर्ज।
६. चानणी पर—छत पर।

(गिरिराज) गोरधन वगेरे बड़ो-बड़ी जगह गिया। उठा सुं जैपुर, अज्मेर, पुष्कर वेर गाम देवली राजोला चीतोड़, नाथद्वारे, गढ़बोर वेर अठे आया।

लाभचंदजी पंचोली का बेटा परण्या सो सगरी बनोलो दियो गयो। बीजोल्या रावजी[1] हरिसरन हुवा, सरपात्र भेज्यो गयो, गोद परथीसिंहजी कामा वाला बेठा।

चि० वापू देवीलाल रो व्याव वैसाख सुद १०[2] का लगनां पर जोधपुर हुवो। जान गई, जोधपुर बेठो ब्याव[3] कीदो गयो, सगरी बनोला की धूमधाम खूब रही। ओसवालां रो चोको, दूजी न्यात में नूता वा राह-वेवार को जीमण कीदो गयो। श्रीजी[4] की तरफ सुं बंदोरी[5] निकाली गई। एक तेनशा मूंठ की तरवार कीमती ६००) वा परसादी, कपड़ा, पागां, जैपुर का अंगोछा वगेरे बगसाया गया। जान में करीव ६०० मनखांरे हा, सब भाई सगा हा। स्पेसल टरेन वा पेली कतराक मामुली गाड़्यां में गया। अठा सुं चितोड़ जंगी फोज का २० जवान अर पलटन को पड़गम को बाजो मिल्यो। जोधपुर १० दिन रहवो हुवो। जीमण, जान की महमांनदारी को बंदोवस्त आपणी तरफ सुं हो, रावजी की तरफ सुं एक भात, एक मजमानी हुई। जान में, मिलणी में, भात में लवाजमो जोधपुर राज सुं बहुत उमदा मिल्यो। हाथी जरदोजी झूल, गेणां सुं, घोड़ा ४ नापती चांदी-सोना का जेवर समेत, बेंड बाजो, कंपनी नगारो निशाण, सोना चांदी का छड़ीदार, पालकी बड़ी उमदा, परदा वगेरे बहुत आछा मिल्या। अज्मेर भाणेजजी को बनारो हुवो। रस्ता में भीलाड़े, कपासण जीमण आपणी तरफ सुं हुवो। व्याव सब तरह ठीक हुवो। श्री महाराज साहब जोधपुर पास जावो हुवो, ताजीम बगसी, नजर नछरावल कीदी। तखतसिंहजी, फतहलालजी, बापू देवीलाल, भतीज चत्रसिंहजी कमरा में गया,

---

१. बीजोल्या रावजी—वि० सं० १९६३ (ई० १९०६) में बीजोल्यां के राव सवाई कृष्णदास की निःसंतान मृत्यु हुई।

२. बैशाख सुद १० संवत् १९६४।

३. बेठो व्याव—जोधपुर जाकर वहां के स्थानीय व्यक्ति के रूप में विवाह किया। सामान्यतः लड़की को जब लड़के वालों के शहर में ला कर विवाह किया जाता है तो उसे "बैठो व्याव" कहते हैं।

४. श्रीजी—महाराणा फतहसिंह।

५. बंदोरी—बंदोली, विवाह की पूर्व संध्या पर वर अथवा कन्या की, रात्रि में निकलने वाली विशिष्ट शोभा-यात्रा।

पछे महाराज पधारया नजर-नछरावल कीदी । पाछी सीख दी जद खड़ा हुवा । सवारी को हाथी वींद वास्ते पंडतजी सुखदेवजी[1] ने कहवाई पर इनकार कीदो के अठे महाराज का खानदान सिवाय कोई हाथी पर तोरन नहीं वांधे जीं सुं वींद के घाड़ा की ही सवारी रही ।

राणीसा, कस्नगढ बावजी सूदां श्रीजी हुजूर जैसमद वेर डूंगरपुर इलाके सावल्यांजी पधारया । किस्नगढ बावजी रे बेजारी[2] तकलीफ हो सो मानता तावे पधारया । कस्नगढ सगपण हुवो सो वठे तो बड़ा बाईजी ऊंकार कुंवरजो ने परणाया और कस्नगढ सगपण हुवो सो जोधपुर परणाया ।[3] महाराज की जान रेल सुं आई, व्याव हुवो । जान सहलियां की बाड़ी रही, सब बात खानगी हुई कोई आम-दरीखानो वगेरे कुछ नहीं हुवो । मारी तरफ सुं सरपाव नजर हुवा ।

महताजी भीमसिंहजी, फोजमलजी बोरदया, श्रीपालजी चतुर सगरी बनोला दिया, जलसा हुवा । बग्गी री घोडयां री जोड़ी बम्बई सुं जगनाथजी ढ़ीकड़या मारफत मंगाई ८००) कलदार लागा ।

संवत १६६५ में नाथद्वारे कोटा सुं श्री मथुरेशजी पधारया, बहोत उत्सव, छपन भोग वगेरा हुवा । दर्शण वास्ते श्रीजी भी पधारया, मूं भी मय खटला के गयो । दुवारे मारो नाथद्वारे, गढबोर जावो हुवो, दर्शण को बड़ो आनंद रह्यो । कांकरोली भी मथुरेशजी पधारया । मथुरेशजी का गुसांईजी रणछोड़लालजी बहुत उत्तम पुरुष सेवा-भक्ति निपुण हा ।

श्रीजी हुजूर हरद्वार पधारया,[4] वठा सुं देहरादून लाठ साहब सुं मिलवा पधारया । जेंपुर भी दो-तीन रात बिराजबो हुवो, भाई तखतसिंहजी साथ में गया । पाछा पधारवा पर नजर-नछरावल हुई १।। मोहर ५) नजर कीदा ।

---

१. राव बहादुर पंडित सुखदेवप्रसाद C. I E. जो जोधपुर राज्य के महकमाखास के सेक्रेटरी एवं मुसाहिब आला थे ।
२. वेजा री—दौरे पड़ने की—मूर्च्छा आने का रोग ।
३. विक्रम संवत् १६६५ वैशाख वदि १ (१७ अप्रेल, १६०८) को जोधपुर महाराज सरदारसिंह का विवाह उदयपुर हुआ ।
४. वि० सं० १६६६ वैशाख वदि १० (१५ अप्रेल, १६०६) को महाराणा फतहसिंहजी एकलिंगजी के गोस्वामी कैलाशानंदजी को साथ लेकर हरिद्वार-यात्रा के लिये उदयपुर से रवाना हुए ।

कुंभलगढ़ श्रीजी पधारचा, फतहलालजी साथ गया। सलुंबर रावत जोधसिंहजी हरिसरण[१] हुवा, वठे बंबोरे रावत ओनाड़सिंहजी गोद बेठा। श्रीजी के सलुंबर पधारवा की खेंच कीदी, कई बरस मुकदमो चल्यो आखर श्री कुंवरजी बापजी[२] पधारचा, सलुंबर रावजी अठे हाजर हुवा।

इम्पीरीअल सरविस फोज गवरमेंट की खिदमत वास्ते अजंट हिल साहब कोशीश कर मुकरर कराई। दो तुरष रसाला रा जीं में १८० सवार राजपूत लोग भरती वेर मुकरर हुवा। यां के वास्ते लेणा[३] बड़ी की[४] तरफ बणवाई।

वड़ा लाड़ीजी पहले आणे[५] जोधपुर सुं बुलाया गया। बापू रे बेठवा वास्ते कमरो बणायो सो तईयार हुवो। खाख्यां री जमात नामा ४०० की आई ज्यांने भोजन करायो।

देवीलाल बापू की बहू के आगरणी[६] हुई, शहर में प्लेग सख्त हो जींसुं जीमण विशेष नहीं हुवो, शहर खाली हो, सादारण जलसो, जीमण दस्तूर कीदो गयो। श्रीजी में सुं बापू देवीलाल के अंगूरी साटण व सलमां-सितारां का काम को धारण को आंगो, पायजामो बगस्यो सो आयो।

संवत ६६ में कुंवरजी बापजी[७] को व्याव आऊवे मारवाड़ में हुवो। व्याव को मोहरत वगेरे नाहरमगरा में हुवो, वठा सुं जान गई। व्याव के सबब मारो वा फतहलालजी को नाहरमगरे जावो हुवो। सरपाव नजर

---

१. वि० सं० १९५७ (ई० १९०१) में रावत जोधसिंह की मृत्यु हुई।

२. महाराज कुमार भूपालसिंह।

३. लेणा—Lines. पुलिस अथवा फोज के रहने का स्थान विशेष।

४. बड़ी—बड़ी के तालाब के पास।

५. पेले आणे—विवाह के बाद वधू का पीहर जाने के बाद ससुराल में प्रथम आगमन।

६. आगरणी—गर्भाधान संस्कार के बाद पांचवें अथवा सातवें महिने में पिता के घर से दोहदपूर्ति हेतु कपड़े, मेवा मिष्ठान आदि भिजवाया जाता है और गर्भ की सुरक्षा एवं गर्भ-धारण के बाद नव जातक के आगमन की खुशी में जश्न मनाया जाता है। इस उत्सव को आगरणी करना कहते हैं।

७. कुंवरजी बापजी—महाराज कुमार भूपालसिंह।

कराया गया । १५ दिन नाहरमगरे रह्या, वठा की आवहवा ठीक नहीं होवा सु सीख बगसी । प्लेग के सबब बगड़ावले रह्या ।

चनणारामजी भंडारी, जगन्नाथजी ढ़ीकड़्या का (पोता ?) परण्या सो सगरी बनोला दिया गया । जलसा हुवा । बीजोल्यां मंदर परणायो[1] देवगढ़ रावतजी देलवाड़े परण्या सो सरोपाव भेज्या गया ।

हीरालालजी[2] महक्माखास का काम पर भोपालसिंहजी[3] सामिल हा । महक्माखास का काम सिवाय दाण को काम भी यांरे सुपरद हो, कम उमर में शराब जादा पीवा के कारण डेड़ वरस लीवर की बीमारी भुगत ई साल हरिसरण हुवा, महक्माखास को काम अकेला भोपालसिंहजी ही करता रह्या ।

जोधपुर रावजी वहादरमलजी के भाई दानमलजी चल गया ।[4] फतहलालजी वा लाड़ीजी वेठवा गया ।

वायली साहव पहले अठे अजंट हा, वां ही मारो अस्तीफो मंजूर करायो, फेर A. G. G. वे गया, वाद में वलायत में सक्रेटरी ऑफ स्टेट का दफ्तर में मुकरर हा, वठे वांने मदनलाल धींगड़े तमंचा सु मार नाख्या ।[5] जीं वगत

---

१. मंदर परणायां—नवीन मंदिर के निर्माण के बाद उसमें मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करने का महोत्सव ।

२. हीरालालजी—महासानी हीरालाल पंचोली, इनकी मृत्यु वि० सं० १९६९ (ई० सं० १९१२) के वैशाख मास में हुई ।

३. भोपालसिंहजी—"मेहता भोपालसिंह का घराना" ।
देखें उदयपुर राज्य का इतिहास : गौ० ही० ओझा : पृ० १३४८-४९ ।

४. चल गया—मृत्यु हो गई ।

५. १ जुलाई सन् १९०९ को सर कर्जन वायली इम्पीरियल इंस्टीट्यूट, जहांगीर हॉल की एक सभा में किन्हीं दो व्यक्तियों से बातचीत कर रहे थे कि देखते ही देखते श्री मदनलाल धींगड़ा ने सामने आकर पिस्तोल से गोली चला दी । वायली व श्यामजी कृष्ण वर्मा के बीच उदयपुर में काफी विवाद चला था जिसके फलस्वरूप उन्हें मेवाड़ छोड़ना पड़ा था । श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित इंडिया हाउस में वीर सावरकर जैसे देश प्रेमी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध कार्यरत थे । श्री मदनलाल धींगड़ा अमृतसर का रहने वाला खत्री-परिवार का नवयुवक था । मदनलाल धींगड़ा के इस कृत्य से प्रसन्न होकर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने प्रांस से उसके नाम से स्कोलरशिप प्रदान करने की घोषणा की थी ।

स्यामजी कृष्ण वर्मा भी वलायत हा, वां पर भी वायली साहब ने मारवा में शामिल होवा रो इलजाम आयो सो वलायत सु भाग फरान्स में चल्या गया। वायली साहब री यादगार में अठे सूरजपोल बाहर छत्री वा प्याऊ बणी। मैं भी १००) चंदा में दीदा। वांरी तसवीर भी लगाई गई।

ई साल (संवत्) ६७ में वापू उदयलाल को व्याव हुवो। जान जोधपुर गई, सब वड़ा वापू रा व्याव माफक हुवो। श्रीजी में सु बनोरी निकाली गई। जान रवने हुई वीं दिन वलायत में शानशाह के हरिसरण होवा की खबर आई। व्याव तो जान रवने हो गई सो रुक नहीं सकतो, जान जोधपुर पहुंची, स्टेस्न पर बग्यां वगेरे को इंतजाम सब आछो हो। कुचामण की हवेली में जान को डेरो हुवो। सब इंतजाम जीमण वगेरे महताजी कशनसिंहजी की तरफ सु हो, बड़ा ही उमदा वंदोवस्त हो जीं की बहुत ही तारीफ रही, जीमण बहुत उमदा दोई वगत वेतो। चाह [चाय] सोड़ावाटर, बरफ, पूजन को सामान, मेवो, रात में पीवा वास्ते दूध वगेरे बरावर सब जगा पहोंचतो हो। मेवो तो लोग अठा तक बांध-बांध लाया। मंडप भी बहुत उमदा बण्यो हो जीं में बरसात को रूपक देखायो गयो। बादशाह[1] की गमी सु जोधपुर में १२ दिन को शोग राख्यो गयो परंतु जान के डेरे रागरंग, नगारखाना वगेरे इजाजत वे गई, सिरफ रस्ता में रंड्यां रो नाच वगेरा जान के दिन नहीं हुवो। जोधपुर राज में सु लवाजमो पहली मुजब बरावर आय गयो। ओसवाल महाजनां को वठे मदरसो है वीं में ५००) मारी तरफ सु दिया गया। एक दिन भाई-सगा, राह-वेवार वालां ने आपणी तरफ सु जीमाया गया और व्याव सब तरह ठीक हुवो।

वापू देवीलाल के जोधपुर में बाई मोहनजी हुवा, नखत्रां में सो नक्षत्र झाड़्या[2] गया। बाई लाड़ीजी जोधपुर रावजी के अठे हा सो जान के डेरे आया।

फतहलालजी बगड़ावला सु मोतीसिंहजी चोरड़्या धनेरे हा सो सासरे बुलाया सो वांरे बहू-बालकां सुदां गया।

श्री बापजी जोधपुर सु अठे पधारया, श्री कुंवरजी बापजी भी जोधपुर

---

१. बादशाह—वि० सं० १९६७ वैशाख वदि १२ (६ मई, १९१०) को एडवर्ड सप्तम का निधन हुआ।

२. नक्षत्र झाड़्या; मूलादि क्रूर नक्षत्रों में जन्म होने पर जातक की रक्षा के लिये नक्षत्र-शांति करवाना।

पधारचा। कस्नगढ़ सूं भी बापजी अठे पधारचा सो संजारो[1] श्री बापजी सुदां नजर करायो।

श्री कुंवराणीजी साहब[2] आउवा वाला देवलोक हुवा। संवत ६७ में कांकरोली गुसाईंजी बहूजी सूधां पधारचा, वाड़ी पधरावणो कीदी गई।

अलाहबाद परदरशणी[3] बहुत बड़ी हुई सो देखवा गया। वठा सु काशीजी, चत्रकोट वेर पाछा इलाहबाद आया, वठा सुं डाकोरजी वेर उदयपुर आया। परदरशणी देखवा रो अमूमन ।।) रोज को टीकट हो। परदरशणी कोस भर का फेलाव में वेगा। चार ही तरफ हत्तो हो। मांयने अलग-अलग कमरा में हरेक तोफा-जात वास्ते कमरा बण्या हुवा हा, केही दुकानां ही, कुल हिन्दुस्तान में जो-जो चीजां उमदा ही वे देखाई गई। नहरां, तार, कलां, मशीनां, काच को सामान, रात की रोशनी, हरेक चीज बणावा की तरकीबां, हवाई जहाज और ख्याल-तमाशा टीकटां पर बताया जाता हा। गावा वाला, आछा पहलवानां की कुश्त्यां वगेरे हो, कुल केफियत कठा तक लिखी जावे। आठ-दस दिन परदशणो देखो, त्रबेनी स्नान कीदो, बड़ो आनन्द रह्यो। फतहलालजी वा दोई बापू साथ हा।

श्री कुंवरजी बापजी रो अचरोल, इलाके जेपुर में दूजो विवाह[4] हुवो, उछव मामूली हुवो, सरपाव नजर कराया गया।

---

१. संजारो—श्रृंगार सज्जा सामग्री।

२. महाराज कुमार भूपालसिंह की पत्नी जो जोधपुर राज्य के आऊआ ठिकाने की थीं।

३. अलाहबाद प्रदर्शनी : "युनाइटेड प्रोविन्सेस एग्जीविशन" के नाम से इलाहाबाद में एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी के अधिकारी H R. Warner थे। युनाइटेड प्रोविन्सेस के लेफ्टीनेंट गवर्नर ने १ दिसम्बर बृहस्पतिवार, १९१० को दोपहर में इसका उद्‌घाटन किया। यह प्रदर्शनी १ दिसम्बर, १९१० से २८ फरवरी, १९११ तक चली। "द पायोनियर" में प्रतिदिन इसका विस्तृत विवरण प्रकाशित होता था।

४. महाराज कुमार भूपालसिंह का प्रथम विवाह ठिकाना, आऊवा; मारवाड़ में विक्रम संवत् १९६६ की फाल्गुन कृष्णा ९ को तथा दूसरा विवाह वि० संवत् १९६७ की फाल्गुन कृष्णा २ को जयपुर के ठिकाना अचरोल में हुआ। इनका तीसरा विवाह महाराणा बनने के बाद वि० सं० १९८४ में खोड़ाला में हुआ था।

ई साल भी प्लेग हुवो सो.................... जोधपुर महाराज देवलोक हुवा[1] .... विराजता हा, गमी रो दरीखानो कीदो.................. सबने बहुत रंज हुवो ।

ई साल भतीज चत्रसिंहजी के पोता इन्द्रसिंहजी बापू उदेलाल ने भाई तखतसिंहजी गोद राख्या । श्रीजी में मालम कराई, मंजूरी वेर नजराणो हुवो । भाई-सगा, न्यात, राह-व्ेवार में नालेर बांटचा, जलसो कर लहरचो बंधायो । भतीज चत्रसिंहजी उजरदारी कीदी, अरज कराई, बहुत कोशीश कीदी परंतु ना-कामयाब हुवा । मारे नाम भी तहरीर सख्त लिखी सो जवाब दियो गयो ।

जोधपुर रावजी बहादरमलजी रा बेटा शोभागमलजी रो व्याव हुवो, बापू देवीलाल वा लाड़ीजी जोधपुर गया ।

संवत ६८ में .. ..बाद में श्री बेटीजीरा व्याव में मारो वा फतहलालजी फेर नाथद्वारे जावो हुवो । सरपाव, दस्तूर वगेरा नजर कराय गंगोदभव का कुंड की मरम्मत में १००) कोठारीजी बलवंतसिंहजी पास भेज्या गया, वां ही सरदारां, भाई-सगा, महाजनां सु चंदो इकठो कर कुण्ड, धरमसाला वगेरे की मरमत दुरस्ती कराई, चोक में भाटा जड़ाया । उठे घरु बाग-बावड़ी भी बणाई ।

नाथद्वारे गुसाईंजी महाराज अठे पधारचा सो लार वालां समेत तबेली कराई गई । बीनणीजी जोधपुर हा वठे देवीलाल रे दूसरा बाई हुवा । .... (दिल्ली) बादशाह की ताजपोशी को बड़ो भारी दरबार[2] हुवो ।

---

१. वि० सं० १९६७ की चैत्र वदि ५ (ई० सन् १९११ की २० मार्च) को जोधपुर महाराज सरदारसिंह की मृत्यु हुई ।

२. दरबार—सम्राट् पंचम जॉर्ज तथा श्रीमती महाराज्ञी मेरी का दिल्ली में शुभागमन हुआ । वहां उक्त बादशाह की गद्दी नशीनी के उपलक्ष्य में वि० सं० १९६८ पौष वदि ७ (१२ दिसम्बर, १९११) को एक बड़ा दरबार हुआ, जिसमें सभी राजा-महाराजा सम्मिलित हुए ।.................... सम्राट् ने महाराणा की प्रतिष्ठा, मर्यादा एवं बड़प्पन का विचार कर उनको G. C I. E. की उपाधि प्रदान की ।

(यहां दरबार में G. C I. E. की उपाधि की घोषणा मात्र की गई । खिताब का तुगमा देने स्वयम् वाइसराय हार्डिंग उदयपुर गए ।)

दे० उदयपुर राज्य का इतिहास : गौ. ही. ओझा; पृ. ११५९-६० ।

श्रीजी को पधारवो दिली हुवो। श्रीजी दरबार में तो कठे ही नहीं पधारचा, सिरफ स्टेसन पर पधारवो हुवो। फतहलालजी साथ में गया हा, प्रंत मोहला में प्लेग की खबर हो जावा सुं अज्मेर सुं पाछा उदयपुर.................... [आया]।

.....................[भतीज जोधसिंह] खटला सूदां जात्रा जगदीस तक गया।

...............फतहलालजी के बहू हरिसरण हुवा। बहुत वार फतहलालजी ने सब लोगां दूसरी शादी वास्ते बहुत कुछ केण-काज करी, वां मंजूर नहीं कीदी। फतहलालजी की वहू को करचावर को जीमण कीदो गयो। समसत राह-वेवार का नूता दिया गया और १०००) देर विधवा फंड कायम कीदो गयो। ओसवालां की विधवा ओरतां वास्ते, ओर भी चंदो ईं फंड वास्ते कीदो गयो।

जोधसिंहजी के जात्रा कर आवा वाद, लछमीलालजी के बहू आसाड़ सुद १० हरिसरण हुवा। २००) वांरे पाछे पुण्य कीदा गया। चित्तोड़ काकाजी फोजमलजी के बहू शांत हुवा वांरा करचावर में भी रुप्या दीदा गया।

कस्नगढ सुं बापजी को पधारवो हुवो।

(भोपालसिंहजी) .... (टॉड़ साहब की किताब को) तरजुमो करवा में ही रहता जीं सुं काम में शिकायत रही। भोपालसिंहजी करीब २ बरस के बुरी तरह बीमार रहकर ईं साल ६९ में हरिसरण हुवा। जोदसींगजी जात्रा में हा सो धोवरा[1] भाणेज होवा के सवब अठे कीदा गया।

महक्माखास को काम पाछो कोठारीजी (बलवंतसिह) करवा लागा। भोपालसिहजी का वेटा जगनाथसिंहजी पहली सुं ही श्रीजी की पेशी करता सो करता रहचा, परंतु काम नहीं चलवा की बहुत शिकायत बढ़ गई, जीं पर श्रीजी में सुं चार अफसर गवरमेंट सु मांग्या गया। चार ही अफसर हिन्दुस्तानी आया ८००, १०००, १२०० महावार पर। ये अफसर दो वर्ष रहचा, आखर ना-खुश वेर गया। एक त्रभुवननाथजी हदबस्त[2] का काम पर

---

१. धोवरा—किसी नजदीकी रिश्तेदार की मृत्यु के समाचार प्राप्त होने के वाद अपने घर में शुचि स्नानादि कृत्य एवं गमी की बैठक आदि करना।

२. हदवस्त—Border-settlement, राज्यों के वीच की सीमा बंदोवस्त का महक्मा।

रह्या, अठे रहे जत्रे सभा (महद्‌राज सभा) में भी काम करे है।

जोधपुर महाराज का आगोला के सबब श्री राणीजी साहब की तरफ को राखी-फूली रो संजारा को, भाई-बीज की गोठ का ४०) आवणो सब बंद हुवा सो अब तक बंद है।

फतहलालजी की बहू को शोग-भंगावा जोधपुर सुं महताजी कस्नसिंहजी का अठा सुं आया। फोजमलजी, लछमणसिंहजी की हवेली जीमण-जलसो हुवो ने सरपाव वगेरे दीदा।

सं० १९६९ में खटला सुदी, गढबोर, नाथद्वारे (गयो)। फतहलालजी, सेठजी उमीदमलजी आया सो वांरे·········· ·········· जैसमद बिराजता सो वठे वेर रखबदेवजी गया। स्वामी गोविन्दानंदजी काशीजी सुं आया सो वाड़ी पधरावणी कीदी गई।

देवीलाल की दूसरी बाई[1] वैसाख सुद १४ ने हरिसरण हुई। श्रीजी, कुंवरजी बापजी जनाना सुदी नाथद्वारा, गढ़बोर पधारया। कुम्भलगढ़ वेर पाछा अठे पधारया। श्री कुंवराणीजी साहब वा कस्नगढ़ बापजी चूड़ा धारण कीदा सो सांज्या[2] नजर कराई।

वाइसराय हारडींज अठे आया। जी में खेद ही सो पेशवाई, मुलाकातां वगेरे सब दस्तूर श्री कुंवरजी बापजी कीदो। लाठ साहब श्रीजी में आराम-पुरसी वास्ते तशरीफ लाया वीं वगत G. C. I. E.[3] को तगमो नजर करयो।

कपासण में रुई की गाठां बांदवा को पेच खड़ो हुवो। श्रीजी समले (शिमला) पधारया, लाठ साहब सुं मिल हरद्वार वेर पाछा पधारया।

नाथद्वारे बेनाजी का व्याव में सरपाव भेज्या। बड़ा लाड़ीजी जोधपुर गया, वठे कन्नू बापू[4] रो जन्म चैत सुद ४ ने हुवो।

---

१. बाई—पुत्री। २. सांज्या—श्रृंगार, सज्जा सामग्री।
३. G. C. I. E.—Grand Commander of Indian Empire.
४. कन्नू बापू—कन्हैयालाल मेहता; मेहता पन्नालालजी के प्रपौत्र, इनका ३० मार्च १९१३ को हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा उदयपुर एवं अजमेर में हुई। उच्च शिक्षा हेतु लंदन गए तथा वहां से पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एवं बार-एट-लॉ की उपाधि

(निरन्तर पृ० १७४ पर)

संग्रामसिंह रो व्याव हुवो सो सगरी-बंदोरो दीदो गयो। भाई तखत-सिंहजी वृज-यात्रा वास्ते गया। सेठजी जवारमलजी हरिसरण हुवा, जमाई हा सो धोवरा वगेरे को दस्तूर हुवो। दोई बापू वा मूं रखबदेवजी दर्शणा वास्ते गया। कन्नू-बापू जोधपुर सुं अठे आया जब सब उत्सव कीदो गयो। साड़ा-बारा-न्यात में पीला रंग की साड़्यां वांटी गई, राह-वेवार में भी दी गई। भांग-अमल को जलसो कीदो गयो।

मोहनजी[1] की सगाई गोवंदसिंहजी का पोता[2] सुं हुई, सगाई को दस्तूर भेज्यो गयो। कन्नू बापू जोधपुर सुं आया और अमल-भांग को जलसो हुवो वीं ही दिन जमाईजी ने आवता-जावता कीदा। मदरसा का लड़का ने मिठाई बांटी, पंडतां की सभा कीदी गई।

संवत १९७१ का साल में आब-हवा की तबदीली वास्ते बीकानेर गयो, वठा सुं सांभर वेर मथुराजी आया, वठा सुं सोरमजी, बलदाउजी, गोकल, गोरधन, गिरराज गया। पाछा अठे आया।

(पिछले पृष्ठ १७३ की पाद-टिप्पणी सं० ४ का शेषांश)

प्राप्त कर I. C. S की प्रतियोगी परीक्षा पास की। श्री मेहता १९३६ तक समस्त राजपूताना में प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें उक्त सफलता प्राप्त हुई थी।

I. C. S. अधिकारी के रूप में अपने प्रशासनिक जीवन के प्रथम १२ वर्ष उत्तर प्रदेश में विताए इसके वाद अजमेर के चीफ कमिश्नर तथा हिमाचल प्रदेश के चीफ-सेक्रेटरी बने। उत्तरी पूर्वी सीमान्त प्रदेश के मुख्य सलाहकार एवं टर्की, इथोपिया, चिली एवं अफगानिस्तान में भारतीय राजदूत के रूप में कार्य करते हुए सन् १९७३ में सेवामुक्त हुए।

श्री मेहता ने अपने जीवन के विभिन्न आयामों का वर्णन अपनी ओटोबाइ-ग्राफी "Between different worlds" में बहुत ही सरल एवं रोचक ढंग से किया है।

---

१. मोहनजी—पन्नालालजी की प्रपौत्री एवं मेहता देवीलालजी की पुत्री।

२. पोता सुं—पौत्र से, इनका नाम भगवतसिंह तथा इनके पिता का नाम लक्ष्मण-सिंह था। मेहता पन्नालालजी की प्रपौत्री मोहनकंवर से इनका विवाह हुआ था। भगवतसिंह ने मेवाड़ एवं राजस्थान में विभिन्न प्रशासनिक पदों पर कार्य किया। सन् १९५१ में इन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा में चुना गया। सन् १८६५ में ये राजस्थान के चीफ सेक्रेटरी बनाए गये। भारत सरकार द्वारा इनकी प्रशासनिक योग्यता के फलस्वरूप इन्हें पद्मश्री उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् १९६६ में ये सेवामुक्त हुए एवं सन् १९७८ में इनकी मृत्यु हुई।

महक्माखास का काम की शिकायत बहुत बढ़ गई आखिर पंडत सुखदेव प्रसादजी ने[1] २०००) महावार पर जोधपुर सुं गवरमेंट मारफत बुलाया। वांने और जगनाथसिंहजी ने महक्माखास पर मुकरर कीदा। सीलसातम रा मोका पर दोयां ने लंगर बगस्या गया।

जरमन, अंगरेज, फ्रान्स वगेरा में लड़ाई[2] शुरु हुई, बड़ी भारी लड़ाई हुई, ईं में रिलीफ फंड का चंदा में २३७) दीया गया।

धर्मवजेजी संमेगी साधू अठे आया। गौ-शाला का चंदा में मांरी मारफत १००) दीदा। ईं साल तीन ही जैन मतां का साधू यानि संमेगी धर्मवजेजी, तेरापंथ्या का पूजजी (श्रीपूज्य), बारा पंथ्या रा पूजजी अठे चातुरमास कीदो। आपस में शास्त्रार्थ की चरचा तहरीर सरावगां (श्रावकों) के दरमीयान वेती रही। हजारां औरतां, आदमी तीन ही फिरका का देशदेशान्तर का आया। बाहर का बहुत सा आदमी आवा सुं चत्रमास में जीमणां की बहुत धूम-धाम रही। सरावगां में आपस की द्वेष ईरषा भी बहुत बढ़ गई, कहीं-कहीं गाली-गलोच भी वे जाती ही।

बापूवां रा व्याव हुवा सो बड़वा[3] आया, कन्नू बापू हुवा सो नाम लिखायो गयो।

फतहलालजी, भाई जमनादासजी का बेटी सनवाड़ परण्या सो वठे गया। वठा सुं नाथद्वारे वेर पाछा आया। गुलाबपुरा में रुई को पेच खड़ो हुवो।

शाहपुरा वालां की चाकरी को मुकदमो चल्यां बाद गामां की उठंत्री हुई, जठा सुं चाकरी में नहीं आवता सो बाद चाकरी का फैसला के, चाकरी का हरजाना को तीन लाख रो दावो कीदो गयो। गवरमेंट एक लाख की डीगरी शाहपुरा पर दीदी। तीन साल में अदा कर देवे। शाहपुरा वालां ४०, हजार पहली कश्त (किश्त) का भेज्या। डगरी कम वेवा रा उजर में रुप्या राज में नहीं लीदा गया, वापस कर दिया गया। या बात गवरमेंट में पेश होवा पर या किश्त बिलकुल माफ कर सिरफ ६० हजार ही देवाया।

---

१. पंडत सुखदेवप्रसाद—पंडित सुखदेवप्रसाद काक, सी. आइ. ई. सन् १९१३ से १९१८ तक उदयपुर की सेवा में रहे। १९१८ में त्याग पत्र देकर पुनः जोधपुर चले गये।

२. लड़ाई—प्रथम महायुद्ध।

३. बड़वा—वंशावली रखने व लिखने वाले "कुल-भाट"।

संवत ७२ में अफीम की खेती हुकमन मेवाड़ में बंद कर दी गई जीं सु वैपार में और काश्तकारां ने बहुत नुकसान हुवो। गवरमेंट ईं का हरजाना का राज में ३० लाख रुप्या दीया, वी सब खजाने दाखल हुवा। कीने भी हरजानो नहीं मिल्यो।

श्रीजी हरद्वार वेर देहरादून लाठ साहब सु मिलवा पधारचा, नया लाठ चेमसफोर्ड आया सो। गोरधन मठ का शंकराचार्यजी आया, वाड़ी पधरावणी कीदी गई।

जोधपुर सु बापजी अठे पधारचा।

फतहलालजी नाथद्वारे दर्शणां वास्ते गया।

अंगरेज-जरमन महायुद्ध का चंदा में १००) कल्दार दीदा गया।

वापू देवीलाल ईं साल B. A. पास हुवो।

वोरद्या फोजमलजी रे वा मोतीसिंहजी चोरड़्या के छोटा बेटा परण्या सो सगरी बिनोरा दिया गया।

फतहलालजी, अज्मेर भाणेज बीरदमलजी ने जोर को निकालो निकल्यो सो साता-पूछवा गया।

बापू देवीलाल रे अठे हीज फेर बाई हुई, पांच-चार महीना की वेर हरिसरण हुई।

ईडरवाला बड़ा माजी साहब[1] देवलोक हुवा, वांरो जेवर-रोकड़ वगेरे वांरा ही मनखा चोर कर वीं वगत निकल गया। ठावा होवा पर कतरोक पाछो आयो, कत्राई वांरा मनखा की खाना-तलाशी, केद वगेरा हुई।

संवत ७३ में भतीज जोधसिंहजी भादवा विद ८ हरिसरण हुवा, जीं को रंज पूरो हुवो। वांकी मुरजी वा वांके वहू की मरजी भतीज चत्रसिंहजी के बड़ा बेटा नवलसिंहजी ने गोद राखवा री ही, अरज कराई गई, बहुत कुछ दरयाफत हुई। मैं भी अरज कराय दीदी—हक मारो है पर मारे सिवाय नहीं है, ईं हालत में नवलसिंह ने मंजूर फरमावें। ईं पर विट्ठलदासजी नजराणा

---

१. बड़ा माजी सा०—महाराणा सज्जनसिंहजी की प्रथम महाराना जो ईडर की थीं। इनका नाम जवाहरकुंवर था।

वगेरे वास्ते अरज कर वांरा बेटा, पोतां सबने बुलाय उजरदारी करी। ईं तावे बहुत कुछ मांसु दरयाफत हुई जीं पर मैं अरज कराई—जालमसिंहजी के तखतसिंहजी के दो गोद मारा अठा सूं गई है सो ईं हालत में नवलसिंह ही आवणो वाजब है वगेरे वगेरे। जीं पर खावंदी फरमाय तीन महीना बाद नवलसिंहजी री गोद मंजूर फरमाई।

जोधसिंहजी लार २००) पुण्यार्थ कीदा गया। जोधपुर रावजी रे बेटा शोभागमलजी रे बहू हरिसरण हुवा सो लाड़ीजी ने बैठवा भेज्या गया।

लारड चेमसफोर्ड उदयपुर आया, पेशवाई-मुलाकात, खाणो, जलसो हस्ब-मामूल हुवो। वाजदीद में मूं भी गयो, दरबार बहुत जरीदा हो ताहम मारी नजर नहीं कराई गई।

तीन ही पेचां को ठेको नयाशेर का वेपारयां के एक लाख चालीस हजार १,४०,०००) में हुवो। ईं साल में फतहलालजी के निकालो निकल्यो। बाद में बोलमां नीकाला की बीमारी में कीदी सो मारो फतहलालजी के साथ जावो नाथद्वारे, गढवोर हुवो। पाछा आया बाद फतहलालजी के बद-गांठां निकली।

विष्णुकांची का आचार्यजी महाराज पधारया सो हवेली पधरावणी संवत ७४ में हुई।

गेर-इलाका के साथ सरहद का मामला हुवा जी में हरजो बहुत हुवो। अपीलां वगेरे बहुत कोशीश हुई परन्तु कामयाबी आखर नहीं हुई। अलसीगढ, लालजो को खेड़ो दो गाम भी नीम्बाहेड़ा में चल्या गया। हुरड़ा में नदी, नदी भीतर टीलो बड़ो भारी लंबो-चोड़ो हो सो कुल गाम अजमेरा में गयो। सोम नदी मेवाड़ में ही, पेली तरफ कुछ जमीन भी ही सो डूंगरपुर में चली गई, आही नदी सुदां।

बड़ो बापू देवीलाल B. A. पास वेर इलाहबाद L. L. B. कानून पढ़े है। L. L. B. पास वेवा में चार महीना वाकी है। L. L. B. को पहलो इमतहान तो पास कर लीयो है।

देवस्थान को काम भाई तखतसिंहजी मं० ६२ सुं करे है, काम बहुत आछी तरह सुं कीदो। बंहुत ही तरकी (तरक्की) ईं काम में हुई। बचत भी १० वर्ष में १०-११ लाख की हुई। मंदरा में पोशाकां, चांदी को बंगलो, चांदी को पलणो, सोना रा डबा वगेरे, कांच की हांडयां, बंगला वगेरे नवा बण्या वगेरे-वगेरे। श्रीजी खुश वेर २००) महावार तनखा रोकड़ का भंडार सुं

मुकरर फरमाई ग्रोर बापू उदयलाल[1] ने F. A. को इमतहान पास वेवा पर ही रासमी की हाकमी पर १५०) महावार पर मुकरर फरमायो। घोड़ो बलाणो,[2] उदयलाल ने बगस्यो। भाई तखतसिंहजी महदराज सभा को काम भी बरावर करता रह्या।

फतहलालजी के वद-गांठां[3] की तकलीफ हाल तक चली जावे है। दो-तीन दफा ग्रापरेशन हुवा, तकलीफ बहुत ही रही। ईं तकलीफ में साड़ा ग्राठ महीना निकल गया, ग्रब सूरत ग्राराम होवा की हुई। इलाज सरजन शोर साहब को रह्यो। लोगां इलाज बदलवारी बहुत कुछ कही परन्तु नहीं बदल्यो गयो।

सं० ७४ मगसर सुद ७ देवीलाल के जोधपुर में दूसरा पुत्र गोकल-बापू[4] रो जन्म हुवो।

संवत १९७४ मगसर सुद १५ तक लिखी है।

---

१. बापू उदयलाल—पन्नालालजी के पौत्र जो तखतसिंहजी के गोद गये।

२. घोड़ो बलाणो—राजा की ग्रोर से अपने किसी खास व्यक्ति को सवारी के लिये दिया जाने वाला घोड़ा जिसके दाने व सईस का खर्च राज्य द्वारा वहन किया जाता है।

३. वद-गांठां—अर्श, बवासीर।

४. गोकल बापू—गोकुललाल मेहता; मेहता पन्नालालजी के प्रपौत्र। इनका जन्म २० दिसम्बर, १९१७ को हुआ। प्रारंभिक शिक्षा उदयपुर एवं ग्रजमेर में हुई। आगरा विश्वविद्यालय से B. A की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की व अंग्रेजी-साहित्य में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। उच्च शिक्षा हेतु लंदन गए जहां से पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एवं बार-एट-लॉ की उपाधि प्राप्त कर भारत लौटे।

सन् १९४२ में मेवाड़ सिविल सर्विसेज की प्रतियोगी परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर अपने प्रशासनिक जीवन का प्रारंभ किया। सन् १९५१ में इन्हें आई. ए. एस. की प्रथम सूची में प्रथम स्थान पर चुना गया। सन् १९५६-६१ तक भारत सरकार में प्रति नियुक्ति पर रहे तथा वित्त मंत्रालय तथा वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय में उप सचिव एवं संयुक्त सचिव के रूप में कार्य किया। राजस्थान में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रहते हुए वे राजस्व मंडल के चेयरमेन के पद से सन् १९७५ में सेवामुक्त हुए।

आवरण : जैन प्रिन्टर्स, जोधपुर